* श्री वर्धमानायनमः *

आगम मार्ग प्रकाशक

प्रमाण नय ौर सम्यग्दर्शन

विशद स्वरूप

नि धर्म तथा ावक धर्म स्वरूप निरूप

सैद्धान्तिक शंकाओं का स ाण सम ान

तथा

श्री ग्रन्थ ।६ ी परिशि

ग्रन्थकार-

श्री पं० लाल शास्त्री ति ाचार्य

विद्वत्तिलक, र कार, विद्यावारिधि, धर्मवीर, वादीभ केशरी, न्यायदिवाकर

प्राचार्य-गो० दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय मोरेना (म प्र)

प्रकाशिका-

श्रीमती विदुषी ब्र० त्रि ई जी

संघ व्यवस्थापिका

परमपूज्य चारित्र चूडामणि श्री १०८ आचार्य विमलसागर महाराज

श्रुत पंचमी श्री वीर नि० सं० २४९९

प्रथमावृत्ति १,००० प्रतियां

लागत कीमत ३)२५ रु०

मुद्रक—
सन्तोषीलाल बाविल
प्रिन्टिंग प्रेस
सदर बाजार, मुरेना (मध्यप्रदेश)

इस ग्रंथ प्रकाशन के र्चं का विवरण

ग्रन्थ की पृष्ठ सन्या–		४२६ पेज	
फार्म सन्या (१६ पेज का १ फार्म)		२६$\frac{3}{8}$ फार्म	
कुल कागज–	प्रिंटिंग पेपर	२६ रिम ३८६ शीट	
	आर्ट पेपर	१ रिम ३ दस्ता	
	कवर पेपर (१८×२२)	२५३ शीट	
एक रिम कागज का मूल्य		३८)००	
कागज का खर्च (आर्टपेपर कवर पेपर सहित)			१२०४)०३
छपाई खर्च प्रति फार्म ३८) रु० के हिसाब से (ब्लाक तथा मुख पृष्ठ की छपाई सहित)			१०३२)००
जिल्द बधाई (बाइंडिंग) स सहित			७९६)५४
इस ग्रन्थ का कुल खर्च–			३०३२)५७

विष —

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

छटवां अध्याय

सातवां अध्याय

आठवां अध्याय

न ां अध्याय

दशवां अध्याय

ग्यारहवां याय

बारहवां अध्याय

मोरेना महाविद्यालय के स्नातक बनने के पश्चात् आचार्य पद
धारण कर महाविद्यालय का महान गौरव बढाने वाले
तथा अनेक मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका बना
कर धर्म एव समाज का महान् कल्याण करने
वाले, महान् विद्वान एव तपस्वी साधु

परमपूज्य चारित्रचूडामणि श्री १०८

आचार्य [illegible]म सागर महाराज

वि - ी

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

छटवा अध्याय

सातवां अध्याय

आठवां अध्याय

ं -

दशवां अध्याय

ग्यारहवां

बारहवा अध्याय

मोरेना महाविद्यालय के स्नातक बनने के पश्चात् आचार्य पद धारण कर महाविद्यालय का महान गौरव बढाने वाले तथा अनेक मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका बना कर धर्म एव समाज का महान् कल्याण करने वाले, महान् विद्वान एव तपस्वी साधु

परमपूज्य चारित्रचूडामणि श्री १०८

आचार्य विमलसागर महाराज

श्री वीतराग

श्रीमत्परमपूज्य चारित्र चूड़ामणि

श्री १०८ आचार्य प्रवर श्री बिमलसागरजी महाराज

का

संक्षिप्त जीवन परिचय

लेखिका—

श्रीमती वि[illegible]ी रत्न पूज्य आर्यिका

श्री १०५ वि[illegible]यमती माताजी

न्याय तीर्थ, शास्त्री बी० ए० (आचार्य संघस्थ)

ससार असार है, क्षणभगुर है, परिवर्तनशील है और है सतत सुखाभास का अभिनय। इसमे विरले ही मनुष्य आध्यात्म्य खोजी होते है। महात्माओ का जीवन निराला होता है। उनकी दृष्टि ससार के किंपाकफल स्वभाव से ऊपर उठ जाती है और खोज करती है आत्मा को परमात्मा बना लेने के उपायो की ससार शरीर भोगो मे उन्हे रस नही मिलता, इनमे वे लुभाते नही शरीर पुष्टि के साधनो को हेय समझते हैं। त्याग और वैराग्य ही उनका अवलम्बन होता है। ऐसे ही महात्माओ मे हैं हमारे चरित्रनायक श्री १०८ आचार्य प्रवर विमलासागरजी गुरुदेव।

वि० सम्वत् १९७३ आश्विन वदी ७ मी के दिन आपने श्री बिहारीलालजी की सुयोग्य धर्म पत्नी श्री सौ० कटोरीबाईजी की अक (गोदी) को अलकृत किया (जन्म लिया) सभी नगरी निहाल होगई। होनहार बिरवान के होत चीकने पात की कहावत आपके जीवन मे पूर्णत चरितार्थ होती थी। आपका नाम नेमीचन्द रक्खा जो वास्तव मे आगे चलकर नेमि साक्षात् धर्म की धुरी सिद्ध हुआ। विधि का विधान बडा विचित्र होता है। सौ० कटोरीबाई हर्ष से फूली न समाई किन्तु वह इस आनन्द की गहरी अमराई मे अधिक समय न बिता सकी। छः माह के बालक को पालने मे झूलता छोडकर दिवगत (स्वर्गवासी) हो गई।

"ललना के पाव I मे दीखते हैं" कहावत को चरितार्थ करते हुए आप दौज के चन्द्रमा की भाति बढने लगे। दिन, माह और वर्ष बीतने लगे और सुकुमार बाल मातृ बियोग से क्षुभित हो बढने लगा अपनी बूआ श्री दुर्गाबाई की गोद मे ी आयु के साथ-साथ ज्ञान, गुण, वैराग्य भाव की वृद्धि को होने लगे। आपकी बचपन की शिक्षा को गाव मे ही हुई। पुन ल १० वर्ष की I

मे श्री १०८ आचार्य शातिसागरजी आदि की शुभ प्रेरणा—

छात्रावस्था मे नेमीचन्द जी मोरेना महावि मे अध्ययन करने आये और प्रवेशिका से लेकर शास्त्री कक्षा तक अनवरत रूप से अध्ययन किया। आपके साथ अध्ययन करने वाले श्री प० लालबहादुरजी ी, श्री प० कुन्जी जी ी, श्री प० श्यामसुन्दर ी शास्त्री, श्री प० भागचन्दजी ी आदि सहाध्यायी रहे।

महाविद्यालय के प्राचार्य श्रीमान् प० ी शास्त्री के सान्निध्य मे आपने अ के साथ ही निर्मल र भी किये और सिद्धान्त एव न्याय ग्रन्थो का ी तक उच्च कोटिका अनुभव पूर्ण किया।

आपका अत करण तो त्यागी वैरागी जनो की खोज मे लगा था। कुछ समय पीछे श्री १०८ आ० प्रवर शातिसागरजी महराज का सघ फिरोजाबाद पधारा जिसमे मुनि श्री वीरसागर जी मुनि श्री १०८ सुधर्मसागरजी आदि थे। आपने इन मुनि रत्नो की पवित्र प्रेरणा से श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी के समीप अष्टमूल गुण धारण किये तथा जनेऊ धारण कर पक्के श्रावक बन गये। कुछ समय बाद ही श्री १०८ आचाये कल्प चन्द्रसागर जी के सानिध्य में शूद्र जल का त्याग किया। अब आप सघ मे ही रहकर अ मे श्री १०५ आर्यिका धर्ममतीजी को अध्ययन कराने लगे।

आर्थिक स से होकर आप ैली (एटा) मे ३ वर्ष तक रहे। तदनन्तर ३ वर्ष पर्यंन्त पुरवालियान मे ३ वर्ष चौमू (जयपुर) मे १॥ वर्ष (नावा) कुचा मनरोड मे रहे। यही पर श्री १०८ वीरसागरजी के आपने दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण किये महावीर जयन्ती के दिन। पुन कुचामन मे ही इन्ही मुनि श्री से सुदी ३ स० २००६ मे प्रतिमा के व्रत धारण कर ब्रह्मचारी हुए। अनन्तर श्री १०८ ार्य

श्री महावीर कीर्तिजी गुरुदेव से प्रथम आपाढ वदी ५मी को स० २००७ वडवानीसिद्ध क्षेत्र मे क्षुल्लक दीक्षा धारण कर उत्कृष्ट श्रावक वन गये आपका नाम वृषभ सागरजी रक्खा। पुन धर्मपुरी धर्म क्षेत्र मे श्री आचार्य प्रवर महावीर कीर्तिजी से ही माघ सुदी १३ स० २००७ मे ऐलक दीक्षा धारण कर सुधर्मसागर जी कहलाये। आपकी सिंह वृत्ति जाग्रत थी उत्तरोत्तर वैराग्य सिन्धु उमड रहा था। अस्तु लगोटी परिग्रह भी आपके लिए सिर दर्द प्रतीत होता था। इन्दौर एव भोपाल के चातुर्मास के वाद आप श्री सोनागिरजी सिद्ध क्षेत्र मे पधारे वही पर श्री १०८ आ० महावीर कीर्तिजी के पास अपने अतिम मुनि दीक्षा फाल्गुन शुक्ला १३ स० २००९ मे धारण की। आपका मगलमय नाम करण गुरुदेव ने श्री विमलसागरजी रक्खा।

आपने प्रथम चातुर्मास गुनौर मे अकेले ही किया। यहा पर हिसा का वहुत जोर था। भैंसो की वलि चढाई जाती थी। दयालु गुरु का हृदय करुणा से ओत-प्रोत हो गया। भला जो एकेन्द्रिय घास-पात का भी वध सहन न कर सके वह भैंसो की वलि किस प्रकार देख सकता है। आपने अपने त्याग का पूर्ण प्रयोग कर कह दिया जव तक वलि वन्द नही होगी हम अन्न जल ग्रहण नही कर सकते। हिंसको के हृदय काप गये उनकी क्रूरता दया के दरिया मे वहने लगी। फलत सभी लोगो ने वलि का त्याग किया और गुरुदेव के चरणो मे अहिंसाणुव्रत धारण किया। आचार्य श्री के निर्मल परिणामो की साधना का यह ज्वलन्त निदर्शन है। इसके अनन्तर क्रमश ईशरी, पावापुर, मिर्जापुर, इन्दौर, फलटन, पन्ना, टूडला मे चतुर्मास हुए। टूडला मे सन् १९६० मे चातुर्मास हुआ। यहा विद्वान जन समुदाय ने आपके शौर्य, धैर्य और पराक्रम को देखकर आपसे आचार्य पद स्वीकार करने की प्रार्थना की। आपने अपने दीक्षा गुरु के आदेशानुसार शुभ मिती मगसिर वदी २ को शुभ लग्न मे न्यायाचार्य प०माणिकचद जी कौन्देय, धर्मरत्न श्री प० लालाराम जी

राम जी शास्त्री एव विशाल जन समुदाय के समक्ष प्रदत्त आचार्य पद ग्रहण किया इस पुनीत अवसर पर आपने २ क्षुल्लक दीक्षाएँ दी।

आचार्य श्री ने अब यहा से विहार कर व्रज भूमि को उज्ज्वल किया। श्री १००८ मथुरा चौरासी सिद्ध भूमि मे महती प्रभावना के साथ केशलोच किया। विहार कर कामा (भरतपुर स्टेट) में श्री पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा मे पधारे। यहा पर आपने श्री ब्र० शाति कुमार को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की। और शातिकुमार से आदि सागर बना दिया। कुम्हेर, डीग आदि स्थानो मे मुनि विहार का यह वर्षों बाद विहार हुआ था जिससे लोगो मे विशेष जाग्रति हुई। इस प्रकार बडी प्रभावना और जैन धर्म के अकाट्य सिद्धातो के प्रचार के साथ-साथ आपका मगल विहार होता रहा। इस अर्से मे अनेको चमत्कार हुए। आपने आचार्य पद धारण करने के पूर्व ही मिर्जापुर चातुर्मास मे क्षुल्लक दीक्षा देकर जिनसागर नाम रक्खा। गढ गिरनार की वन्दना कर बडवानी मे ब्र० सोनाबाईजी को क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान की और चन्द्रमती जी नामकरण किया। पुन इन्दोर से मागीतु गीजी मे क्षुल्लिका चन्द्रमती जी को आर्यिका दीक्षा दी सिद्धमती नाम धरा। यहाँ से श्री बाहुबल स्वामी (श्रवण बेल गोल) की यात्रा की। यहा से कोल्हापुर आदि मे विहार किया। यहा से श्री चित्राबाई जी को सघ सचालक का भार देकर सघ सम्मिलित किया। अब आपका चातुर्मास फल्टन मे हुआ। यहा पर श्री बालप्पा को सप्तम प्रतिमा के व्रत धारण कराये। श्री सम्मेद शिखर मे ३ क्षुल्लक दीक्षाये दी। पन्ना चातुर्मास कर सोनागिर जी पधारे उस समय २ मुनि दीक्षायें दी। १ क्षुल्लक दीक्षा। मेरठ चातुर्मास मे १ क्षुल्लक दीक्षा दी। यहा १ मुनि श्री सुवर्णसागर जी की समाधि सिद्ध कराई। यहा बाहुबली क्षुल्लक को मुनि दीक्षा दी नामकरण पार्श्वसागर जी रखा। पुन बडौत मे क्षु० सिद्धसागर को मुनि अरहसागर जी बनाया। इसके पूर्व कम्पिला जी क्षेत्र मे ब्र० नन्हीबाई, ब्र० मैंनाबाई जी को क्षुल्लिका

दीक्षा दी । क्रमश क्षु० वीरमती जी क्षु० विमलमती जी नाम घोषित किया था। मेरठ चातुर्मास मे श्री ब्र० ॐप्रकाश जी को क्षु० नेमिसागर जी बनाया। दुवारा सोनागिर चतुर्मास मे क्षु० जिनसागर क्षु० नेमिसागर जी को मुनि दीक्षा दी।

मेरठ चातुर्मास कर आप आगरा पधारे। यहा पर ब्र० शरवती देवी को चैत्र वदी ३ स० २०१८ मे आर्यिका दीक्षा प्रदान कर विजयमती बनाया बिहार कर ईशरी मे चातुर्मास किया। मार्ग मे पुरलिया गाव मे आप पर घोर उपसर्ग हुआ किन्तु आप तो निर्भीक दृढ प्रतिज्ञ थे श्री सम्मेद शिखर की यात्रा कर ईशरी आडटे। यहा पर भी ब्र० चिरजीलाल जी ब्र० जिनेन्द्रसागर जी को क्षुल्लक दीक्षायें दी। जो क्रमश निर्वा गर और जिनेन्द्रसागर नाम से प्रसिद्ध हुए।ब्र०उग्रसेन को क्षु० आदिसागर बनाया। चातुर्मास समाप्त कर श्री सम्मेदाचल पधारे यहा श्री क्षु० नेमिसागर क्षु० आदिसागर जी को निर्ग्रन्थ दीक्षा से अलकृत कर मुनि श्री १०८ सभवसागर जी मुनि श्री १०८ सन्मति सागर जी (जो आज श्री १०८ ˘ श्री महावीर कीर्ति जी के पट्ट ि है) नाम से प्रसिद्ध किया। यहा से बाराबकी चातुर्मास किया जहा ब्र० मोहनलाल को ऐलक दीक्षा प्रदान दी। पुन॰ ानी (बावन गजा) मे आपने दीक्षा गुरु श्री १०८ आ० महावीर कीर्ति जी के चातुर्मास ि । यहा १ एलक महाराज को मुनि दीक्षा देकर श्री १०८ मुनि वीर र जी । ब्र० चन्द्रभान को क्षु० श्रेयाँससागर बनाया। इसके पूर्व मरसलगज मे पचकल्याणक प्रतिष्ठा कराकर इस अतिशय क्षेत्र को चमत्कृत । ानी से विहार कर मार्ग मे मुक्तागिरी मे ३ आर्यिका दीक्षायें दी। तथा २ दीक्षा प्रदान की। बम्बई होते कोल्हापुर चातुर्मास किया वहा २ क्षुल्लक दी ˘दी। शोलापुर मे २ और १ मुनि दीक्षा दी। गिरनारि मे १ मुनि ३ क्षुल्लिका, ईडर मे १ क्षुल्लक दीक्षा, सुज मे युगल दम्पति को क्रमश क क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान की। देहली

मे २ क्षुल्लिका १ एलक दीक्षा, सम्मेदगिर पर १ मुनि दीक्षा, राजगिर मे १ मुनि दीक्षा, १ आर्यिका १ क्षुल्लिका दीक्षा पुन यही ४ मुनि दीक्षा ५ आर्यिका दीक्षाये हुई। पद्मपुरी मे १ क्षुल्लक वृषभसागर मथुरा मे क्षु० जम्बू स्वामी कोडा जैनाबाद मे १ क्षुल्लक दीक्षा हुई। इस प्रकार अनेको दीक्षायें देकर आपने इन भव्यात्माओ को मोक्षमार्ग पर आरूढ किया। सभी को ज्ञान ध्यान तप मे लीन रखते है। आपके कोमल स्वभाव और करुणार्द्र हृदय के अन्दर शिष्यो का सग्रह, रक्षण और सवर्द्धन करने की अपूर्व क्षमता है। "शिष्यानुग्रह कुशला" विशेषण आचार्य का प्रधान गुण है जो आपके अन्दर मूर्तिमान विद्यमान है। आपकी वाणी मे मिश्री सा माधुर्य दृष्टि मे आकर्षक शक्ति और व्यवहार मे अनोखा जादू भरा है। यही कारण है कि आप भक्त मण्डली से घिरे ही रहते है।

आपका धैर्य आत्मबल बडा ही अपूर्व है। अनेको उपसर्ग और परीषहो को हसते हसते पार कर दिया। और पावापुर क्षेत्र मे ब्राह्मण महावीरप्रसाद को सप्तम प्रतिमा के व्रत दिये। वहाँ से विहार कर जाते समय सम्मेद शिखर की यात्रा कर डालटेन गज से मिरजापुर जाते समय चैत्र वदी २ को एक अद्भुत घटना घटी। आप निसकोच शौच के लिए गये वहा पर भयकर शेर बैठा हुआ था आप उसी के अति निकट शौच को बैठ गये उठने पर लक्ष्य गया तो शेर देखा सामने। आपने आत्मबल के साथ णमोकार मन्त्र राज का ध्यान किया। मन ही मन सकल सन्यास उपसर्ग निवारण पर्यन्त के लिए ले लिया। आप तो ध्यानस्थ हो गये आपके साथ एक श्रावक जो वेचारा भय से कप-कपाता आपके पीछे छुपा था उसने देखा कि वह सिहराज मुनिराज के समक्ष आया और मस्तक भुकाकर छलाग मार कर चला गया। उसके द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उपसर्ग टला जान, गुरुदेव ने आखें खोली और मुस्करा कर चल दिये।

कुछ समय के अनन्तर चिती (अजगर) सामने से मुह फाडे

आडटा किन्तु आप तनिक भी विचलित नही हुए। दूसरे साथी भक्त घवडाये उन्हे आपने आश्वासन दिया और आत्म साधना की प्रखर ज्योति से अभिभूत कर उसे भगा दिया।

आपकी गोद मे सर्प तो कई वार घटो क्रीडा करते थे। एक वार मिर्जापुर से अयोध्या के लिए विहार कर रहे थे कि भयकर विपधर सर्प आया और ध्यानस्थ मुनिराज की गोद मे खेलने लगा। वह भुजग घन्टो क्रीडा करता रहा मानो दुलारा सुपुत्र अपने पिता की गोद मे अठखेलिया करता हो। देखने वाले सभी हैरान थे क्या करे। यथेच्छ खेल कूद कर वह सर्प मुनि श्री की प्रदिक्षणा दे नमस्कार कर अपने स्थान को चला गया। दर्शक जन दग रह गये।

आपका वौद्धिक और मान्त्रिक चमत्कार भी कम नही है। ववा गाव मे तथा भूडापानी गाव (चाइवासा के पास) मे सूखे निर्जल कुओ को वात की वात मे जल से लवालव भर दिया। कितनी जगह खारे जल को मधुर सुपेय वना दिया। वात्सल्य मूर्ति गुरुवर दुखियो के दु ख दूर करने मे सतत प्रयत्नशील रहते है। परोपकार आपका विशेष महत्वपूर्ण है। आपने अव तक लाखो व्यक्तियो को शूद्र जल का त्याग कराया। अनेको मासाहारियो को शाकाहारी ननाया। कई सौ श्रावको को त्यागी वनाया। व्रती व्रह्मचारी क्षुल्लक क्षुल्लिका एलक मुनि आर्यिका तो वनाया ही है अब भी निरन्तर साधु सन्तो को उत्पन्न करने मे लगे हुए हैं। आपके स्वर्गस्थ गुरुदेव श्री १०८ आचार्य महावीर कीर्ति जी कहा करते थे कम से कम सवा लाख मुनि महाराज और होना चाहिये। मुझे ऐसा लगता है सुयोग्य पुत्र सुयोग्य सन्तान के समान आप उनकी भावना को पूरा करके रहेगे। जो हो आपको त्याग और सयम मे प्रगाढ रुचि और प्रीति है आप हर व्यक्ति को स्त्री हो या पुरुष सयमी के रूप मे ही देखना चाहते हैं। प्राणीमात्र के आत्म कल्याण की भावना आपके हृदय मे कूट कूट कर भरी है। परम वत्सल श्रद्धेय पूज्य अभिनन्दनीय

गुरुदेव शतायु रहकर प्राणियो का आत्म कल्याण कर मेरी वि
सिद्ध करायें यह मेरी वीतराग प्रभु और महापवित्र सर्वोत्तम सम्मेद
ि महाराज के चरणो मे प्रार्थना है। अनन्त नमोस्तु के साथ यह
सक्षिप्त परिचय समाप्त करती हूँ। ॐ शान्ति ३।

श्री और चातुर्मास

स्थान	सन	सम्वत	दीक्षा पद
ी	१९५०	२००७	
इन्दौर	१९५१	२००८	ऐलक
भोपाल	१९५२	२००९	ऐलक
गुनौर	१९५३	२०१०	मुनि
ईशरी	१९५४	२०११	"
पावापुर	१९५५	२०१२	"
मिर्जापुर	१९५६	२०१३	"
इन्दौर	१९५७	२०१४	"
फल्टन	१९५८	२०१५	"
पन्ना	१९५९	२०१६	"
टूडला	१९६०	२०१७	आचार्य
मेरठ	१९६१	२०१८	"
ईशरी	१९६२	२०१९	"
वारावकी	१९६३	२०२०	"
वडवानी	१९६४	२०२१	"
कोल्हापुर	१९६५	२०२२	"
शोलापुर	१९६६	२०२३	"
ईडर	१९६७	२०२४	"
सुजानगढ	१९६८	२०२५	"
पहाडीधीरज देहली	१९६९	१०२६	"
सम्मेद शिखर	१९७०	२०२७	"

राजगृही	१९७१	२०२८	,,
सम्मेद शिखर	१९७२	२०२९	,,

आपने विभिन्न स्थानो पर चातुर्मास स्थापित कर जैन धर्म की महती प्रभावना की है। आपका निमित्त ज्ञान भी अति निर्मल है। मनुष्य के चहरे को देखकर ही उसके अन्त करण की भावना का अनुमान कर लेते हैं। प्राय सत्य ही निकलता है। ऐसे विद्वान तपस्वी रत्न आचार्य श्री चिरायु रहे।

आचार्य महोदय अत्यन्त सरल और अत्यन्त शान्त परिणामी महान् तपस्वी महान् विद्वान् साधु रत्न हैं। उनके द्वारा समाज और राष्ट्र का बहुत कल्याण हो रहा है।

श्रीमती ०चि ाबाई ी ' दिगे

कोल्हापुर का

संक्षिप्त जीवन परिचय

श्रीमती ब्र० चित्राबाई जी कोल्हापुर की रहने वाली हैं और वर्तमान मे आप परम पूज्य श्री १०८ आचार्य ि ागर महाराज के सघ की व्यवस्थापिका हैं। आप धर्म परायण हैं और आपकी गुरु भक्ति प्रशसनीय है।

आपका जन्म स्थान हुपरी (दक्षिण) है, आपके पिता का नाम पारसा महोदय तथा माता का नाम श्रीमती कृष्णाबाई गडकरी था। आपकी छोटेपन से ही धर्म मे विशेष थी, आपकी शादी कोल्हापुर निवासी आणप्पा गडकरी श्रीमती के पुत्र श्री रामचन्द्र दिगे के साथ हुई थी। आप केवल एक के होने पर ही को होगई, उस अपनी को और साधुओ की सेवा करना यही था। आपने अपने पुत्र को रत्नाकर बैंक मे सर्विस पर लगा दिया, आपके पुत्र का नाम आदिनाथ (सुकमाल) रामचन्द्र दिगे है। श्री आदिनाथ की पत्नी का नाम सुनन्दा है। आपके पौत्र (श्री आदिनाथ के सुपुत्र पुत्री) का नाम मृत्युजयकुमार, सजयकुमार पुत्री कुमारी पद्मा और कुमारी सगीता है

श्रीमती ब्र० चित्राबाई जी लगभग १५ वर्ष से परम पूज्य विमलसागर महाराज के सघ का स वडी योग्यता और से कर रही हैं।
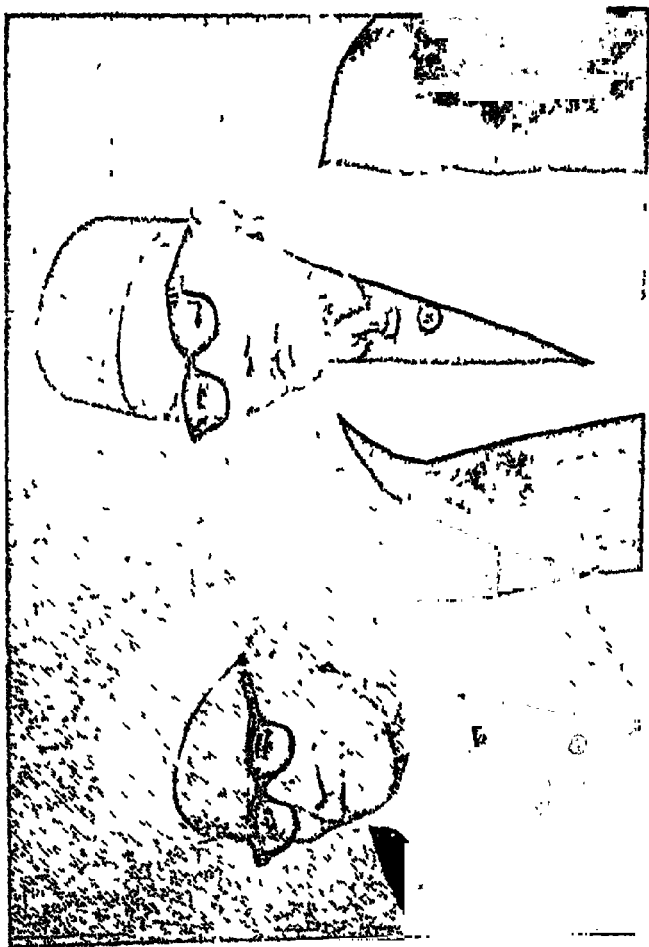
श्री तत्त्वार्थ राजवार्तिकालकार, ग्रन्थराज पचाध्यायी, पुरुपार्थ सिद्धुपाय इन गम्भीर सद् शास्त्रो के टीकाकार तथा अनेक सैद्धान्तिक पुस्तको (ट्रैक्टो) के णिक लेखक और

अनेक उद्भट विद्वानो को तैयार करने वाले विद्वान

विद्यावारिधि, न्यायालकार, विद्वत्तिलक, वादीभकेशरी, दिवा , धर्मवीर

० । स्त्री ति ोदय

हावि । (० ०)

चावली (आगरा) निवासी तथा मे जयपुर रहने वाले वहा के जोहरियों मे

प्रामाणिक एव प्रतिष्ठा प्राप्त जवाहरात के व्यापारी

धर्मपरायण श्रीमान् बू श्रील जी तिलक जोहरी, य र (रा ०)

(श्री पं० खन्नलाल जी शास्त्री के सहोदर लघुभ्राता)

* श्री वर्धमानाय नम *

विद्यावारिधि वादीभकेसरी, विद्धत्तिलक, न्यायालकार न्याय दिवाकर धर्मवीर श्रीमान् प० मक्खनलालजी शास्त्री का स्वय उनकी कलम से लिखा हुआ उनका

जीवन परिचय

प्रणम्य वीर सर्वज्ञ वीतराग जगद्धितम्
लिखामि जीवनी स्वस्य प्रेरितोऽहं सधर्मिभि

जीवन परिचय के पात्र

जीवन परिचय के मुख्य पात्र तो वे ससार एव वासनाओ से सर्वथा विरक्त बदनीय मुनिराज है जिन्होने अपना जीवन स्वात्म साधन एव पर कल्याण मे लगा रक्खा है उन्ही का जीवन परमादर्श एव अनुकरणीय है। मैंने कोई ऐसा असाधारण सर्वहितकारी कार्य तो नही किया है किन्तु अणुव्रत पालते हुए जो कुछ थोडी सी धर्म एव समाज सेवा मे अपना योग देता रहा हू उन्ही कार्यो का दिग्दर्शन मेरा जीवन परिचय है। वह इस प्रकार है —

जन्म जाति एव पारिवारिक नामोल्लेख

आगरा जिला के अन्तर्गत चावली ग्राम मे मेरा जन्म हुआ है पदमावती पुरवाल मेरी जाति है और तिलक मेरा गोत्र है। मेरे पूज्य पिता लाला श्री तोतारामजी थे माता का नाम मेवारानी था। दोनो बहुत धर्मात्मा थे व्रत, उपवास पूजन, स्वाध्याय मे तत्पर रहते थे किराना (पसारी) की दुकान थी। पिताजी वैद्य थे वे गाव के रोगियो को देखते थे और बिना मूल्य औषधि देते थे फीस भी नही लेते थे। गाव मे उनका बहुत आदर और प्रतिष्ठा थी उनके छह पुत्र (सगे हम

६ भाई)हुए। सवसे वडे भाई रामलालजी थे। उन्होने वहुत आग्रह करने पर भी विवाह नही किया। वाल ब्रह्मचारी रहकर धर्म साधन और व्यापार मे योग देते रहे। उनसे छोटे भाई मिट्ठनलालजी थे। रुई का व्यापार करते थे उनसे छोटे भ ई धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर श्री प० लालारामजी शास्त्री थे समाज उनसे सुपरिचित है। उन्होने सस्कृत के गभीर ग्रन्थो की सरल टीकाएं बनाई है। मूलशास्त्र के विरुद्ध उन्होने एक भी वात नही लिखी है अत उनकी टीकाये ग्र थानुरूप पूर्ण प्रमाण मानी जाती है उन्होने करीब (१००) एक सौ ग्रन्थो की टीकाये रचने के साथ भक्ताभर शतद्वयी आदि स्वतत्र सस्कृत ग्रन्थ भी रचे हैं। भा० दि० जैन महामभा के वे स० महामत्री भी थे। परम पूज्य आचार्य शान्तिसागर महाराज से उन्होने दूसरी प्रतिमा के व्रत लिये थे। पीछे सातवी प्रतिमा तक (गृह निरत) के व्रतो का अभ्यस्थ रूप मे वे पालन करते थे। मैनपुरी मे उनकी सर्राफि की दुकान थी उनके पुत्र पौत्र हैं।

श्री प० नंद लजी शास्त्री (आचार्य सुधर्म सागर महाराज)

श्री धर्मरत्न प० लालारामजी शास्त्री से छोटे और मुझसे वडे भाई श्री प० नन्दनलालजी शास्त्री थे, वे उच्च कोटि के सिद्धात वेत्ता विद्वान वने, वैद्य भी थे बम्बई मे वैद्यक भी करते थे और वहा के सरस्वती भवन की सम्हाल भी करते थे। बम्वई के प्रसिद्ध जौहरी श्री सेठ घासीलालजी पूनमचदजी से भाई साहब प० नन्दनलालजी शास्त्री ने कहा कि परमपूज्य आचार्य शाति सागर जी को दक्षिण से उत्तर मे बिहार कराना अत्यन्त लाभदायक होगा अत आप सघ भक्त वनकर समाज शिरोमणि बनो इसके लिये ३–४ लाख रुपये खर्च करने का सकल्प करलो। जौहरी जी ने भाई साहव की आग्रह पूर्ण वात स्वीकार करली तब जौहरी जी और पण्डित नन्दनलालजी दोनो ने दक्षिण जाकर आचार्य महाराज से प्रार्थना की दोनो ने कहा कि महाराज उत्तर प्रान्त मे जनेऊ धारण करने की प्रथा भी वहुत कम

रह गई है जल भी अशुद्ध बहुभाग मे ग्रहण होने लगा है अत आपके विहार मे सब सुधार होगा । तब महाराज ने कहाकि जौहरी घासीलालजी की भक्ति भी प्रशसनीय है परन्तु तुम्हारे सरीखा विद्वान सघ मे नही रहेगा तब तक उत्तर मे हम विहार नही करेंगे। इतना सुनते ही भाई साहब ने तुरत सप्तम प्रतिमा महाराज से लेली। उन्होने अपने पुत्र और हम सब भाइयो का मोह छोडकर सघ मे वे साथ रहे पीछे प० नन्दनलाल जी शास्त्री मुनि हुए फिर बहुत वर्षों पीछे आचार्य पद भी उन्होने आचार्य शाति सागर महाराज की आज्ञा से ग्रहण किया। मुनि पद मे उनका नाम सुधर्म सागर जी रखा गया। परमपूज्य आचार्य सुधर्म सागर जी ने परमपूज्य मुनिराज कुथुसागरजी मुनिचन्द्र सागर जी मुनिवीर सागर जी, मुनि नेमि सागर जी आदि सबो को सस्कृत का अध्ययन कराया और सुधर्म ध्यान प्रदीप, सुधम श्रावकाचार जिन चतुर्विशतिका आदि सस्कृत ग्रन्थो की रचना की उन ग्रन्थो की सरल हिन्दी टीका सरस्वती दिवाकर प० लालारामजी शास्त्री ने की है। आचार्य सुधम सागर महाराज ने समाज का बहुत कल्याण किया साथ ही हमारी जाति और हमारे धार्मिक घराने को अत्यन्त महत्वशाली बना दिया है। गृहस्थावस्था के उनके पुत्र प० जयकुमारजी आयुर्वेदाचार्य और शास्त्री हैं उनके भी कई पुत्र है।

मुझसे छोटे भाई श्री चिरन्जीव बाबू श्रीलालजी जौहरी हैं जो बहुत वर्षों से जयपुर मे सपरिवार रहते हैं जवाहरात का व्यापार करते हैं वहा के जौहरीयो मे उनकी बहुत प्रतिष्ठा और सम्मान है। उनके कई पुत्र पौत्र हैं। उनके दो पुत्र जवाहरात का व्यापार करते हैं ३ बाकी के पुत्र बैंक आदि मे सर्विस करते हैं। पदमावती पुरवाल जाति मे और समाज मे हमारा घराना धार्मिक एव प्रतिष्ठित माना जाता है।

मेरा यह अनुभव है कि जिस घराने मे माता पिता एव कुटुम्बी जनो का आचार विचार खान पान एव धार्मिक श्रद्धा आदि व्यवहार

उज्जवल है उस घराने मे सन्तान परम्परा भी उत्तम बनती है। ससर्गजा दोप गुणा भवन्ति, यह नीति वाक्य यथार्थ है।

मेरा सक्षिप्त परि

मैंने अपने जन्म स्थान चावली (आगरा) ग्राम मे छठी कक्षा तक स्कूल मे शिक्षा पाई है। दि० जैन महाविद्यालय मथुरा तथा सहारनपुर मे सस्कृत का अध्ययन किया था मेरा विचार वैद्यक पढने का हुआ था अत मैं पीलीभीत-वरेली के प्रसिद्ध आयुर्वेद विद्यालय मे प्रविष्ट होगया परतु वहा जिन मंदिर नही होने से तीसरे ही दिन चला आया। और वनारस पहुच गया। यह अच्छा ही हुआ अन्यथा मे शास्त्रीय बोध से शून्य ही रह जाता साथ ही मेरा उद्देश्य एव लक्ष्य ही वदल जाता। बनारस मे न्याय स्तम्भ प० अवादास जी शास्त्री के पास पढकर मैंने नव्य न्याय की मध्यमा परीक्षा सस्कृत क्वीन्स कालेज बनारस से पास की तथा वगीय सस्कृत एसोसियेशन कलकत्ता की साहित्य मध्यमा पास की, उस समय पूज्य प० गणेशप्रसाद जी वर्णी भी उक्त शास्त्री जी से अध्ययन करते थे। मैं न्याय तीर्थ ग्रन्थो का अध्ययन कर रहा था इसी बीच वनारस से मोरेना आकर श्री पूज्य प० गोपालदासजी वरैया से मैने अपने सहाध्याइओ के साथ सिद्धान्त ग्रन्थो का अध्ययन किया।

मेरे पठित ग्रन्थ

सि न्त ग्रन्थो मे —रत्नकरड, द्रव्य सग्रह तत्वार्थ सूत्र सागार धर्मामृत सर्वार्थ सिद्धि, गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, राजवार्तिकालकार, त्रिलोकसार पचाध्यायी इन ग्रन्थो मे परीक्षा देकर मैंने उत्तीर्णता प्राप्त की है।

दि० जैन न्याय ग्रन्थो मे -प्रमेय रत्न माला आप्त परीक्षा, प्रमेय कमल मार्तंड, अष्ट सहस्त्री, श्लोक वार्तिक इन अत्यन्त गहन गम्भीर ग्रन्थो मे परीक्षा देकर उत्तीर्णता मैंने प्राप्त की है। इनके सिवा चरणा-

नुयोग के शास्त्र, प्रायश्चित ग्रन्थ, समयसारादि द्रव्यानुयोग और प्रथमानुयोग के शास्त्रो का भी वाचन मैंने किया है। वारामती (दक्षिण) मे परम पूज्य आचार्य शाति सागर महाराज एव उनके सघ मे एक माह रह कर महाराज की इच्छा एव उनकी आज्ञा से सिद्धात का भी वाचन सघ को सुनाया था। उस समय शोलापुर, कोल्हापुर, फलटड आदि के अनेक पुरुप भी सुनने बैठते थे।

मोरेना महावि ा का सचालन

श्री प० गोपालदास जी वरैया के स्वर्गवास होने के बाद, कुछ वर्प मोरेना महाविद्यालय का सचालन न्यायाचार्य प० माणिकचन्दजी प० वशीधर जी न्यायालकार प० देवकीनन्दन जी करते रहे उक्त तीनो विद्वान जब मुरेना से चले गये और सस्था की आर्थिक दशा वहुत कमजोर हो गई तथा पठन-पाठन व्यवस्था भी अच्छी नही रही तव उस के अधिष्ठाता श्री प० धन्नालाल जी काशीवाल तथा मन्त्री श्री प० खूवचन्द जी शास्त्री ने पत्र व्यवहार द्वारा मुझे मोरेना वुलाने के लिये वार-वार प्रेरित किया, छह माह तक उनका भारी आग्रह रहा कि इस सस्था को आकर सम्हालो अन्यथा यह पण्डित गोपालदास जी का कीर्ति स्तभ समाप्त होता है। उस कलकत्ता मे मेरी कपडे की दुकान अच्छे रूप मे चल रही थी, मैं उसे छोडना नही चाहता था, कलकत्ता के प्रसिद्ध व्यापारी श्री प० जयदेव जी प० वरदेवदास जी सेठ चेनमु जी पाड्या आदि सज्जनो का यह आग्रह था कि कलकत्ता मे ही रहो, परन्तु सस्था के मन्त्री तथा अधिष्ठाता महोदय की अत्यधिक प्रेरणा होने से मुझे मोरेना आने के लिये वाध्य होना पडा, सन् १९२७ मे मैं मोरेना आगया और महाविद्यालय का समस्त कार्यभार (वागडोर) मुझे सौंप दिया गया। तव से आज तक ४४ वर्पो से मोरेना महाविद्यालय का सचालन मैंने किया है, इस समय मेरी आयु करीव ७७-७८ वर्प की है। मै अभी

प्रौढावस्था के समान एव सोत्साह सोल्लास ७ घण्टा कार्य करता हू। मेरी दिन चर्या इस प्रकार है—

प्रात ३–३॥ बजे उठ जाता हूँ सामायिक एव स्त्रोत्र पाठ करता हूँ १ घण्टा उपयोगी लेख लिखता हू फिर स्नानादि करके मन्दिर मे पचा,ताभिषेक एव पूजन करता हूँ, १॥ घण्टा समय पूजन मे लगाता हूँ। भोजन के बाद समाचार पत्र और आई हुई डाँक देखता हूँ। मध्य का सामायक करके ५ घन्टे महाविद्यालय मे काम करता हू। और आवश्यक पत्र एव आगत शकाओ का समाधान लिखाता हू। रात्रि मे सामायिक करके ८॥–९ बजे शयन के लिये खाट पर लेट जाता हूँ।

प्रति रविवार मैं छात्रो को धर्मिक मर्यादा, शुद्धि एव धार्मिक सस्कार बनाने आदि बाते बताता हू यही मेरी नियमित दिन चर्या है।

इन ४४ वर्षो मे मैने सस्था मे क्या किया

उस समय स्कूल कालेज मे अग्रेजी पढने छात्र नही जाते थे केलल धर्म सिद्धात ग्रन्थ और सस्कृत का ही पठन-पाठन होता था और उस समय दक्षिण मे सस्कृत सस्थायें नही थी अत दक्षिण के भी अनेक छात्र मोरेना पढने आते थे, मेरे समय मे करीब ५० छात्र छात्रावास मे रहते थे। अनेक सिद्धात के ज्ञाता आगम मे दृढ श्रद्धा तथा आचार-विचार रखने वाले शास्त्री, न्यायतीर्थ विद्वान् मैने तैयार किये है जो आज समाज मे प्रतिष्ठित तथा सम्मानित है और समाज को सन्मार्ग वता रहे हैं। उनमे कतिपय उत्तर के प्रमुख विद्वान्–श्री प० लालबहादुर जी शास्त्री न्यायतीर्थ साहित्याचार्य एम० ए० पी० एच० डी०, श्री प० कुन्जीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ, न्यायतीर्थ एम० ए०, श्री प० श्यामसुन्दरलाल जी शास्त्री, श्री प० भागचन्द जी शास्त्री न्यायतीर्थ काव्यतीर्थ, प० फूलचन्द जी शास्त्री सिरगन, प० फूलचन्द जी शास्त्री न्यायतीर्थ, सकरौली आदि है। दक्षिण जैन बद्री, मूलबद्री, मदरास, मैसूर, बगलौर के श्री प० मल्लि-

नाथ जी शास्त्री न्यायतीर्थ, श्री प० जिनचन्द जी शास्त्री न्यायतीर्थ श्री प० जिनराज जी शास्त्री न्यायतीर्थ, श्री प० ` सकुमार जी शास्त्री काव्यतीर्थ, श्री प० पदमराज जी शास्त्री न्यायतीर्थ, श्री प० नागराज जी शास्त्री, श्री प० धर्मचक्रवर्ती जी शास्त्री आदि है। और भी अनेक शास्त्री विद्वान् मैने तैयार किये हैं।

मेरा विशेष सौभाग्य

परम पूज्य आचार्य विमलसागर जी, मुनिराज पार्श्वसागर जी मुनिराज प्रबोधसागर जी, ये शास्त्री एव न्यायतीर्थ तक मेरे पास छात्रावस्था मे पढ कर आज लोक पूज्य हैं और स्व-पर हित साधन मे लगे हुए है। छात्रावस्था मे वे सब मेरे पैर पडते थे, मेरा बहुत विनय रखते थे आज मे रत्नत्रय धारक उन आचाय और मुनियो पवित्र चरणो मे अपना मस्तक रखता हूँ और पढाने के परिश्रम को उत्तम पात्र तैयार होने से सफल मानता हू तथा अपना सौभाग्य एव गौरव मानता हूँ पूस्य भट्टारक स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेन जी नरसिहपुरा पट्टा-धीश तथा स्वस्ति श्री भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति जी हुमच पदमावती शास्त्री तक मेरे पास पढे है। इन पूज्य भट्टारको के महान कार्य दक्षिण समाज के सामने है। इस सस्था मे दिये जाने वाले धार्मिक सस्कारो का ही ये उत्तम फल है।

सं को आर्थिक सहायता

जब मैं मुरेना था तब थोडा सा द्रव्य सस्था मे रह गया था तब मैंने तीन डेप्युटेशन निकालें। दो बार कलकत्ता और आसाम का और एक बार शोलापुर कोल्हापुर सागली का। कलकत्ता के प्रसिद्ध फर्मो के श्रीमानो ने सहर्ष चन्दा भरा जो करीब ७००००) हजार हो गया। इसी प्रकार हवाई जहाज से मैं आसाम भी गया वहाँ भी अच्छा चन्दा हुआ डेप्युटेशन मे मेरे साथ कलकत्ता से कई प्रसिद्ध फर्मों के श्रीमान् थे, सस्था के मन्त्री श्री प० तनसुखलाल जी काला

भी थे। दूसरी बार भी डेप्युटेशन मैने निकाला, तब भी कलकत्ता आसाम से अच्छी रकम प्राप्त हुई। दक्षिण शोलापुर कोल्हापुर सागली आदि नगरो से भी अच्छी धनराशि प्राप्त हुई, मैं देहली भी गया था वहा से भी अच्छी राशि मिली कुल लगभग २०००००) दो लाख रुपयो की सहायता मोरेना सस्था को आगई। यह सब मोरेना सस्था के प्रति समाज की सहायता एव सहयोग का ही फल है। मैंने तो कुछ नही किया है।

श्रीमन्त महाराजा ग्वालियर से बिना मूल्य पक्के बारह बीघा जमीन सस्था को मिली है उसी बगीचे मे इस धनराशि से कई मकान मैने बनवा दिये है जिनमे किराये के स्थायी रूप से ७५०) साढे सात सौ रुपये माहवार सस्था को मिलते है। दक्षिण की कुछ रकमे नही आसकती है सभव है वहा जाने से आजाय।

अन्य आवश्यक निर्माण

सस्था की ऊपरी मजिल मे दातारो की द्रव्य मे एक सुन्दर वर्धमान चैत्यालय भी मैंने बनवा दिया है उसमे मनोज्ञ पाच प्रतिमाये धातु और पाषाण की अपनी ओर से विराजमान करादी है। इस चैत्यालय मे मेरे साथ सभी छात्र पचामृताभिषेक पूर्वक पूजन आरती आदि प्रति दिन करते है। नगर निवासी भी दर्शन करते है। अन्य भी कई आवश्यक निर्माण मैने सस्था के द्रव्य से करा दिये हैं। गजपथ सिद्ध क्षेत्र पर मैंने अपनी ओर से पाँचो परमेष्ठियो की ढाई ढाई फुट की पाच प्रतिमाये विराजमान कराई है। एक प्रतिमा देहली मे भी विराजमान कराई है। छत्र भी स्वर्ण मिश्रित बनवाया है और भी अपने द्रव्य का उपयोग धार्मिक कार्यो मे यथाशक्ति मै करता रहता हूँ। एक बहुमूल्य स्फटिक की प्रतिमा मैंने अपनी ओर से मोरेना के पचायती मन्दिर मे विराजमान करदी है। तथा अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिए श्रद्धेय गुरु गोपालदास जी बरैया का अतीव सुन्दर साढे

तीन फुट का सन स्टेचू महाविद्यालय भवन मे मैने अपने द्रव्य से बनवाकर ा दिया है।

राज्य गौरव

मेरे विशेष प्रयत्न से इस सस्था मे हिज हाइनैस महाराजा ग्वालियर एव अन्य अन्य समय मे राज्य के अनेक मिनिस्टर महोदय सस्था मे पधारते रहे हैं इसलिये महावि य की प्रख्याति एव गौरव राज्य सरकार मे भी अच्छा है।

जब माननीय सर सेठ हुकमचन्द जी इन्दौर से पधारे थे तब उन्होने सस्था के कार्य से प्रसन्न होकर १५००) रु० दान देने की घोषणा की। बीच मे मैंने कहा कि आप देरहे हैं तो ५०००) तो दीजिये तब सरसेठ जी ने कहा कि प० जी के कहने से पाच हजार सस्था को देता हू सभी ने हर्ष ध्वनि की।

आनरेरी म स्ट्रेट

मोरेना मे करीब १५-१६ वर्षों तक राज्य की ओर से मुझे आनरेरी मजिस्ट्रेट भी बनाया गया था, छह माह की सजा और २००) रुपया जुर्माना एक साथ करने का मुझे अधिकार था मेरे सभी फैसले बहाल रहे। मेरे जिन फैसलो को सेशन जजी से खारिज किया गया, हाईकोर्ट मे अपील होने पर मेरे फैसले बहाल किये गये।

सेशन जज के साथ फौजदारी केशो मे ३ जूरी और बैठते हैं उनमे एक मैं भी रहा हू

ओकाफ कमेटी मे जिला कलेक्टर के नगर के चार प्रतिष्ठित पुरुष और नियत किये जाते हैं उनमे से एक मैं भी बहुत वर्षों तक रहा हूँ। यह कमेटी लाखो करोडो रुपयो के राज्य के अधीन धर्मायतन है उनकी सम्हाल एव व्यवस्था करती है। राज्य से मुझे सम्मान एव प्रमाण पत्र भी मिले हैं।

सिद्धान्त ग्रन्थो की टीका

उच्च कोटि के महान् सिद्धान्त ग्रन्थराज वार्तिकालकार ग्रन्थ-राज पचाध्यायी और पुरुपार्थ सिद्धुपाय इन ग्रन्थो की मैने हिन्दी टीकायें की है। ये टीकाये पूज्य त्यागियो एव विद्वत्समाज मे प्रशमनीय सिद्ध हुई है।

अनेक गम्भीर विस्तृत ट्रैक्ट
(सं पद का निर्णय)

धवल सिद्धान्त के ६३वे सूत्र मे जोडे गये "सजद" पद पर ३।४ वर्ष तक विवाद चलता रहा उस समय मैंने एक बडा ट्रैक्ट (पुस्तक) लिखा उसका नाम- "सिद्धान्त सूत्र समन्वय" रक्खा उसमे मैंने राजवार्तिक, गोमटसार, धवल सिद्धान्त आदि शास्त्रो के प्रमाणो को देकर यह सिद्ध कर दिया कि उस सूत्र मे सजद पद रहने से श्वेताम्बर मत की मान्यता सिद्धान्त शास्त्र से स्वीकार करनी पडेगी। विरोध वढने पर मैंने एक दूसरा ट्रैक्ट "सिद्धान्त विरोध परिहार" और लिखा। उन ट्रैको को सुनकर और धवल शास्त्र का मनन कर परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी ने गज पथ सिद्ध क्षेत्र पर जीर्णोद्धार कमेटी के सामने यह निर्णय दे दिया कि वह द्रव्य प्रकरण है उसके रहने से स्त्री मुक्ति और सवस्त्र मुक्ति सिद्ध होगी अत सजद पद उस सूत्र मे नही रक्खा । मूल प्रति मे भी नही है। फिर विवाद समाप्त हो गया।

अन्य अनेक ट्रैक्ट

और भी मैंने अनेक ट्रैक्ट सप्रमाण एव सहेतुक ऐसे लिखे हैं जो सैद्धान्तिक विवाद को दूर करने मे सहायक हुए हैं। कुछ ट्रैक्टो के नाम ये है-

स्पृश्यास्पृश्य भेद विचार, चर्चासागर पर शास्त्रीय जैन धर्म हिन्दू धर्म से भिन्न है, भाव शुद्धि मे द्रव्य शुद्धि पहले आव

है, मुनि विहार ऐतिहासिक परम्परा से सिद्ध है। काजी मत ,
मोक्ष मार्ग विरोधी काजी भाई, आर्य भ्रम निराकरण आदि।

देहली अम्बाला शास्त्रार्थ

देहली मे आर्य समाज के साथ होने वाले शास्त्रार्थ मे देहली के प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान रामचन्द जी देहलवी दोनो ओर के सभापति चुने गये। स्थान और प्रवन्ध भी उन्ही का रक्खा गया। आर्य समाज की ओर से गुरुकुल कागडी के प्रसिद्ध विद्वान जो मीमासाचार्य, न्यायाचार्य थे शास्त्रार्थ कर्ता चुने गये जैन समाज की ओर से मैं था। शास्त्रार्थ लगातार ६ दिन तक चला शास्त्रार्थ के दो विषय थे एक जैनियो के तीर्थंकर सर्वज्ञ नही हो सकते दूसरा ईश्वर सृष्टि का कर्ता है। १८-२० हजार आदमी दर्शक इकट्ठे होते थे। सहारनपुर अम्बाला जगाधरी शिमला आदि से भी वकील वैरिस्टर और प्रमुख प्रमुख लोग आगये थे। अन्त मे मैंने मौखिक एव लिखित रूप मे आर्य समाजी विद्वान का मुह वन्द कर दिया वे उत्तर देने मे असमर्थ हो गये। तव जैन के प्रमुख पुरुषो ने सभापति से शास्त्रार्थ का निर्णय (जजमेट) मागा तव सभापति ने घोषणा की कि जैन विद्वान की विजय हुई। यह शास्त्रार्थ "देहली शास्थार्थ" के नाम से छप चुका है दूसरे दिन देहली तथा वाहर नगरो से आये हुए सज्जनो ने एक आम सभा की उसमे "वादीभ केसरी" यह पदवी मुझे सम्मान पूर्वक दी गई।

अम्बाला शास्त्रार्थ

अम्वाला शहर मे एक वेदाताचार्य दर्शनाचार्य सनातनी विद्वान थे वे कहते थे जैन धर्म का स्याद्वाद झूठा है कल्पना मात्र है, मैं अम्वाला जव गया तव वहा के वावू मुरारीलाल जी जैन एडवोकेट तथा लाला शिव्वामल जी आदि के कहने पर मैंने शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया दो दिन शास्त्रार्थ हुआ। सनातनी विद्वान ने अपनी

पराजय मान ली तभी से वे मेरे तथा जैन समाज के मित्र वन गये तव से देहली और उस प्रात मे जैन धर्म के ि कोई नही वोलता है ;

इस विजय को मै अपनी विद्वता का महत्त्व नही मानता किन्तु दि० जैन धर्म के ' भाषित एव गणधरादि वीतराग महर्षियो द्वारा प्रतिपादित अक एव सहेतुक ि तो का ही सर्वोपरि महत्व मानता हू ।

महासभा पर भारी संकट एवं ि य

भा० दि० जैन महासभा के से ल (वेलगाव दक्षिण) अधिवेशन मे चन्द रामचन्द कोठारी एम० ए० और धावते आदि सुधारको ने भारी झगडा किया था । ८ दिवस पीछे ही महाराष्ट्र के जैन पत्रो मे ये ार पढने मे आये कि—"महासभा हमारे तावे मे आगई है उसके सभापति, महामन्त्री, कोषाध्यक्ष अमुक २ बनाये गये है अत महासभा के लिये द्रव्य आदि अमुक २ पते से ज भेजे" सुधारको की इस मन गढत बात को पढ पर महासभा के `कर्ता एव सव लोग चकित होगये । यह कार्यवाही उन्ही सुधारको ने की थी ।

पर मुकद्दमा एवं विजय

उस समय महासभा के मुखपत्र जैन के दक श्री प० राम जी शास्त्री थे और मैं स० एव था पत्र त्ता से मेरे द्वारा नि था । जैन मे उन गढन्त वातो का जोरदार प्रतिवाद किया । वालचन्द रामचन्द कोठारी एम० ए० ने न सम हम दोनो भाइयो पर मानहानि का नोटिस दिया कि दश दश हजार रुपये दो और क्षमा मागो अन्यथा फौजदारी (डिफीमेशन) केश दोनो पर । तदनुसार वेलगाव (दक्षिण) कोर्ट मे मुकद्दमा दायर हो गया । हम दोनो भाई

अपनी अपनी दुकान को छोडकर बेलगाव पहुच गये, वहा पर हम दोनो को दस माह ठहरना पडा, बीच बीच मे हम दोनो आचार्य शान्तिसागर महाराज के द र्श पहुच जाते थे। महाराज उन दिनो दक्षिण मे विहार कर रहे थे। बेलगाव मे वहा के श्री गरगट्टे महोदय आदि प्रसिद्ध व्यापारियो ने हमारे लिये ठहरने आदि की सुव्य करदी थी। सागली के प्रसिद्ध एव प्रमुख व्यापारी श्री सेठ गुलाबचन्द जी खेमचन्द जी शाह अपना व्यापार अपने सुपुत्रो को सौपकर केश मे पैरवी करने के लिये बेलगाव पहुँच गये। प्रसिद्ध वकील मजुमदार के कहने पर कोर्ट मे हमे कुर्सी दी गई थी। फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट श्री किणी महोदय ने पहले ही दिन कहा कि आप लोग दूर देश से यहा आये हो, केवल क्षमा मागकर आप लोग जासकते हो। हमने निवेदन ि कि हमारा कोई स्वार्थ नही है। अपने व्यापार मे बडी हानि उठाकर हम यहा आये हैं। यदि हम क्षमा मागकर चले जाय तो धर्म और समाज की सेवा करने वाली यह महासभा समाप्त हो जायगी उससे धर्म को भारी हानि होगी अत आप केश चलाइये इस केश में शोलापुर, कोल्हापुर, सागली, पूना, बम्बई आदि के करोडपति श्रीमानो ने हमारे पक्ष मे गवाहिया दी, दानवीर सेठ रावजी सखाराम दोशी शोलापुर ने बहुत परिश्रम एव पैरवी की। सेढवाल के राजमान्य पाटीलो की गवाही हुई। विरुद्ध पक्ष मे बालचन्द रामचन्द कोठारी कोल्हापुर राज्य के दीवान लट्ठे महोदय चौगुले वकील घावते आदि की गवाहिया हुई।

फैसले मे न्याय मूर्ति मजिस्ट्रेट किणी महोदय ने लिखा है कि ये दूर देश के विद्वान अपनी नि स्वार्थ वृत्ति से केवल धार्मिक सिद्धातो की रक्षा एव धर्म सेवी एक वडी सभा की रक्षा के लिए इतना कष्ट उठा रहे है, और अपने सिद्धान्त से तिलमात्र भी नही हट रहे है, दूसरी ओर सुधारवादी फर्यादी लोग के साथ दौड रहे हैं जो ि से दूर हैं अत कोर्ट इस केश को खारिज करती है। इस

पराजय मान ली तभी से वे मेरे तथा जैन समाज के मित्र वन गये तव से देहली और उस प्रात मे जैन धर्म के ि कोई नही वोलता है।

इस विजय को मै अपनी विद्वता का महत्व नही मानता किन्तु दि० जैन धर्म के सर्वज्ञ भाषित एव गणधरादि वीतराग महर्षियो द्वारा प्रतिपादित अक एव सहेतुक सिद्धातो का ही सर्वोपरि महत्व मानता हू।

महा । पर भारी संकट एवं ि थ

भा० दि० जैन महासभा के सेढवाल (वेलगाव दक्षिण) अधिवेशन मे चन्द रामचन्द कोठारी एम० ए० और धावते आदि सुधारको ने भारी झगडा किया था। द दिवस पीछे ही महाराष्ट्र के जैन पत्रो मे ये र पढने मे आये कि-"महासभा हमारे तावे मे ई है उसके सभापति, महामन्त्री, कोषाध्यक्ष अमुक २ बनाये गये हैं अत महा के लिये द्रव्य आदि अमुक २ पते से समाज भेजे" सुधारको की इस मन गढत वात को पढ पर महासभा के ˋकर्ता एव सव लोग चकित होगये। यह कार्यवाही उन्ही सुधारको ने की थी।

पर मुकद्दमा एवं विजय

उस समय महासभा के मुखपत्र जैन के दक श्री प० राम जी शास्त्री थे और मैं स० एव था पत्र त्ता से मेरे द्वारा नि । था। जैन मे उन गढन्त वातो का जोरदार प्रति *किया गया। वालचन्द रामचन्द कोठारी* एम० ए० ने अपमान हम दोनो भाइयो पर मानहानि का नोटिस दिया कि दश दश हजार रुपये दो और क्षमा मागो अन्यथा फौजदारी (डिफीमेशन) केश दोनो पर ; तदनुसार वेलगाव (दि) कोर्ट मे मुकद्दमा दायर हो गया। हम दोनो भाई

अपनी अपनी दुकान को छोडकर बेलगाव पहुच गये, वहा पर हम दोनो को दस माह ठहरना पडा, बीच बीच मे हम दोनो आचार्य शान्तिसागर महाराज के दर्शनार्थ पहुच जाते थे। महाराज उन दिनो दक्षिण मे विहार कर रहे थे। बेलगाव मे वहा के श्री गरगट्टे महोदय आदि प्रसिद्ध व्यापारियो ने हमारे लिये ठहरने आदि की सुव्यवस्था करदी थी। सागली के प्रसिद्ध एव प्रमुख व्यापारी श्री सेठ गुलाबचन्द जी खेमचन्द जी शाह अपना व्यापार अपने सुपुत्रो को सोपकर केश मे पैरवी करने के लिये बेलगाव पहुंच गये। प्रसिद्ध वकील मजुमदार के कहने पर कोर्ट मे हमे कुर्सी दी गई थी। फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट श्री किणी महोदय ने पहले ही दिन कहा कि आप लोग दूर देश से यहा आये हो, केवल क्षमा मागकर आप लोग जासकते हो। हमने निवेदन किया कि हमारा कोई स्वार्थ नही है। अपने व्यापार मे बडी हानि उठाकर हम यहा आये हैं। यदि हम क्षमा मागकर चले जाय तो धर्म और समाज की सेवा करने वाली यह महासभा समाप्त हो जायगी उससे धर्म को भारी हानि होगी अत आप केश चलाइये इस केश मे शोलापुर, कोल्हापुर, सागली, पूना, बम्बई आदि के करोडपति श्रीमानो ने हमारे पक्ष मे गवाहिया दी, दानवीर सेठ रावजी राम दोशी शोलापुर ने बहुत परिश्रम एव पैरवी की। सेढवाल के राजमान्य पाटीलो की गवाही हुई। विरुद्ध पक्ष मे बालचन्द रामचन्द कोठारी कोल्हापुर राज्य के दीवान लट्ठे महोदय चौगुले वकील धावते आदि की गवाहिया हुई।

फैसले मे न्याय मूर्ति मजिस्ट्रेट किणी महोदय ने लिखा है कि ये दूर देश के विद्वान अपनी नि स्वार्थ वृत्ति से केवल धार्मिक सिद्धातो की रक्षा एव धर्म सेवी एक बडी सभा की रक्षा के लिए इतना कष्ट उठा रहे है, और अपने सिद्धान्त से तिलमात्र भी नही हट रहे है, दूसरी ओर सुधारवादी फर्यादी लोग के साथ दौड रहे है जो सिद्धान्त से दूर हैं अत कोर्ट इस केश को खारिज करती है। इस

भारी विजय से समाज मे उत्तर दक्षिण मे हर्ष की लहर दौड गई ।

धर्मरत्न ध ँ ीर पदवी

महासभा ने अपने फतेपुर वार्षिक अधिवेशन मे जो खुरई के श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी की अध्यक्षता मे हुआ था । पूज्य भाई सा श्री प० लालाराम जी शास्त्री को धर्मरत्न तथा मुझे धर्मवीर पदवी प्रदान की तथा महासभा की रक्षा और विजय का प्रस्ताव पास कर कृतज्ञता प्रकट थी ।

सरस्वती दिवाकर और विद्या वारिधि पदवी

दि० जैन शास्त्री परिपद के पैठन (महाराष्ट्र) अधिवेशन के के सभापति श्री प० लालाराम जी शास्त्री बनाये गये थे । कुशलगढ अधिवेशन मे उन्हे शास्त्रि परिषद ने "सरस्वती दिवाकर" पदवी दी थी और शास्त्रि परिपद के जयपुर के अधिवेशन मे मुझे सभापति बनाया गया था, उस अधिवेशन मे जयपुर राज्य के प्राय सभी मिनिस्टर सा० पधारे थे । और सनातनी विद्वान भी पधारे थे । शास्त्र परिषद ने मुझे "विद्यावारिधि की पदवी प्रदान की थी ।

।दू सभापतित्व

सिवनी मे दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद हुई थी उसका सभापति भी मुझे बनाया गया था उस अधिवेशन मे अनेक विद्वान इकट्ठे हुए थे उनमे श्री पन्नालाल जी कासलीवाल श्री प० गौरीलाल जी सिद्धान्त शास्त्री आदि प्रमुख थे ।

दि० जैन सिद्धान्त संर ी सभा का सभापतित्व

शान्तिवीर दि० जैन सिद्धान्त सरक्षिणी सभा ने भी मुझे सभापति बनाया था उसका फरिहा अधिवेशन वहा के पचकल्याणक के समय बहुत महत्वपूर्ण हुआ था वह प्रतिष्ठा दानवीर जैन रत्न राय साहब सेठ चादमल जी पाडया ने कराई थी वहा पर परम पूज्य

आचार्य बिम गर जी का सघ भी विराजमान था उस समय कई धर्मनिष्ठ महानुभावो को सभा की ओर से पदविया भी दी गई थी।

पत्र सपादन

महासभा के मुख पत्र जैन गजट का सपादन मैंने करीब १२ वर्ष तक आनरेरी किया है। जैन गजट केश पर मैंने उसे अर्ध साप्ताहिक भी कुछ समय के लिये कर दिया था। मेरा विशेष उपयोग और समय उसी मे लगने से मेरे व्यापार मे हानि भी होती थी। जैन दर्शन—पत्र का सपादन और सचालन मैंने स्वतन्त्र रूप से पाक्षिक रूप मे मोरेना से चालू किया था। कई वर्ष तक चलाया, पीछे बम्बई जाकर मैंने सिद्धात सरक्षिणी सभा के मन्त्री श्री सेठ निरन्जनलाल जी को सोप कर उक्त सभा का मुख पत्र उसे वना दिया सपादन मैं ही करता रहा। मेरे धार्मिक एव सैद्धान्तिक लेखो को सुन कर परम पूज्य आचार्य शातिसागर जी महाराज कहते थे कि जैन दर्शन के लेख धर्म रक्षा के लिये पूर्ण सहायक होते हैं। धर्मवीर दानवीर सेठ राव जी सखाराम दोशी शोलापुर जैन बोधक पत्र के सपादक थे उन्होंने मुझे स० सपादक , करीव २ वर्ष मैंने उसमे भी योग दिया।

परीक्षालय का मन्त्रित्व

भा० दि० जैन महासभा के परीक्षालय का मन्त्री भी मै कई वर्ष रहा हूँ। ी नई पद्धति से योजनायें मैंने चालू की थी, महासभा रि त सरक्षिणी सभा, शास्त्रि परिषद इनमे मेरा योग रहता है। इनका मैं प्रारम्भ से तक सदस्य हू और प्राय सभी अधिवेशनो मे मेरी उपस्थिति के लिये मुझे वाध्य होना पडता है।

अन्य पदवियाँ

मोरेना महाविद्यालय से श्लोक वार्तिक आदि जैन दर्शनाचार्य (उपाधि) परीक्षा उत्तीर्ण करने पर गुरुवर श्रद्धेय श्री प० गोपालदास

जी वरैया ने सस्था की ओर से `न्यायालकार, पदवी प्रदान की और मेडिल भी दिया तथा कलकत्ता समाज ने दश लक्षण पर्व मे बुलाकर शास्त्र प्रवचनो एव शका समाधान से प्रभावित होकर ,'न्याय दिवाकर" पदवी प्रदान की ।

लाहौरिया, भीमपुर, वासबाडा की एकत्रित हुई समाज ने "विद्वत्तिलक" पदवी प्रदान की। मुझे वहा दशलक्षण पर्व मे बुलाया गया था।

इन पदवियो का उल्लेख तो मेरे कार्यो और उनके परिणाम प्रसग मे मुझे करना पडा है। यह मेरी कलम से मेरी प्रशसा प्रतीत होती है परन्तु वास्तविक बात तो यह है कि मैं तो एक साधारण व्यक्ति हू मेरा शास्त्रीय बोध भी साधारण है, जैन सिद्धान्त अगाध है बहुत सूक्ष्म एव गम्भीर है मै कितना जानता हूँ। यह कृतज्ञता एव पदवी दान, धार्मिक समाज का धार्मिक वात्सल्य एव धार्मिक निष्ठा का प्रतीक है।

आचा एवं मुनिराजो का आशीर्वाद

परमपूज्य आचार्य शातिसागर महाराज इस समय मे महान तपस्वी वीतराग साधुरत्न हुए है। अनेक मुनिराजो का एव आर्यिकाओ का ˙ समाज को मिल रहा है यह सब दैन उक्त आचार्य शिरोमणि की है। मेरा यह परम सौभाग्य है कि मुझे प्रति-वर्ष उनके दर्शन एव पात्रदान का लाभ मिलता रहा है। दक्षिण प्रान्त मे शोलापुर, कोल्हापुर, ी बारामती आदि नगरो मे कईबार मैं उनके ˙ ˙गया। उत्तर मे अनेकवार उक्त आचार्य महाराज एव अन्य सभी आचार्यो एव मुनिराजो को आहार दान देकर मैंने अपने जीवन को सफल माना है। मुरेना मे आचार्य शातिसागर महाराज का सघ वि० सम्वत् ८४ मे आया था २५ दिन मोरेना मे सघ ठहराया था उस बम्बई, कल , अजमेर आदि के अनेक श्रीमान् उनके ˙ र्थ आये थे। `ग्वालियर राज्य के कई मिनिस्टर

साहव भी आये थे। वहुत प्रभावना हुई थी मुरेना महाविद्यालय के तोरण द्वार पर १०-१० फुट ऊचे चार पाषाण स्तम्भो पर आचार्य शाँतिसागर महाराज का दक्षिण मे उत्तर विहार का इतिहास खुदवा कर मैंने सस्था की ओर से लगवा दिया है। यह अतीव शोभनीय स्थायी इतिहास है। मैं मुनियो मे पूर्ण श्रद्धा भक्ति रखता हूँ मुझे सभी साधुओ का मगलमय आशीर्वाद मिलता रहा है। यह मेरे कल्याण का साधक है।

आचार्य सघ पर घोर सकट

मोरेना से विहार कर जव आचार्य सघ राजाखेडा (धौलपुर) पहुचा तव वहा पर कुछ अ इयो ने सघ पर आक्रमण करने का दुष्प्रयत्न किया। उस समय मे वही पर था और मेरे छोटे भाई वावू श्रीलालजी जौहरी भी जयपुर से आगये थे। उन्होने अपने जीवन की कुछ भी परवा नही करके तुरन्त छत से नीचे कूदकर मुख्य ी को पकड लिया। और पुलिस को सोप दिया मैंने सव उपद्रव पत्यक्ष देखा था अत मैंने जगह २ कई तार कर दिये और देहली ग्वालियर आदि के प्रसिद्ध करीव २५ महानुभावो का एक डेप्युटेशन धौलपुर नरेश के पास मे ले गया। सबो को राजकीय महल मे ठहराया गया। दरबार मे विचार चला। धौलपुर नरेश के दीवान वावू कन्नोमलजी एम० ए० के जज भी थे जैन धर्म के भी जानकार थे। मेरा उनसे अच्छा परिचय था। नरेश के सामने कहा कि जैन धर्म अहिसा प्रधान धर्म है अत किसी को कष्ट नही दिया जाय। यह प्रकरण समाप्त कर दिया जाय तो अच्छा है इस कथन पर मैंने तुरत कहाकि जैन धर्म किसी जीव को मारना नही वंताता कष्ट देना भी नही कहता परन्तु अन्यायी एव अपराधियो को दण्ड नही दिया जाय तो ससार मे अपराध और हिंसा वढेगी। आप जज हैं आप दण्ड भी देते है। जेल में भेजते हैं तो क्या आप कष्ट देते हैं या हिंसा करते है नही किन्तु न्याय एव निरपराध जगत की प्रवृत्ति देखना चाहते हैं। परिणाम यह

हुआ कि धौलपुर नरेश की आज्ञानुसार केश चला और अपराधियो को पाच-पाच वर्ष की जेल और १००), १००) जुर्माना किया।

मेरा व्रत ग्रहण

मथुरा चौरासी सिध्द क्षेत्र पर परम पूज्य आचार्य शान्ति सागर महाराज से मोरेना महाविद्यालय के अधिष्ठाता श्री प० धन्नालाल जी क   ीवाल ने सप्तम प्रतिमा के व्रत लिये थे और मैंने दूसरी प्रति   के व्रत लिये थे कुछ समय बाद आ   ॅ महावीर कीर्ति महाराज से मैने तीसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये थे। तभी से (करीब ४० वर्षो से) मैं जैनी के हाथ का ही और कुए का ही जल लेता हू।

प्राण घातक   से रक्षा

गरमी के दिन थे मै बम्बई जारहा था पजा   ` झांसी स्टेशन पर २० मिनट ठहरती थी उस दिन सिगनल पर ही २० मिनट रुकी रही। फिर २० मिनट से पहिले भी चलदी। मैं बिस्तर व ट्रक गाडी मे ही छोडकर लोटा डोर ग्लास छन्ना लेकर कूआ पर जल पीने गया बाबू से पूछने पर उसने २० मिनट ठहरेगी ऐसा कह दिया, जल पीकर जब लौटा तो दूर से मैंने देखा कि प   मेल चल दिया है मैं दौड़कर इ जन के पास डिब्बे मे   कर   ी पर चढ गया। थोडी देर मे मेरा हाथ नीचे सरक   पैर भी ॅ   से सरक फिर दूसरा हाथ और दूसरा पैर भी छूट गया मैं चलती गाडी से गिर कर पटरी के निकट लेटा हुआ   । गाडी आगे   र खडी हो गई। लोग चिल्ला रहे थे कि मुसाफिर कट गया। गार्ड वगैरह अनेक लोग इकट्ठे हो गये। मैं प्लेट फार्म पर   । तब सभी लोगो ने आ ॅ के   मुझसे पूछा और देखा कि शरीर का कोई अग नही कटा है। मेरा सामान उतार दि   गया और रेल्वे के स्पेशल मजिस्ट्रेट के पास मुझे अधिकारी ले गये उन्होने रिपोर्ट पेश करदी। मजिस्ट्रेट ने कहा कि   चलती गाडी मे चढे हो। मैंने कहा कि

वाबू ने २० मिनट समय गाडी के ठहरने का वताया था। मेरा कसूर नही है। तव उन्होने कहा कि चलती ट्रेन मे चढना ही अपराध है उस पर १००) रु० दण्ड होना चाहिये। परन्तु आपकी पगडी देखकर और परिचय पाकर आप विद्वान हैं और सरलता से सही बात आपने कहदी है आप पर केश नही चलेगा आप जाइये। दूसरी गाडी से जव मैं बम्बई पहुचा तो एक दिन लेट होने की चर्चा के प्रसग मे रेल से गिरने की बात मैने कही तब एक महानुभाव बोले कि प मेल से गिरने पर आपका कोई अगभग भी नही हुआ, ावती देवी ने आपकी रक्षा की है वह अव्रती सम्यग्दृष्टि है। धर्मात्माओ की सेवा सहायता करती है।

दूसरी प्राण घातक घटना तब हुई थी जब कि श्री सिद्ध क्षेत्र पर परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर महाराज परम पूज्य आचार्य सुधर्मसागर जी आदि सघ ठहरा हुआ था उनके कर मै तथा मेरे छोटे भाई श्रीलाल जी जोहरी दोनो थ पहाड पर ऊपर चढ गये। परन्तु यह अनुभव नही किया कि सीधे ऊचे पहाड पर चढना नितान्त कठिन एव पूरा खतरा है। से लुढकने का प्रबल प्रसग आगया। जैसे तैसे णमोकार मन्त्र जपते हुए बच गये तव पूजन किया।

मैंने भेंट कभी नही ली

धार्मिक प्रसगो मे समाज मुझे बुलाता है और भेट करता है। कलकत्ता बम्बई देहली आदि नगरो मे ऐसे प्रसग अनेक बार आये हैं। इन्दौर मे वहा के समाज ने पर्व मे बुलाया था मै सर सेठ हुकमचन्द जी के भवन मे ठहरा हुआ था, विदा करते समय उन्होने १०००) रु० एक अगूठी, एक दुशाला और श्रीफल मुझे भेंट किया सेठ साहव और श्री प० धन्नालाल जी कासलीवाल ने आग्रह भी किया परन्तु केवल श्रीफल लेकर उनका आदर माना, और कोई भेंट स्वीकार नही की। केवल आने जाने का मार्ग व्यय लेलेता हूं। मैने भ से भेंट नही

लेने का सकल्प रखा है। जो विद्वान भेंट लेते है वह बुरा नही है धार्मिक आदर है परन्तु वर्तमान समय मे मेरा यह अनुभव है कि भेंट लेने पर दातार श्रीमान् का कुछ प्रभाव (असर) पडता ही है और धर्म की स्पष्ट वात कहने मे उस विद्वान को कुछ सकोच होता है।

मोरेना सस्था के बगीचे की थोडी सी भूमि अपना मकान वनाने के लिए मैने सस्था के ट्रस्टियो से मागी थी, और उसकी कीमत मे ४०००) रुपये मैं देता था परन्तु सभी ट्रस्टियो ने लिखा है कि आपने सस्था की बहुत सेवा की है आपको बिना मूल्य भूमि हम देते है आप स्वीकार करें उन्होने पत्रो मे आग्रह भी किया परन्तु बिना मूल्य लेना मैने स्वीकार नही किया फिर अन्यत्र मकान खरीद लिया निस्पृह और नि स्वार्थ सेवा मे आनन्द मानता हूँ।

सिद्द क्षेत्रो की वन्दना

अनादि तीर्थ श्री सम्मेद शिखर की वदना मैने १०–१२ बार की है। गिरनारी, मागी तुगी, वडवानी सिद्ध क्षेत्रो की वन्दना दो बार की है गजपथ, सोनागिर क्षेत्रो की वन्दना अनेक बार की है। चम्पापुर पवापुर की वदना भी दो वार की है।

अतिशय क्षेत्र– श्रवण वेल गोला (जैन विद्री) मूल विद्री, कारकल, देवगढ, पपौरा, थवोन जी, अहार, कपिला इन अतिशय क्षेत्रो की वन्दना मैने दो वार की है।

आचार्य महाराज का अन्तिम आशीर्वाद

कुथलगिर सिद्ध क्षेत्र पर जब आचार्य शातिसागर महाराज ने सल्लेखना समाधि ग्रहण की थी तब वहा उनके दर्शनार्थ हजारो भक्त पहुँचे थे। सल्लेखना समाधिमरण के समय मै वहा पर एक माह ठहरा था, इन दिनो मे महाराज ने ३–४ बार मुझ अपने पास बुला-कर कई वात कही और मुझसे पूछी। एक दिन महाराज ने मुझसे

कहा कि तुम अपना धर्म साधन करते हुए निर्भीकता से धर्म रक्षा मे तत्पर रहते हो, आगम पर अटल श्रद्धा रखते हो तुम्हारा सम्यग्दर्शन दृढ है तुम्हारा कल्याण होगा। परमपूज्य आचार्य महाराज से इस अन्तिम आशीर्वाद से मुझे बहुत आनन्द हुआ। उस समय श्री प० तनसुखलाल जी काला और श्री प० सुमेरचन्द जी दिवाकर न्यायतीर्थ भी कुथलगिर मे मेरे साथ थे। दिवाकर जी ने तो महाराज जी के निकट बैठकर उनसे पूछकर अनेक बाते नोट की है।

मेरी भावना और मेरा प्रयत्न

मेरी भावना और मेरा प्रयत्न यह रहता है कि दि० जैन समाज मे रात्रि भोजन सर्वथा नही हो, उससे त्रस जीवो का कलेवर भी प्रछन्न रूप से भक्षण मे आजाता है। देव दर्शन से आत्मीय गुणो एव सम्यग्दर्शन का विकास होता है। जो नवयुवक छात्र देव दर्शन नही करते है उनमे जैनत्व नही है।

भावो की शुद्धि के लिए वाह्य (द्रव्य) शुद्धि परमावश्यक है। बिना वाह्य शुद्धि के अतरग शुद्धि अशक्य है।

मिथ्या एकान्त प्रचार को रोका जाय अन्यथा एक नया सम्प्रदाय वनकर सिद्धात एव धर्म का पूर्ण विघातक होगा वर्तमान मुनि गण भी निर्ग्रन्थता निस्परिग्रहता, निर्ममत्वता पूर्ण त्याग एव परिषह उपसर्ग सहन करने से तथा सल्लेखना समाधिमरण धारण करने के चतुर्थ काल के मुनियो के समान ही वदनीय एव पूज्य है। इस वर्तमान शिथिलाचारी देश काल मे प्रथा इस हीन सहनन मे भी वे दि० जैन धर्म का सर्वोच्च परमादर्श प्रगट कर रहे है उनमे श्रद्धा भक्ति रखता हुआ समाज अपना कल्याण उनके द्वारा करता रहे।

सभी सस्कृत सस्थाओ मे धर्म एव सिद्धान्त के ठोस शिक्षण के साथ छात्रो मे धार्मिक सस्कार एव आचार विचार आगमानुकूल उत्पन्न किये जायें।

समाज मे धार्मिक वातावरण और धार्मिक वात्सल्य बना रहे तथा कौटुम्बिक निर्वाह के लिए लौकिक शिक्षण एव व्यवहारिक कार्य करते हुए यथा शक्ति आत्मीय हित भी सभी करते रहे। बस यही मेरी भावना है और उसी के लिए मेरा प्रयत्न है।

अन्त मे यही मेरी भावना रहती है कि मुझे इस जीवन मे देव शास्त्र गुरु की आराधना भक्ति सदैव मिलती रहे और अपना जीवन ससार से विरक्त बनाकर शान्त भाव से मैं अपने आत्म हित मे लगा रहूँ। ॐ नम सिद्धेभ्य

सर्व मगल मागल्य सर्व कल्याण कारकम्
प्रधान सर्वधर्माणा जैन जयतु शासनम्

श्रुत पंचमी
५-६-७३

मक्खनलाल शास्त्री तिलक
मोरेना (म०प्र०)

चारो अनुयोगी गम्भीर सस्कृत शास्त्रो के मर्मज्ञ तथा लगभग
१०० एक सौ सस्कृत शास्त्रो के टीकाकार नैष्ठिक
प्रतिमाधारी, आगमनिष्ठ, महाविद्वान

विद्वत् शिरोमणि, धर्मरत्न, सरस्वती दिवाकर स्व०
श्री पं० लालाराम जी शास्त्री महोदय तिलक

* श्री वर्धमानायनमः *

सविनय समर्पण

धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर श्रद्धेय

श्रीमान् पं० लालाराम जी शास्त्री तिलक

पूज्यवर !

आप मेरे सहोदर वडे भाई साहव थे इसलिये आपके प्रति मेरा हार्दिक विनय भाव तो पहले से ही था। परतु आपकी असाधारण गुण गरिमा, नैष्ठिक प्रतिमा पालन रूप उज्ज्वल चारित्र, विद्वानो द्वारा प्रशसनीय अगाध विद्वत्ता एव समाज मान्य महती प्रतिष्ठा आदि विशेपताओ से आपके प्रति मेरी श्रद्धा सदैव रही है।

आपने चारो अनुयोगो के लगभग एक शत (एक सौ) सस्कृत गभीर शास्त्रो की भाव पूर्ण टीकाऐ वनाकर समाज को तत्ववोध तथा मूल ग्रन्थ के आशय के ही अनुकूल जो वहुत हितकारी लाभ दिया है उस महान् उपकार से वह सदैव उपकृत रहेगा।

आप मेरे विद्या गुरू भी थे, शास्त्रो का तल स्पर्शी विशेष अनुभव जो आपने प्राप्त किया था उसी अनुभव की दृढता आपसे मुझे मिली है। इसीलिये विद्वानो का अनेक विषयो मे मतभेद होने पर भी शास्त्राधार से पूर्वाचार्यो के वचनो को इस "आगम मार्ग प्रकाशक" ग्रन्थ मे मैंने उद्धत किया है।

पूज्यवर ! आपके द्वारा प्राप्त शास्त्रीय सिद्धान्त की जानकारी का ही परिणाम यह है और आपकी जो पूर्वाचार्यो के वचनो पर अटल एव दृढ श्रद्धा थी, उसी प्रकार मेरी भी है।

अत वडी विनम्रता एव श्रद्धाभाव से आपके कर कमलो मे इस ग्रन्थ को मैं भेट करता हूँ।

आपका विनम्र

श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक

सुधर्मध्यान प्रदीप, सुधर्म श्रावकाचार, जिन चतुर्विशतिका आदि गम्भीर महान् सस्कृत शास्त्रो के रचयिता तथा परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ति आचार्य शान्तिसागर महाराज का दक्षिण से उत्तर भारत मे लाकर विहार कराने वाले और सघस्थ मुनिराजो को सस्कृत का अध्ययन कराने वाले चारो अनुयोगी शास्त्रो के महान् विद्वान, तपस्वी साधु परम पूज्य, विद्वत्पूज्य पाद, श्री १०८ स्वर्गीय

आचार्य सुधर्मसागर जी ारा

✻ श्री वर्द्धमानाय नम ✻

"स्व० परम पूज्य आचार्य सुधर्म सागर महाराज का स्तवन"

(श्री मक्खनलाल शास्त्री द्वारा रचित)

ऋपि वर सुधर्म सागर, सन्मार्ग तू बताजा ।
पथ भ्रष्ट हो रहे जो, पथ मे उन्हे लगाजा ॥
ऋषि वर सुधर्म०

सस्कार हमसे छूटे, उपदेश पाय भूठे ।
भूले हुए मनुज को, आचार तू सिखाजा ॥
ऋपि वर सुधर्म०

हिंसा, कुशील, चोरी, दुर्व्यसन बढ रहे है ।
पापो तू लिप्त जन को, सद्धर्म से बताजा ॥
ऋषि वर सुधर्म०

विज्ञान घन घटा मे, अध्यात्मवाद छूटा ।
तप, त्याग, शाति रस की, धारा सुधा बहाजा ॥
ऋषि वर सुधर्म०

हित कर सु वीर वाणी, ग्रन्थो मे तूने गूथी ।
सब का वही सहारा, मत भेद तू मिटाजा ॥
ऋषि वर सुधर्म०

मुनि दान देव पूजा, करुणा करे सबो पर ।
मक्खन सु बोध दीपक, ज्योती प्रभो जलाजा ॥
ऋषि वर सुधर्म०

॥ श्री वर्द्धमानाय नम ॥

इस आगम मार्ग-प्रकाशक ग्रन्थ के विषय में हमारा विनम्र

* निवेदन *

कृपा कर इस निवेदन को ध्यान पूर्वक पढकर ही इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करिये।

कृपया इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने के पहिले इस निवेदन को ध्यान से अवश्य पढ लीजिये। परम पूज्य मुनिराजो, पूज्य त्यागियो एवं आगम श्रद्धालु विद्वानो से हमारा यह नम्र निवेदन है कि-इस "आगम मार्ग प्रकाशक" ग्रन्थ मे हमनें जितने विषय लिखे हैं, तथा सैद्धांतिक शंकाओ का जो समाधान किया है और समाज में धार्मिक पद्धति मे जो मतभेद चल रहे है उन सभी विषयो पर थोडा-थोडा प्रकाश डाला है यह सब पूर्वाचार्यों द्वारा रचित शास्त्रो के आधार से ही लिखा है। सभी विषयो के समर्थन मे सहेतुक सयुक्ति आगम के प्रमाण हमने दिये है। दूसरे शब्दो मे यह कहना चाहिये कि यह ग्रन्थ आगम प्रमाणो का ही

संकलन है। इसलिये इस ग्रन्थ का "आगम मार्ग प्रकाशक" यह नाम सार्थक है। इस ग्रन्थ मे कोई एक बात भी हमने ऐसी नही लिखी है जो आगम के विरुद्ध हो अथवा स्वतंत्र विचारो का प्रतीक हो। वीतराग महर्षियो के प्रति हमारी पूर्ण श्रद्धा है उनके बचनो पर हमारी अटूट दृढता है तत्वो के यथार्थ बोध के लिये तथा जीवो के उद्धार के लिये उनके वचन ही प्रमाण एव साधक है। शास्त्रो के बिरुद्ध एक शब्द कहना भी हम निद्य समझते है।

दि० जैन मात्र को जैनागम एवं महर्षियो का श्रद्धापूर्वक उपकार मानना चाहिये, पूर्वाचार्यो ने बताया है—

अभिमत फल सिद्धे, रभ्युपाय: सुबोध.
भवतिहि स्च शास्त्रात्,तस्य चोत्पत्ति राप्तात्
इति भवति सपूज्य' तत्प्रसादात् प्रवुद्धे.
नहि कृत मुपकार साधवो विस्मरन्ति

अर्थात् अपने कल्याण की प्राप्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान का प्राप्त करना है वह सम्यग्ज्ञान दि० जैन शास्त्रो से अर्थात् जिनवाणी से होता है और शास्त्रो की उत्पत्ति आप्त से अर्थात् सर्वज्ञवाणी तथा गणधर श्रुत केवली आदि पूर्वाचार्यो से होती है। इसलिये उन शास्त्रो पर दृढ श्रद्धा रखना ही सबो के लिये हितकारी है, उनके महान् उपकारो को कभी नहीं भूलना चाहिये क्योंकि आगम प्रमाण ही

हमारे सद्विचारो एवं धार्मिक प्रवर्तियो का मूलाधार है। उन्हीं आगम प्रमाणो से हमने यह ग्रन्थ लिखा है। आगम प्रमाण ही सर्वोपरि अकाट्य समाधान और श्रद्धान का विषय है।

फिर भी हमारी अजानकारी से त्रुटि एव भूल हो सकती है क्योकि–हमारा ज्ञान बहुत थोडा है, शास्त्रो का रहस्य अत्यन्त गम्भीर और सूक्ष्म है उसे समझने मे बडे २ ज्ञानी भी अपनी असमर्थता प्रकट करते है। तब हम सरीखे स्वल्प बोध वालो से जो तत्व के स्थूल स्वरूप को समझने मे भी नितान्त असमर्थ है। भूल एव त्रुटि हो जाना सहज है।

देखिये आचार्य अनन्तवीर्य स्वामी ने न्याय ग्रन्थ प्रमेय रत्नमाला रची है वे आचार्य अपने गुरु माणिक्यनन्दि के लिये नमस्कार करते हुए कहते है—

अकलक वचोम्बोधे, रुद्धध्रे येन धीमता
न्याय विद्या मृत तस्मै, नमो माणिक्यनदि ने

(प्रमेय रत्नमाला)

अर्थात् अकलंकदेव के वचनरूपी समुद्र से जिन्होने न्याय विद्यारूपी अमृत ग्रहण कर लिया उन माणिक्यनन्दी आचार्य को मै नमस्कार करता हूं वे ही आचार्य अनन्तवीर्य स्वामी प्रमेय कमल मार्तंड के रचियता आचार्य प्रभाचन्द की स्तुति करते हुए कहते हैं—

प्रभेन्दु वचनोदार, चन्द्रिका प्रसरे सति
मादृसा. क्वनु गण्यन्ते ज्योतिरिंगण सन्निभाः
(प्रमेय रत्नमाला)

अर्थ—आचार्य अनन्तवीर्य स्वामी कहते है कि—आचार्य प्रभाचन्द स्वामी की बचनरूपी चन्द्रमा की चादनी भू-मडल मे सर्वत्र फैली हुई है उस चाँदनी के सामने मुझ सरीखा पटवीजना (जुगनू) का प्रकाश किस गिनती मे है। एक छोटा उडने वाला कीडा जो वर्षात मे चमकता है उसे पटवीजना कहते है, उसको चमक चन्द्रमा के प्रकाश के सामने किसी गिनती मे नही है यही बात आचार्य अनत वीर्य स्वामी ने आचार्य माणिक्यनन्दी और आचार्य प्रभाचन्द्र के बोध के सामने अपना बोध नगण्य बताते हुए कही है।

इसी प्रकार आचार्य नेमिचन्द सिद्धात चक्रवर्ती ने द्रव्य सग्रह ग्रन्थ बनाया है उसके अन्त मे यह गाथा लिखी है—

दव्व सग्गह मिद मुणि णाहा
दोप सचय चुदा सुद पुण्णा
सोधयन्तु तणु, सुत्त धरेण
णेमिचन्द मुणिणा, भणिय ज

(द्रव्य सग्रह)

अर्थात्'— गोमट्टसारादि महान् ग्रन्थो के रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ति ने अपने बनाये हुए द्रव्य सग्रह ग्रन्थ के अन्त मे यह लिखा है हे मुनियो के नाथ पूर्ण श्रुत ज्ञानधारी निर्दोष विशुद्ध परिणामधारी आप लोग इस मेरे वनाये हुए द्रव्य सग्रह ग्रन्थ मे जो कुछ भी भूल या त्रुटि हुई हो उसका आप संशोधन करके सुधार कर लेवें। क्योकि मैं थोड़े ज्ञान का धारक हूँ।

महान् आचार्य यह बात कहते है तव हम अपने साधारण तुच्छ ज्ञान को किस गिनती मे समझें, इस स्थिति मे इस ग्रन्थ की रचना मे हमसे भी भूलो का होना सहज है अत. पूज्य त्यागियो और आगम श्रद्धालु विद्वानो से हमारा निवेदन है कि वे हमारी भूल या त्रुटि के लिए हमको क्षमा करें। और उस त्रुटि का सुधार कर लेवें।

आगम का विरोध नहीं करें

एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि जो अपनी अपनी आम्नाय और अपनी२ प्रचलित पद्धति के आधार पर अपने मन्तव्यो पर दृढ है उन सज्जनो से हम इतना निवेदन करना उचित समझते हैं कि वे भले ही अपनी पद्धति का पालन करें परन्तु आगम के प्रमाणो को देखते और जानते हुए अपने मन्तव्यो के समर्थन मे आगम का विरोध नहीं करें उनका वैसा विरोध करना पूर्वाचार्यो के

वचनो का (शास्त्रो का) विरोध ठहरेगा जो समाज के लिए अहितकर और उनके लिए कर्मबध का कारण होगा। आगम सिद्ध प्रमाण विवाद का विषय नही है यदि आगम सिद्ध बातो मे भी कोई शंका हो तो उसे जिज्ञासा बुद्धि से सिद्धात वेत्ता विशेष ज्ञानियो से समझ कर समाधान कर लेना चाहिये।

जहाँ अन्य दर्शन (मत) वालो के साथ विवाद होता है वहाँ तो प्रबल सद्हेतुओ से एव प्रबल युक्तियो से शास्त्रार्थ कर उन्हे पराजित किया जा सकता है परन्तु जहाँ सभी पक्ष आगम मानने वाले हो वहाँ तो आगम प्रमाण ही दोनो का मूल आधार है।

उसी बात को ध्यान मे रखकर इस ग्रन्थ मे जितने भी बिषय हमने लिखे है उन सबो की सिद्धि मे पूर्वाचार्यो के प्रमाण दिये है, उन प्रमाणो को देखते हुए भी जो कोई शास्त्र सम्मत बातो का निषेध करे अथवा विवाद खडा करें तो उनके समाधान के लिए आगम प्रमाण के सिवाय हम और क्या कह सकते है ? फिर वे जैसा समझें और जो करें यह उनकी इच्छा पर निर्भर है।

हमने इस ग्रन्थ मे जो कुछ लिखा है वह समाज के हित की सद्भावना से लिखा है और पक्ष विपक्ष का कोई लक्ष्य नही रखकर अपने सरल भावो से आगम के प्रकाश मे

ही लिखा है। क्योंकि आगम का प्रकाश ही सन्मार्ग दर्शक एव यथार्थ वस्तु का बोध कराने वाला है, तथा वही सभी के लिए हितकारी है।

प्रबन्ध रचना के विषय मे एक नीतिकार का श्लोक स्मरण रखने योग्य है।

गच्छत. स्खलन क्वापि, भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जना स्तत्र, समा दधति सज्जना. ॥

अर्थ.— चलते२ कोई व्यक्ति अपने प्रमाद से या अपनी भूल से कहीं पर गिर भी जाता है तो उसे गिरा हुआ देखकर दुर्जन स्वभाव वाले पुरुष हँसते है और सज्जन स्वभाव वाले पुरुष उसे सभाल लेते है यही बात इस हमारी ग्रन्थ रचना मे घटित होती है। भलेही कोई महानुभाव इस ग्रन्थ की कटु आलोचना भी करें तो हमे उस आलोचना से खेद नही होगा। और हम पक्ष-विपक्ष के निराधार विवाद और उत्तर प्रत्युत्तर मे भी नही पडेंगे क्योकि इस ग्रन्थ मे आचार्यों के वचनो का ही हमने दिग्दर्शन कराया है आगम प्रमाण ही हमारे सद्विचारो एव धार्मिक प्रवृतियो का मूलाधार है। और वही व्यवहार सम्यग्दृष्टियो के लिए श्रद्धान करने योग्य है।

शास्त्रों की प्रमाणता और अप्रमाणता पर विचार

पूर्वाचार्यो के रचे हुऐ शास्त्रो की आलोचना करना

और किसी शास्त्र को प्रमाण तथा किसी को अप्रमाण ठहरा देना और अमुक आचार्य अमुक समय के है दूसरे अमुक समय के पीछे के है अतः एक प्रमाण हैं तथा दूसरे अप्रमाण है ऐसी पद्धति या साहस कुछ समय से चल पडा है परन्तु छद्मस्थो द्वारा शास्त्रो की अथवा आचार्यों की ऐसी आलोचना करना अग्राह्य एव निन्द्य है। वकीलो जैसी बहस (आर्गूमेन्ट) लौकिक बातो में की जा सकती है। शास्त्रो के विषय में नही। शास्त्र सर्वज्ञ कथित-जिनवाणी के आधार पर वीतराग महर्षियो ने जीवो के कल्याण के लिये बनाये है उन्हे अप्रमाण ठहराना उनका अवर्णावाद है एवं दर्शन मोहनीय कर्म वन्ध का कारण है।

कहीं२ शास्त्रों में मतभेदसा प्रतीत होता है

मौखिक श्रुताभ्यास परम्परा के कारण जहां कही विरोध दीखता है वहा आचार्यो ने वैसा ही लिखा है।

गोमट्टसार मे आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ति ने लिखा है—

तिगुणा सत्त गुणा वा, सव्वत्था माणुसी पमाणादो

अर्थात् सर्वार्थ सिद्दि के देवो की संख्या मानुषियो के प्रमाण से तीन गुणी अथवा सात गुणी अधिक है तिगुणी और सात गुणी सख्या मे वहुत वडा अन्तर है परन्तु आचार्य महाराज ने मतभेद वाली दोनो संख्याओ को स्पष्ट

रख दिया है उन्होने एक संख्या को प्रमाण दूसरी को अप्रमाण नही कहा है । सम्भँव है मौखिक आचार्य परम्परा से मतभेद हो अथवा एक सख्या जघन्य हो एक उत्कृष्ट हो। और भी देखिये—

तिसय भणन्ति केई, चउ रुत्तर पच मत्तयं कई
उवसामक परिमाण, खवगाण होइ तद्विगुणं
(गोमट्टसार)

अर्थ – आचार्य नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ति कहते है कि उपशामक महामुनियो का परिमाण (सख्या) कोई आचार्य तो तीन सौ बताते हैं कोई आचार्य तीन सौ चार बताते है और कोई आचार्य दो सौ निन्यानवै बताते है, क्षपक श्रेणी वालो का परिमाण उनसे दूना है ।

इस कथन मे एक दूसरे से विरोध है फिर भी आचार्य नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ति ने किसी को प्रमाण और किसी को अप्रमाण नही कहा है प्रथमानुयोग शास्त्र मे भी मौखिक श्रुताभ्यास परम्परा से चले आये कथन में कही विरोध भी प्रतीत होता है जैसे आचार्य गुणभद्र स्वामी ने सीता को रावण की पुत्री लिखा है और सती सीता के कारण ही निमित्त ज्ञानियो से अपनी मृत्यु का योग समझकर रावण ने जन्म होते ही सीता को मजूसा मे बिठाकर नदी मे छुडवा दिया, उस मंजूसा को राजा जनक ने पालियां ।

अतः जन्म से ही सीता का पालन पोषण राजा क के ही यहां हुआ । अतः वह उनकी पुत्री प्रसिद्ध हुई । श्रीरामचन्द्र जी के साथ विवाह भी राजा जनक ने किया । इसलिये आ ॅरविषेणाचार्य ने जनक पुत्री कहकर सीता का उल्लेख पद्मपुराण में किया है । उत्तर पुराण मे आचार्य गुणभद्र स्वामी ने रा की पुत्री कहकर सीता का उल्लेख किया है । अपने२ दृष्टिकोण मे दोनों ही ठीक है । अतः पद्मपुराण या उत्तरपुराण दोनों मे किसी को भी अप्रमाण ठहराना वस्तु स्थिति के विरुद्ध है । हमे स्मरण है कि कुछ वर्ष पहले एक लेख था, सिद्धान्त शास्त्रो के टीकाकार आचार्य वीरसेन और र्य यतिवृषभाचार्य के कथन में कुछ भेद ब था । और भी गोमट्टसार आदि ग्रन्थो में मत-भेद सा मालूम पड़ता है । परन्तु वास्तव मे मतभेद नही है

जब महान् आचार्य किसी दूसरे आचार्य के कथन को अ ण नही बताते हैं साधारण ज्ञान वाले अल्पज्ञ किसी कथन को अ ण कहने का दुःसाहस करें यह आज्ञा सम्यक्त्व के ॅ विपरीत बात है ।

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्वं हेतुभिर्नैव हन्यते
आज्ञा सिद्धश्च तद्ग्राह्यं नान्यथा वादिनो जिनाः

आचार्य परम्परा का यह श्लोक श्रद्धालु पुरुषों के लिए पूर्ण हितकारक है और सम्यग्दर्शन का उत्पादक है ।

इसका अर्थ यह है कि— जिनेन्द्र देव ने जिन तत्वो का वर्णन किया है वे अत्यन्त सूक्ष्म है। हमारे ज्ञान के गम्य नही है। भगवान के कहे हुए तत्व अकाट्य है। किन्हीं हेतुओ से उनका खण्डन नहीं हो सकता है। वस्तु स्वरूप के यथार्थ प्रतिपादक है। उन्हें आज्ञा मानकर ग्रहण करना चाहिये। क्योकि जिनेन्द्र देव अन्यथावादी नही कहे जासकते हैं। इसका खुलासा यह है कि दो कारणो से वस्तु स्वरूप मे अन्यथा भाव अथवा विपरीत कथन हो सकता है एक तो यह कि पदार्थ का स्वरूप बताने वाला रागी द्वेषी हो तो वह जानबूझ करके भी पदार्थ का विपरीत अर्थ बता सकता है। अथवा अल्पज्ञ हो, वह वस्तु स्वरूप को जानने मे असमर्थ है अतः वस्तु की अजानकारी से अन्यथा या विपरीत कह सकता है। परन्तु जो वीतराग है और सर्वज्ञ है उसका व हुआ वस्तु स्वरूप कभी अन्यथा नही ठहर सकता है, पूर्ण रूप से यथार्थ एवं अकाट्य ही होगा।

भ न जिनेन्द्र देव तीर्थंकर परम विशुद्ध परम वीतराग हैं और वे ˘ है अतः उनके बचन ही जिनवाणी हैं उसे भगवान की आज्ञा समझ कर उस पर पूर्ण श्रद्धा करना चाहिये यही व्यवहार सम्यग्दर्शन है। यही बात आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने गोमट्टसार में कही है

जो सद्दहदि जिणुत्तं हट्ठो-अबिरदोसो

अर्थात् जो जिनेन्द्र भगवान के वचनो पर दृढ श्रद्धान रखता है वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।

आज धार्मिक समाज मे भी सैद्धान्तिक मतभेद हैं। आम्नाय पद्धति मे मतभेद है। उन मतभेदो के रहते हुए भी सभी धर्मात्मा पुरुष देव गुरु शास्त्र के श्रद्धावान हैं और धर्म साधन मे लगे हुए हैं। हमने जो आगम मार्ग प्रकाशक ग्रन्थ लिखा है वह मतभेदो को दूर करने के लिए ही लिखा है। वर्तमान समय मे धार्मिको मे परस्पर प्रेम एव साधर्म्य एकता रहनी चाहिये। मतभेद तथा आम्नाय पद्धति भलेही जुदी जुदी बनी रहे किन्तु आगम प्रमाणो का विरोध तो किसी को भी नहीं करना चाहिये। यही हमारा सभी सज्जनो से आग्रह पूर्ण निवेदन है।

इस ग्रन्थ के लिखते समय शास्त्रीय प्रमाणो की खोज और ग्रन्थ रचना में लगभग ८।१० महीना हमको अत्यधिक परिश्रम एव मानसिक शक्ति लगानी पडी है रात्रि मे दो-दो बजे उठकर हमने इस ग्रन्थ को लिखा है। इस ग्रन्थ के लिखने का हमारा उद्देश्य यही है कि समाज आचार्य वचनो (शास्त्रो) का दृढ श्रद्धानी बने तथा परम पूज्य मुनिराजो में पूर्ण श्रद्धा रखे और आगम विपरीत अथवा धर्म विरुद्ध स्वतन्त्र मन्तव्यो के प्रचार मे अपना अहित नही होने देवें। इसके सिवा किसी प्रकार के प्रयोजन अथवा

अर्थलाभ से हमारा सर्वथा सम्बन्ध नही है। यही बात पञ्चाध्यायी के प्रकाशन की है। उसके प्रकाशन मे भी हमारा किसी प्रकार का कोई प्रयोजन नही है। परमार्थ दृष्टि से ही हमारा यह सत्प्रयत्न है।

इस ग्रंथ के विषय मे दो महत्त्वपूर्ण सम्मतियां

इस ग्रन्थ के तैयार हो जाने पर हमने एक आगम निष्ठ परम मुनि भक्त समाज सम्मानित वरिष्ठ विद्वान के पास इस ग्रन्थ को भेजा था, १५ दिन पीछे ग्रन्थ हमारे पास भेजकर ओर अपना हार्दिक आनन्द प्रगट करते हुए उन्होने लिखा कि—

यह ग्रन्थ आगम मार्ग का सच्चा प्रकाशक है शास्त्रो की खोज करने और समाज मे फैले हुए विवादो को दूर करने के लिए जो आपने परिश्रम किया है वह स्तुत्य है।

प्रत्येक मन्दिर मे इस ग्रन्थ का शास्त्र प्रवचन होना चाहिये। तथा प्रत्येक गृहस्थ को इसका स्वाध्याय करना चाहिये। इससे भ्रमशीलो का भ्रम दूर होगा और धार्मिक पुरुषो मे दृढता पैदा होगी।

दूसरी सम्मति निरन्तर स्वाध्यायशील एक अनुभवी श्रद्धेय ब्रह्मचारी महोदय की हमे प्राप्त हुई है उन्होने लिखा है कि—

ग्रन्थ को पढकर हमे बहुत प्रसन्नता हुई है आपसी

खींचतान को दूर करने के लिये यह ग्रन्थ आगम के प्रमाणो की सहायता से हितैषी मध्यस्थ का काम करेगा। ग्रन्थ अत्युपयोगी है ।

परन्तु इसकी छपाई और कागज ग्रन्थ के अनुरूप नही है अक्षर बहुत छोटे है। यदि अक्षर कुछ बड़े और कागज चिकना सुन्दर होता तो इस ग्रन्थ रूपी रत्न का बाहरी पिटारा भी सुन्दर और आकर्षक बन जाता। खैर कोई आगम भक्त श्रीमान् इस ग्रन्थ को दुबारा छपावेंगे तो शास्त्रो जैसी छपाई और कागज का वे अवश्य ध्यान रक्खेंगे।

पंचाध्यायी के परिशिष्ठ पर दो शब्द

पंचाध्यायी का परिशिष्ठ– नौवां, दशवॉ, ग्यारहवाँ इन तीन अध्यायो मे लिखा गया है।

नौवें अध्याय मे उन सैद्धान्तिक ाओ का सप्रमाण समाधान है जो पंचाध्यायी मे वर्णित विषयो मे उठाई गई है।

दशवें अध्याय में पंचाध्यायी के कर्ता का सहेतुक विवेचन है कुछ विद्वान पंचाध्यायी ग्रन्थ का कर्ता पंडित राजमल जी को बताते है। परन्तु शब्दशैली, भावशैली सूक्ष्म एवं गम्भीर विवेचन तथा भाव साम्य और शब्द साम्य आदि से पंचाध्यायी के कर्ता र्य मुकुट अमृतचन्द्र सूरि

ही हो सकते है। इसकी सिद्धि अनेक तुलनात्मक प्रमाणो से की गई है।

ग्यारहवें अध्याय मे उन आगम विरुद्ध स्वतन्त्र लिखे गये मन्तव्यो का सप्रमाण प्रतिवाद किया गया है जो पं० फूलचन्द जी सिद्धान्तशास्त्री ने पंचाध्यायी की अपनी बनाई हुई हिन्दी टीका मे लिखे है।

यह परशिष्ठ पंचाध्यायी में क्यों नहीं छप सका?

यह पचाध्यायी का तीन अध्यायो मे विभक्त परिशिष्ठ पंचाध्यायी से ही सम्बन्ध रखता है। इसलिये नवीन द्वितीया वृत्ति अभी जो प्रकाशित हुई है उसी के अंत मे इस परिशिष्ट का छपना अत्यावश्यक था। क्योकि पंचाध्यायी का स्वाध्याय करने वाले सज्जन परिशिष्ठ की सभी बातो का परिज्ञान उससे कर लेते।

परन्तु पंचाध्यायी का यह दुवारा प्रकाशन श्रीमान् राय सा० सेठ चाँदमल जी पाड्या ने अपने द्रव्य से कराया है। जिन महानुभाव का पंचाध्यायी के कर्ता आदि के विषय मे मतभेद है उन्होने राय सा० को वाध्य किया कि यह परिशिष्ठ पचाध्यायी के अन्त मे नहीलगाया जाय फलस्वरूप प्रेस मे भेजी हुई हमारी परिशिष्ठ कापी श्री पाड्या जी ने प्रेस से मगाकर हमे सौंप दी और पंचाध्यायी के साथ छपने का निषेध कर दिया।

अपनी विरुद्ध धारणा के कारण कोई२ विद्वान् शास्त्र सम्मत समाधान भी सुनना नही चाहते है यह खेद की बात है।

यद्यपि पचाध्यायी की टीका हमने की है। अत. हमारा अधिकार एव उत्तरदायित्व है कि पचाध्यायी के विषय मे उठाई गई सैद्धान्तिक शकाओ और उसके कर्ता आदि के सम्बन्ध मे सप्रमाण समाधान टीका के अन्त में परिशिष्ठ द्वारा कर देवें। परन्तु राय सा० की अनिच्छा को जानकर हमने यह परिशिष्ठ "आगम मार्ग प्रकाशक" ग्रन्थ मे छपा दिया है।

पचाध्यायी ग्रन्थराज का स्वाध्याय करने वाले एव अन्य सभी स्वाध्यायशील महानुभाव इस आगम मार्ग प्रकाशक ग्रन्थ का स्वाध्याय अवश्य करे। यह परिशिष्ठ अनेक महत्वपूर्ण शास्त्रीय विषयो का प्रतिपादक होने से अत्युपयोगी है।

आभार प्रदर्शन

आगम मार्ग प्रकाशक ग्रन्थ के छपाने के लिये एक पत्र तो हमने अपने सहोदर छोटे भाई चि० श्रीलाल जी जौहरी को जयपुर लिखा था कि समाज के लिये अतीव हितकारी इस ग्रन्थ को छपने में लगभग तीन हजार रुपये लगेंगे। ऐसा ही एक पत्र श्रीमत्परमपूज्य चारित्र चूडामणि

श्री १०८ आचार्य बिमलसागरजी महाराज को लिखा था हमारे पत्र के उत्तर में जयपुर से भाई श्रीलालजी जौहरी ने लिखा था कि ग्रन्थ छपाने के लिये १०-१२ दिन में रु० भेज रहा हूँ। इसी बीच में परमपूज्य आचार्य बिमलसागरजी महाराज के सकेत से या उनके आदेश से उनके सघ की व्यवस्थापिका श्रीमती ब्र० चित्राबाईजी ने तुरत दो हजार रुपयो का ड्राफ्ट भेज दिया ग्रन्थ का विस्तार होने से एक हजार रुपये और मगाने को उन्हे लिखा गया।

यह ग्रन्थ श्रीमती ब्र० चित्राबाई जी की ओर से प्रकाशित हुआ है। इस उदारता पूर्ण धार्मिक कार्य के लिये सघ व्यवस्थापिका महोदया उक्त बाईजी को बहुत बहुत धन्यवाद देता है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में मुख्य निमित्त परम पूज्य आचार्य महाराज है। उनके ही शुभाशीर्वाद का यह प्रकाशन है। अतः उनके चरणो में हम नत मस्तक हैं। श्री भाई श्रीलाल जी जौहरी ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपनी सद्भावना और उदारता प्रगट की, उसके लिये वे भी प्रशंसा के पात्र है। उनका भी धार्मिक कार्यों में यथा साध्य सदैव योग रहता है।

सर्वं मंगल माँगल्यं सर्व कल्याण कारकम्
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्

श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
मोरेना (म० प्र०)

श्रुत पचमी वीर नि० स० २४९९
ता० ५ जून १९७३ ई०

वर्तमान युग मे मुनि सृष्टि के निर्माता परम गुरु, परमशान्त, महायोगीश्वर सिद्धान्त शास्त्रो के अनुभवी महाविद्वान, जगत्पूज्य प्रभावक साधुरत्न
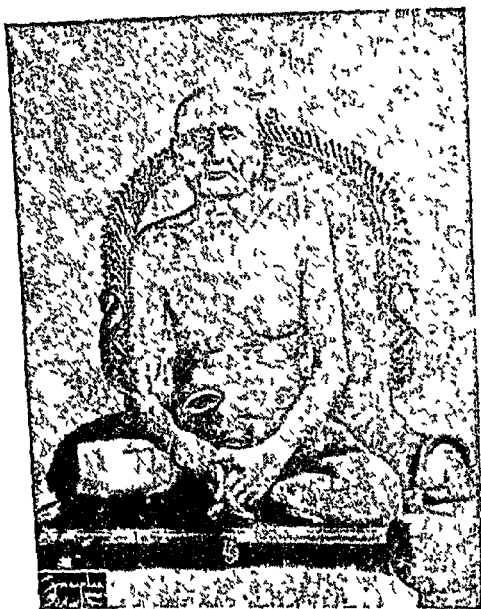
परमपूज्य, लोकवन्द्य, चारित्र चक्रवर्ति, योगीन्द्र चूडामणि

श्री १०८ स्वर्गीय आचार्य मुकुट

श्री शान्तिसागर महाराज

* श्री वर्धमानायनम *

आ ा ि काश

प्रमाण, नय, सम्यग्दर्शन आदि का सप्रमाण विशद निरूपण

भूभ्रमण और चन्द्रमा पर राकेट द्वारा पहुंचने की काल्पनिक घोषणा का सप्रमाण प्रतिवाद

आगम पर श्रद्धान किये विना व्यवहार सम्यग्दर्शन भी नही होता है। सर्वज्ञ कथित वीतराग महर्षियो द्वारा प्रतिपादित जिनवाणी पर अटल एव दृढ श्रद्धान करने से ही सम्यग्दर्शन हो सकता है।

जैनदर्शनाचार्य मक्खनलाल शास्त्री तिलक

※ श्री वर्धमानायनम ※

आग ` र्ग प्रकाश

मंगलस्तवन

जिनेन्द्र वन्दना

वीर विराग सर्वज्ञ त्रियोगेण नमाम्यहम् ।
जगद्धिताय मोक्षस्य मार्गो येन प्रदर्शित ॥

जिनवाणी वन्दना

जिनवाणि ! नमस्तुभ्य तीर्थेशमुखनिर्गता ।
विरागै सूरिभि प्रोक्ता विश्व कल्याण हेतवे ॥

जिनगुरु वन्दना

सम्पूज्या कुन्दकुन्दाद्या आचार्या मुनि पु गवा ।
शान्ति सिन्धु सुधर्माद्या स्तान् वदे भावतोऽधुना ॥

वीर स्तवन

सुध्यान मे लवलीन हो जब घातिया चारो हने ।
सर्वज्ञ वोध, विरागता को पालिया तब आपने ॥
उपदेश दे हितकर, अनेको भव्य निज सम कर लिय ।
रवि ज्ञान किरण प्रकाश डालो वीर ! मेरे भी हिये ॥

जिनवाणी स्तवन

स्याद्वादनय, षट द्रव्य, गुण, पर्याय और प्रमाण का ।
जड-कर्म चेतन वन्धका अरु कर्म के अवसान का ॥
कहकर स्वरूप यथार्थ, जग का जो किया उपकार है ।
उसके लिये जिन वाणि ! तुमको वन्दना शतवार है ॥

गुरु स्तवन

धरि कवच सयम, उग्र ध्यान कठोर असि निज हाथले ।
व्रत समिति, गुप्ति सुधर्म, भावन वीरभट भी साथ ले ॥
पर चक्र-राग द्वेष हनि, स्वातन्त्र्य निधि पाते हुए ।
वे स्व-पर तारक गुरु-तपोनिधि, मुक्ति पथ जाते हुए ॥

रचियता-
मक्खनलाल शास्त्री
'तिलक' जैन दर्शनाचार्य

श्रीमद्दिगम्बराचार्य शिरोमणि श्रीशान्तिसागरस्वामिनः

चर शेज ेः स्तुतिः

(रचयिता—श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक जैनदर्शनाचार्य)

(इन्द्रवज्रा)

१

पूज्यातिपूज्यैर्यतिभिस्सुवद्य ,
ससार गभीर समुद्र सेतु ।
ध्यानैकनिष्ठा गरिमा गरिष्ठ,
आचार्य वर्यं प्रणमामिनित्यम् ।।

२

ध्यानादि सैन्य परिवर्ध्य पूर्ण,
कर्मारि वर्ग प्रणिहत्यवेगात् ।
नीरागस्वातन्त्र्यपदे प्रतिष्ठ,
आचार्य वर्य प्रणमामि नित्यम् ।।

३

योमुख्यसूरिर्मुनि नायकाना,
आचार पार गतवान्समग्र ।
ध्यानप्रभावेणप्रवृद्धदीप्ति
आचार्य वर्य प्रणमामिनित्यम् ।।

४

दुर्जेयक द्वादशधा कषाय,
जित्वानिजात्मानुभवैकशुद्धया ।
षष्ठे गुणे सप्तमके गतत,
आचार्य वर्य प्रणमामिनित्यम् ।।

५

अभ्यन्तरोवाह्य उपाधिभार,
दूरीकृतोयेनवितृष्णभावात् ।
दगम्बर सुन्दर दिव्यकाय,
आचार्य वर्य प्रणमामिनित्यम् ।।

६

धर्मामृतपाययतिप्रभूत,
योभव्य जीवान् करुणा स्वरूप ।
स्वात्मस्वरूप च चकारतेभ्य,
आचार्य वर्य प्रणमामिनित्यम् ।।

७

योऽनेकसाधून्विषयेष्वरक्तान्,
निर्ग्रन्थलिंगेविधिनाचकार ।
गुरूपरागोपिचवीतराग ,
आचार्य वर्य प्रणमामिनित्यम् ।।

८

महागभीर विशदी कृतार्थं,
शास्त्राब्धिपार गतवान् समग्रम् ।
तथापिप्रज्ञामदता े विरक्त ,
आचार्य वर्य प्रणमामिनित्यम् ।।

९

(भुजङ्गप्रयातम्)

यथा कुन्द कुन्द सुरैर्वंद्यपाद,
अभूत्साधु मसेव्यमान प्रपाद ।
तथैवाधुना लोकपूज्य यतीन्द्र,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवद्यम् ॥

१०

यथा दुष्ट जीवेन घोरोपसर्गा,
कृता पार्श्वनाथेत्रिलोकैक पूज्ये ।
तथा दुष्ट लोकोपमर्गसहिष्णु,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवद्यम् ॥

११

यतीनामनेके यथाशिष्यवर्गा,
प्रभो कुन्द कुन्दस्यसूरेरभूवन्
तथैवाधुनासाधुसदोहशिष्यम्,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवद्यम् ।

१२

यथा सूत्रचिन्हहि रत्नत्रयस्य,
पुराभारतेपूर्वपूज्यैर्निरुक्तम् ।
तथैवाधुनासूत्रचिन्ह ददान,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवद्यम् ॥

१३

शान्तेरगार विनष्टारिमार,
जगत्कज्जमित्रगुणाढ्यमपवित्र ।
वरिष्ठं सुपूज्यम् गरिष्ठप्रधान,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवद्यम् ॥

१४

पिताभीमगौडामहच्छक्तिशाली,
स्वमातासती सत्यरूपा सुरूपा।
तयो पुत्ररत्नजिताक्षारियत्न,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवद्यम् ॥

१५

जगद्वल्लरीकृन्तयित्वा कृपाणी,
गृहीत्वा शुभध्यानरूपास्वभावाम्
प्रपेदे गुणसप्तमञ्चैकहीन,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवद्यम् ॥

१६

गुणारामनीर भवाम्भोधितीर,
सदानिर्विकार गृहीतात्म सारम्।
कषायादिदुर्दण्डदोर्दण्डभेद,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवद्यम् ॥

१७

महद्धयाननिष्ठ महत्सुप्रकृष्ट,
महर्पि प्रतिष्ठ वचोयस्यमिष्टम्।
चिदानन्दरूपेस्वरूपे प्रविष्ट,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवद्यम् ॥

१८

(वसन्ततिलका)

निर्ग्रन्थसाधुमधुप व्रजराजमाना,
त्वत्पादपद्मकलिका धवलाभिरामा।
नक्षत्र वृन्दपरिवेष्टित, चन्द्रविम्ब',
देवै सुदृष्टिशुचिभिर्मघवायथावा ॥

१९

यत्पादसेवनरता खलुभव्यलोका,
ससारतोझटिति यातिविरक्ति बुद्धिम् ।
यद्गो॰ प्रशस्यमहनीय सहेतुका च,
पचाननस्य समता सदसि व्यनक्ति ॥

२०

मिथ्यान्धकार पटल प्रविहाय शीघ्र,
तत्त्वप्रसारकिरणै सुखदै समन्तात् ।
श्रद्धापरायण जनाम्बुज कोरकाश्च,
सन्तोपयन्विगततापरविस्त्वमेव ॥

२१

मिथ्यान्धकारपरि मर्दनरश्मि जाल,
ज्ञानप्रकाशित जगत्प्रविकाशिसूर्यम् ।
ध्यानैक तानंनियत मुनिराजसेव्य,
आचार्य वर्य गुरु पादमह नमामि ॥

२२

(उपेन्द्रवज्रा)

गुणास्त्वदीया धवला गभीरा,
सुरेन्द्रनागेन्द्र नरेन्द्र पूज्या ।
विभाति सूरे स्तवदिव्यदेहे,
ततोहिपूज्य खलु विश्वलोके ॥

२३

(शालिनी)

दर्शं दर्शं सूरि शान्त स्वरूप,
पाय पाय वाक्यपीयूपधाराम् ।

स्मार स्मार तद्गुणान् स्पृष्ट पादा,
जाता शान्ता साधवोक्षेष्वरक्ता ॥
२४

चित्तेचित्ते शान्तमूर्ते सुबोध,
बोधे बोधे तत्स्वरूपानुरूपम् ।
रूपे रूपे स्वात्मवृत्तौप्रवृत्ति,
वृत्तौ वृत्तौ कुन्थुनेमीन्दुवीरा ॥
२५

(शार्दूलविक्रीडितम्)

आसीद्य खलु दक्षिणायनकर पश्चादुदीच्यागत,
ज्ञानध्यानतप प्रभामयवपु सधारयन्दीप्तिमान् ।
सम्यग्ज्ञानमरीचिभिर्विकसिता आशाश्रयेनाखिला,
सोऽयसूरिरपूर्वभानुरुदितो लोके सदा शान्तिद ॥
२६

(द्रुत विलम्बितम्)

सुखदयाखिल बोधविधानया,
विधिविशाखि कठोर कुठारया ।
विगत राग गुरु जिनदीक्षया,
तरतितारयतिभ्रमजालत ॥
२७

(अनुष्टुप्)

आचार्य वर्यसघेश पचाचारधराग्रणी ।
मुनीन्द्रैर्वन्द्यपादाब्ज पातुन शान्तिसागर ॥
२८

तोताराम तनूजो लालारामस्य शास्त्रिणो भ्राता ।
शास्त्री मक्खनलालोऽकार्षीत्स्तोत्र स्वभक्तितो रम्यम् ॥

धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर श्रीमत्पण्डित लालाराम शास्त्री रचित आचार्य स्तुति

मूलोत्तरगुणजलधि तत्पूरस्य च निशाकर शान्तम् ।
शीलाब्धि धर्माब्धि करुणाब्धि शांतिसागर वन्दे ॥१॥

वन्दे पञ्चमहाव्रतवित्त, पञ्चसमितिपरिपालनचित्तम् ।
वन्देगुप्तित्रयप्रविलीन, षट्कावश्यकनिरतमहीनम् ॥२॥

पञ्चेन्द्रियदण्डनवरवीर, वन्दे केशलोचदृढधीरम् ।
वन्दे सकृद्भोजिनम् नाथ, किम्वा निराहारव्रतनाथम् ॥३॥

खड्गासनकृतभोजनमीश, वन्दे पत्कजनमितसुरेशम् ।
नग्न भूमिशायिन वन्दे, निर्विकारमनगार वन्दे ॥४॥

स्नान–दन्तधावनपरिहीन, अष्टाविंशतिमूलव्रतिनम् ।
उत्तरगुणजलनिधिमभिवन्दे, दशधाधर्मान्वितमपिवन्दे॥५॥

अनुप्रेक्षाचिन्तनवरदक्ष, विद्वत्परिषद्वेष्टितकक्षम् ।
द्वाविंशतिपरिषहसहनेच्छ महोपसर्गविजयपरिदक्षम् ॥६॥

पञ्चाचारचारिण शान्त, देहद्युतिकञ्चनागिरिकांतम् ।
रत्नत्रयशोभितवरदेह, वन्दे षट्त्रिंशद्गुणगेहम् ॥७॥

वन्दे, भवसागरखरकिरण, भवसततप्ततनूभृच्छरणम् ।
नागोपद्रवजयिन वन्दे, कीटोपद्रवधीर वन्दे ॥८॥

धर्मचक्रनेमि वरवीर, वन्दे भक्तवत्सल धीरम् ।
धर्मध्यानपारग वन्दे, भव्यसरोरुहभानु वन्दे ॥९॥

द्वादशतपोनिधि जिनभक्त, वन्दे जिनानुज गृहमुक्तम् ।
लालारामार्चितपदकान्ति, वन्दे स्तवीम्युपास्ये शान्तिम् ॥१०॥

अथ प्र ˋ ˋ अध्य ˋ ˋ

प्रमाण यों का स्पष्टीकरण

प्रारम्भ मे प्रमाण और नयो का स्वरूप हमने इसलिये लिखा है कि दिगम्बर जैन सिद्धान्त को प्रमाणिक एव यथार्थ सिद्ध करने वाले प्रमाण और नय है। उनके विना समझे अनेक शिक्षित भी पाश्चात्य विज्ञान की आनुमानिक (अदाजिया) खोज एव प्रयोगो पर विश्वास कर लेते हैं, और सर्वज्ञ प्रतिपादित तथा प्रत्यक्ष-दर्शी अवधिमन पर्यय ज्ञानियो एव श्रुतकेवलियो द्वारा रचित शास्त्रो के कथन पर विश्वास नही करते है। ऐसी विपरीत समझ एव धारणा से वस्तु तत्व क ।यथार्थ वध नही होता है। इसलिये प्रमाण ज्ञान से उन मिथ्या धारणाओ का भले प्रकार खण्डन हो जाता है। कौन सभव है कौन असभव है इस बात का परिज्ञान प्रमाण के समझने से ही होता है।

इसी प्रकार दिगम्बर जैन सिद्धान्त एव दि० जैन धर्म का विपरीत प्रचार भी कुछ दि० जैन नामधारी कर रहे हैं उससे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तथा इस रत्नत्रय मोक्षमार्ग के साधक देव शास्त्र गुरु इन तीनो का अपलाप किया जारहा है। इससे उनके प्रति श्रद्धा भक्ति का अभाव होता है इससे सिद्धान्त और धर्म दोनो की अवहेलना होती है और समाज का पूरा अहित होता है इसलिये निश्चय और व्यवहार नय का इस ग्रन्थ मे हमने स्पष्टीकरण किया है। दि०

जैन धर्म पर दृढ श्रद्धान नही रखने वाला समाज का कुछ अग सर्वज्ञ की वाणी पर भी विश्वास नही करता है। लोक रचना भी पाश्चात्य वैज्ञानिको की अधूरी खोज के अनुसार मानने लगता है। ऐसी दशा मे नरक स्वर्ग आदि का अस्तित्व ही सदिग्ध कोटि मे वह समझता है। परिणाम यह होता है कि पुण्य पाप आदि क्रियाओ के फल मे भी उसका विश्वास नही रहता है। इन्ही सब बातो को ध्यान मे लेकर हमने प्रमाण एव नयो का स्पष्टीकरण करना अत्यावश्यक समझा है।

इसके अतिरिक्त कोई विद्वान निश्चय सम्यग्दर्शन को भी जो रत्न त्रयात्मक आत्मीय विकास मे मूल धम है, धम नही मानते हैं और उसमे किसी प्रकार का त्याग एव चारित्र नही मानते है, कोई विद्वान व्यवहार चारित्र मे अष्ट मूल गुणो का पालन करना आवश्यक नही मानते हैं अत इन सभी बातो पर शास्त्रीय प्रमाणो द्वारा हमने इस ग्रन्थ मे पूरा प्रकाश डाला है। इसलिये इस ग्रन्थ का नाम "आगम मार्ग प्रकाशक" यह नाम सार्थक है।

प्रमाण और नयो का सप्रमाण एव सहेतुक सक्षिप्त सार

दि० जैन सिद्धान्त मे वस्तु की अकाट्य अबाधित सहेतुक एव सयुक्तिक यथार्थ सिद्धि के लिए प्रमाण और नय ये दो सम्यज्ञान बताये गये है। इन्ही प्रमाण और नयो को अनेकान्त एव स्याद्वाद धर्म कहा जाता है। मति श्रुत ज्ञानियो को पदार्थो का प्रत्यक्ष बोध (असहाय अतीद्रिय) तो होता ही नही है। ऐसी अवस्था मे दूरवर्ती सुमेरु पर्वत विदेह क्षेत्र असख्यात द्वीप समुद्र। सूक्ष्म धर्म अधर्म आकाश काल, परमाणु आदि तथा अन्तरितभूत भविष्यत कालवर्ती राम रावणादि महापद्म तीर्थकर आदि का बोध कैसे हो, उनके यथार्थ सद्भाव का परिज्ञान कैसे हो सके, इसके लिये साधक, प्रमाण ज्ञान हैं। केवल ज्ञान पूर्ण प्रमाण ज्ञान है। वह परिपूर्ण निरावरण है। केवल ज्ञानी सर्वज्ञ भगवान समस्त द्रव्यो समस्त गुणो समस्त पर्यायो को अतीन्द्रिय ज्ञान

स्वात्म प्रत्यक्ष करते हैं। जीव पुद्गल ये दो द्रव्य अनन्तानन्त हैं। धर्म अधर्म आकाश ये तीन द्रव्य एक-एक हे। काल द्रव्य असख्यात है। प्रत्येक द्रव्य मे अनन्त गुण हैं। अर्थात अनन्त गुणो का पिण्ड ही द्रव्य है। गुण और द्रव्य मे कोई भेद नही है। द्रव्य अथवा गुण समूह ये दौनो नाम पर्यायवाची हैं। इन समस्त द्रव्यो की और अनन्त गुणो की भूत भविष्यत् वर्तमान तीनो कालवर्ती प्रति समय होने वाली पर्यायो को केवल ज्ञानी सर्वज्ञ युगपत् एक समय मे प्रत्यक्ष जानते हैं। भगवान केवली का ज्ञान पूर्ण प्रत्यक्ष प्रमाण है। उमी प्रमाण का फल भगवान की दिव्य ध्वनि है। उस इच्छा रहित दिव्य ध्वनि मे भव्य जीवो के परम पुण्योदय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र तीन लोक और द्रव्यो का स्वरूप एव मोक्ष मार्ग का निरूपण सर्वांग से प्रगट होता है। भगवान की वाणी प्रात मध्यान्ह सायकाल और अर्धरात्रि इन चार समयो मे खिरती है। समवसरण मे बैठे हुए मनुष्य, देव, तिर्यन्चो के कानो मे पहुचते ही वह दिव्य ध्वनि अनक्षरी भाषा साक्षरी बन जाती है और अपनी अपनी भाषा मे सभी जीव उसे समझ लेते हैं। इसलिये भगवान की वाणी को अनुभव तथा सत्य बचन कहा गया है। अनक्षरी भाषा होने से उसे विना समझे सत्य या असत्य नही कहा जा सकता है। कानो मे पहुँचने पर वह सत्य रूप मे प्रकट हो जाती है समवसरण मे अभव्य, शूद्र और द्रव्य मिथ्यादृष्टि नही जाते हैं। यह नियम है। भाव मिथ्यादृष्टि तो जाते हैं। द्रव्य मिथ्यादृष्टियो का अभिमान समवसरण के बाहर स्थित मानस्तम्भ के देखते ही दूर हो जाता है।

भगवान की दिव्य ध्वनि को चार ज्ञान के धारी गणधर देव भले प्रकार समझ लेते है। समवसरण मे बैठे हुए भव्य जीवो के पूछने पर उम वाणी का रहस्य विस्तार से गणधर देव समझा देते हैं।

शास्त्रो की प्रमाणता का हेतु –

गणधर देव श्रुत केवली अग ज्ञानधारी आचार्य प्रत्याचार्यों ने

जो शास्त्र रचे है जिनमे नरक स्वर्ग असख्यात द्वीप समुद्र एव तीन लोक का स्वरूप छह द्रव्य एव मोक्ष मार्ग का कथन है। वह सब सर्वज्ञ देव के प्रत्यक्ष प्रमाण का ही सार है। गणधर देव मन पर्यय, अवधि ज्ञानी, श्रुत केवली आदि ने सर्वज्ञ वाणी के कथनानुसार ही अत्यन्त सक्षिप्त शास्त्रो की रचना की है जो तत्व स्वरूप तथा लोक रचना आदि का वर्णन सर्वज्ञ की दिव्य ध्वनि मे कहा गया है। उन्ही सब बातो का साक्षात् स्वात्म प्रत्यक्ष अतीद्रिय ज्ञान से अवधि ज्ञानी और मन पर्यय ज्ञानी भी कुछ हद तक करते हैं। द्वाद शाग वेत्ता श्रुत केवली उन्ही सब पदार्थो को परोक्ष ज्ञान द्वारा जानते है। इसीलिये गोम्मटसार मे सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य नेमीचन्द स्वामी ने कहा है –

सुद केवल च णाण दोण्णापि सरिसाणि होत्ति वो हादो ।
सुद णाण च परोक्ख पच्चक्ख केवल णाण ॥

अर्थ — श्रुत ज्ञान और केवल ज्ञान दौनो ज्ञान समान है। भेद इतना ही है कि श्रुत ज्ञान परोक्ष है और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है। परतु यह कथन बहुत ही स्थूल दृष्टि से कहा गया है। श्रुत केवली के ज्ञान मे सभी पदार्थ स्थूल रूप मे परोक्ष रूप मे जान लिये जाते हैं। यही दृष्टिकोण है।

किन्तु वास्तविक बात यह है कि केवल ज्ञान के अनन्त वे भाग मात्र ज्ञान श्रुत केवली को परोक्ष रूप मे होता है, केवल ज्ञानी तो परमाणु के अनन्तवे भाग तक प्रत्यक्ष करते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश आदि अमूर्तिक पदार्थो को उनके गुणो को और पर्यायो को साक्षात् करते हैं। श्रुत ज्ञानी तो परोक्ष ज्ञान द्वारा मोटे रूप मे जानते हैं। केवल ज्ञानी का प्रत्यक्ष ज्ञान यहा तक अपार एव अगाध है कि वर्तमान लोक अलोक जैसे अनन्तो लोक होते है तो वे उन्हे भी प्रत्यक्ष करते।

शास्त्र रचना मे तो स्थूल रूप मे उन्ही पदार्थों का थोडा सा कथन है। शब्दो की सख्या ही सख्यात है।

आचार्यों ने बताया है कि ऐसे अनन्त पदार्थ है जिनका उल्लेख करना सर्वथा शक्य नही है। और जिनका अन्य सकेतादि से बोध कराया जा सकता है। वे उनके अनन्त भाग मात्र हैं। और जो शब्दो द्वारा कहे जा सकते हैं वे सकेत आदि से जानने योग्य पदार्थो से भी अनन्तवें भाग है। इसका स्पष्ट अर्थ इतना ही है कि शब्दो द्वारा अक्षरात्मक शास्त्रो की रचना मे समस्त तत्व और पदार्थो का अति स्थूल रूप मे एव अति सक्षेप रूप मे सार है।

इस उपर्युक्त समस्त कथन से यह बात सिद्ध होती है कि शास्त्र रचना का मूल स्त्रोत तीर्थंकर सर्वज्ञ भगवान की दिव्य ध्वनि है। उसके आधार पर गणधर देव मन पर्यय ज्ञानी एव अवधि ज्ञानियो का एक देश साक्षात् प्रत्यक्ष ज्ञान है। और श्रुत केवली तथा अग ज्ञानियो का परोक्ष ज्ञान है। इसलिये आचार्यो द्वारा रचे गये चारो अनुयोगो के शास्त्र पूर्ण प्रमाण रूप हैं। वीतरागी-महर्षियो ने केवल भव्य जीवो के कल्याण एव मोक्ष प्राप्ति की सद्भावना से शास्त्रो की रचना की है। अत दिगम्बर जैन शास्त्रो का कथन प्रमाण रूप है। वह अबाधित सहेतुक सयुक्तिक एव अकाट्य है।

श्रद्धानी बनो

यद्यपि शास्त्राधार से परीक्षा प्रधानी को प्रमुखता दी गई है, जो परीक्षा पूर्वक दिगम्बर जैन धर्म को ग्रहण करते है। वे उसे सौ टच सोने के समान पाकर स्वात्म साधन मे दृढता से लग जाते हैं। जैसे आचार्य विद्यानन्दि (पात्र केसरी) थे जिन्होने परीक्षा पूर्वक जैन धर्म को ग्रहण कर अष्ट सहस्त्री श्लोक वार्तिक जैसे गभीर शास्त्रो की रचना की है।

यदि परीक्षा करने की सामर्थ्य एव योग्यता नही है तब श्रद्धा पूर्वक ही शास्त्रो के स्वाध्याय से अपना कल्याण कर लेना चाहिये

शास्त्रो के कथन मे अपनी अज्ञानता से कुतर्क एव निराधार शका करना अपने कल्याण मे स्यय बाधक बनना है।

सूक्ष्म जिनोदित तत्व हेतु भिनैव हन्यते।
आज्ञा सिध्दच तन्द्राह्य नान्यथा वादिनो जिना ॥

अर्थात जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए पदार्थ किन्ही भी हेतुओ से खण्डित नही हो सकते है। वे प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणो से सुसिद्ध हैं। अत उन्हे जिनेन्द्र की आज्ञा समझकर उनका श्रद्धान कर लेना चाहिये क्यो कि जिनेन्द्र देव सर्वज्ञ और वीतराग प्रत्यक्ष दृष्टा ज्ञाता हैं। इच्छा रहित है। उनके द्वारा जो पदार्थ कहा गया है वह यथार्थ सत्य है।

वैज्ञानिको की खोज पर अन्धविश्वास–

कुछ पढे लिखे लोग ऐसे भी है। जो आधुनिक वैज्ञानिको की खोज एव उनके चमत्कारक कार्यो को देखकर शास्त्रो की बातो पर श्रद्धा या विश्वास नही करते आगम के कथन पर श्रद्धा नही करने से मिथ्यात्व का पोषण होता है अत सक्षेप मे इन विषयो पर प्रकाश डालना उचित है। वैज्ञानिक कहते हैं कि पृथ्वी गोल है और घूमती भी है। तर्क यह दिया जाता है कि हम जहा से चलते हैं वही पर आ जाते है। इसलिये गोल है परन्तु जहा के तहा आ जाते हैं। यह कोरा भ्रम है। मोरेना या ग्वालियर से बम्बई जाने वाला बम्बई से लौटकर मोरेना ग्वालियर आजाता है। तो क्या इससे इस क्षेत्र की गोलाई सिद्ध होती है। फिर दक्षिण-उत्तर मे जहा समुद्र और उनकी तह मे पहाड हैं। वहा कौन गया है। या जासकता है। जिसमे गोल होने का प्रमाण सिद्ध होसके। जहाज का मस्तूल (ध्वज दण्ड की चोटी) समुद्र मे पहले थोडी दीखती है। फिर पूरी दीखने लगती है। इसी से पृथ्वी गोल सिद्ध की जाती है परन्तु ऐसा मानने से पृथ्वी का व्यास और परिमाण कितने वर्ग मील रह जायगा ? जबकि पाच या दस

मिनट मे या आधा घटा मे ही मस्तूल पूरा दीखता है। इस पर उन्हे गहराई से विचार करना चाहिये। फिर यदि पृथ्वी गोल है। तो नदियो का बहाव किधर से किधर होगा ? यह भी समझने की बात है। गोलाई के प्रमाण मे कहा जाता है कि अमरीका ठीक आगरा के नीचे है, परन्तु इसका सच्चा प्रमाण तभी हो सकता है जब कि ऊपर से नीचे बडा छिद्र करके गोला डाला जाय वह आगरा से अमरीका पहुच जाय। इतना प्रमाण मिले विना पाश्चात्य वैज्ञानिको की बात कैसे मानली जाय ? फिर पृथ्वी को गोल एव घूमती हुई मानने पर नरक स्वर्ग का क्षेत्र कहा होगा ? और उसका व्यास या परिधि कितने वर्ग मील ठहरेगी ? यह भी तो सोचना होगा। या ऐसे तर्क शास्त्रियो की दृष्टि मे नरक स्वर्ग आदि हैं ही नही।

एक महान् वैज्ञानिक का अभिमत :–

अमरीका के एक विशिष्ट आविष्कारक वैज्ञानिक विद्वान ने आज से २५–३० वर्ष पहले अपने सयुक्तिक लेखो द्वारा समाचार पत्रो मे प्रकट किया था कि पृथ्वी घूमती है और वह गोल है यह मानना गलत है। पृथ्वी स्थिर है। गोल भी नही है। सूर्य चन्द्र चलते हैं पूर्व दिशा से चलकर सन्ध्या मे सूर्य पश्चिम दिशा मे पहुच जाता है। पृथ्वी नही चलती है। आज तक किसी विद्वान ने उसका खण्डन नही किया।

पहले इन वैज्ञानिको की खोज मे ग्रीक और अमरीका भी नही आसके थे। तब तक उन्होने ग्रीक और अमरीका को छोडकर उतना ही पृथ्वी का क्षेत्र मान लिया था। परन्तु पीछे उनकी खोज मे ग्रीक और अमरीका भी आ गई। इन बातो से वैज्ञानिको की खोज पर विश्वास कर लेना और अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष दृष्टा और अवधि मन पर्यय प्रत्यक्ष ज्ञानी तथा वीतराग श्रुत केवली आदि महर्षियो के कहे हुए शास्त्रो पर विश्वास नही करना, यह कर्मोदय जनित बुद्धि विकार ही

माना जायगा। स्वाध्याय शील जैन महानुभाव सूर्य चन्द्र और नक्षत्र आदि ज्योतिपी विमानो को स्थिर (भ्रमण नही करने वाले) कभी नही मान सकते है। कारण ज्योतिपी देवो के विमान सदैव भ्रमण करते रहते है। उन विमानो के वाहक देव अल्प पुण्यधारी हैं। वे उन विमानो को खीचने वाले देव (घोडे, हाथी आदि के समान) सदैव नियमित रूप से भ्रमण कराने मे ही अपनी आयु पूरी करते हैं। इसी के प्रमाण मे तत्वार्थ सूत्रकार आचार्य उमास्वामी आज से दो हजार वर्ष पहिले लिख गये है —

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके

अर्थात् ज्योतिपी देव मनुष्य लोक मे निरन्तर एव सदैव सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते रहते हैं। ११२१ (ग्यारह सौ इक्कीस) योजन (दो हजार कोस का एक योजन होता है) मेरु पर्वत से दूर रहकर मेरु की प्रदक्षिणा करते है।

राजवार्तिक ग्रन्थ मे श्री मत् भट्टाकलक देव आचार्य ने इस शका का समाधान किया है कि ज्योतिषी देव सूर्य-चन्द्र आदि गमन नही करते है क्योकि गमन करने का कोई कारण नही है इस शका के समाधान मे उन्होने लिखा है कि–

गति रता हि आभियोग्य देवा वहन्तीति कर्मणा फलम् ।
तेषा वैचित्र्येण पच्यते तत स्तेषा गति परिणत मुखेनैव कर्म फल मव बोद्धव्यम् ॥

अर्थ — ज्योतिषी देव सूर्य चन्द्र आदि, आभियोग्य जाति के देवो द्वारा सदैव गमन करते है। आभियोग्य देवो का कर्म फल ऐसा ही है।

पृथ्वी घूमती है और गेन्द के समान गोल है। इस भ्रम पूर्ण मान्यता का बहुत विस्तार और सहेतुक खण्डन श्लोक वार्तिक ग्रन्थ मे आचार्य पात्र केसरी (आचार्य विद्यानन्दि पुरातन आचार्य) ने किया है वे लिखते है —

मेरु प्रदक्षिणा नित्य गतय स्त्विति निवेदनात् ।
नैव प्रदक्षिणा तेषा कदाचित्कीष्यते न च ॥
गत्यभावोति चा निष्ट यथा भूभ्र वादिन ।
भुवो भ्रमण निर्णीति विरह स्योप पत्तित ॥

अर्थ —सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिषी देवो का गमन कभी-कभी होता हो सो नही है अर्थात सदैव होता रहता है। पृथ्वी को घूमती हुई और ज्योतिषी देवो का भ्रमण नही मानने वाले मतान्तरो का कहना अनिष्ट है। वह सिद्ध नही होता है। आगे श्लोक वार्तिककार आचार्य देव कहते हैं —

नहि प्रत्यक्षतो भूमेर्भ्रमण निर्णीत रस्ति स्थिरतयै वानु भवनात् ।
न चाय भ्रान्त सकल देश काल पुरूषाणा तद्भ्रमणा प्रतीते ॥

अर्थ —पृथ्वी घूमती है ऐसा निर्णय प्रत्यक्ष से तो होता नही है। किन्तु पृथ्वी स्थिर है ऐसी ही प्रतीति सभी लोग करते हैं कोई ऐसा हेतु भी नही है जिससे पृथ्वी का घूमना सिद्ध हो सके। उक्त जैनाचार्य ने यह भी स्पष्ट किया है कि यदि पृथ्वी को गोल मानोगे तो पूर्वा पर (पूर्व पश्चिम) समुद्र मे जाने वाली नदियो की क्या दशा होगी। वे नदिया किस दिशा से किस दिशा मे गमन करेगी। ऐसा निर्णय पृथ्वी को गोल मानने पर कैसे हो सकेगा ?

जैनाचार्य यह भी बताते हैं कि दर्पण के तल के समान भूमि को जैन सिद्धान्त नही मानता। क्योकि दीर्घ समय मे पृथ्वी ऊची नीची भी हो जाती है। जल का स्थल और स्थल का जल एव पहाड तथा समतल भी हो जाता है।

फिर यदि पृथ्वी घूमती है और गोल है तो गर्मी और जाडे तथा चौमासे मे दिन रात की जो नियमित व्यवस्था कि गर्मी मे दिन वडा होता है, जाडे मे रात्रि वडी होती है। इन दोनो मौसमो के मध्य मे दिन और रात समान होते है। यह व्यवस्था कैसे वनेगी।

इसलिये यह सब निर्णीत व्यवस्था सूर्य चन्द्र के भ्रमण से एव पृथ्वी के स्थिर रहने से ही सिद्ध होती है। यह अनुमान भी सूर्य चन्द्रमा की गति का साधक है।

सूर्या चन्द्रमसौ गति मन्तौ देशादेशान्तरोपलब्धे :—

अर्थात् सूर्य चन्द्रमा गमन करते है क्योकि उनकी एक स्थान से दूसरे स्थान मे उपलब्धि होती है। इसका खुलासा यह है कि प्रात सूर्य पूर्व दिशा से उदित होता है और शाम के समय पश्चिम दिशा मे उसका अस्त देखा जाता है। यदि सूर्य गमन नही करता हो तो पूर्व से पश्चिम मे कैसे चला जाता है। यह सभी जगत के लोग प्रत्यक्ष देखते है।

एक बात यह भी सर्व प्रत्यक्ष है कि सूर्य के भ्रमण के कारण ही मनुष्य की छाया भी प्रात मध्यान्ह और सध्या मे घटती-बढती हुई सदैव नियमित रूप से दीखती है। इस नियमित व्यवस्था का कारण यह है कि सूर्य के गमन का चार क्षेत्र (भ्रमण की गलिया) १८४ है। इन्ही गलियो मे वह गमन करता है। और जब दक्षिणायन होता है। तब लवण समुद्र-तक चला जाता है। तब यहा पर शीत (ठण्ड) बढ जाता है। और जब सूर्य उत्तरायण (उत्तर की ओर) बढता है तब यहा तीव्र गर्मी बढ जाती है। यह बात सूर्य के गमन से ही सिद्ध होती है। सूर्य का चार क्षेत्र (गमन क्षेत्र) इस प्रकार है –

जम्बू द्वीप के भीतर एक सौ अस्सी योजन और बाहरी क्षेत्र अर्थात् लवण समुद्र के तीन सौ तीस योजन ऐसे दोनो मिलकर पाच सौ दश योजन प्रमाण सूर्य का चार क्षेत्र कहलाता है भारत क्षेत्र और बाहरी भाग के चार क्षेत्र मे सूर्य के एक सौ चौरासी मार्ग (गली) है।

जम्बू द्वीप मे दो चद्र और दो सूर्य है। वैज्ञानिक लोग एक ही चद्रमा समझते है। यह भी सिद्धान्त का विरोध है दूसरी बात यह है

कि चद्रमा एक स्थान मे ठहरा हुआ नही है। सूर्य और चद्रमा दोनो ही भ्रमण करते हैं। वे सदैव नियम से प्रतिदिन सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देते रहते हैं।

ऐसी अवस्था मे चद्रमा पर उतरना और वहा पर राकेट को ठहराना ये सब बातें असभव हैं चद्रमा और सूर्य की गति भी वहुत तीव्र है। क्षण भर मे हजारो योजन गमन करते हैं इसलिये वैज्ञानिको के राकेट तिरछे जाकर किसी ऊचे पर्वत की चोटी पर पहुचते है और उसी को चद्रकक्ष के नाम से प्रसिद्ध करते है। चद्रकक्ष का अर्थ भी चद्रमा की परिधि से लाखो मील दूर वर्ती क्षेत्र है।

चंद्रलोक मे गये हुए यात्रियो का वक्तव्य

चद्रलोक मे पहले तो साधारण यात्री गागरिन आदि गये थे। उन्होने भारत मे आकर कहा था कि हम लोग चद्रकक्ष तक गये थे। चद्रमा पर पहुँचने मे अभी वहुत प्रयत्न करने पडेगे। अभी तो चद्रमा लाखो मील दूर है। ये समाचार देहली से प्रकाशित दैनिक पत्र नवभारत टाइम्स मे छपे थे परन्तु अवकी वार भूगर्भ वैज्ञानिक और इजीनियर वैज्ञानिक चद्रलोक की यात्रा पर अपोलो १७ द्वारा गये थे। उन वैज्ञानिको ने अपने वक्तव्य मे इस प्रकार कहा है—

"अपोलो १७ के चद्रयात्री यूजीन सर्जन तथा हेरसिन सिमिट आज जव चद्रमा की चट्टानो से भरी एक घाटी मे उतरे तो उन्होने चद्रमा के उस स्थान को अविश्वनीय वताया और चद्रमा के इतिहास मे अधूरे पन्नो को पूरा करने के लिये अपनी वैज्ञानिक खोज आरम्भ करदी,,

चद्रमा के स्थान को जो पहले यात्रियो द्वारा वताया गया था अविश्वनीय वताना और चद्रमा के इतिहास के पन्नो को अधूरे वताना यह सिद्ध करता है कि चद्रमा तक अभी नही पहुँचे हैं खोज का प्रयत्न चालू है। आगे और पढिये–

चंद्रमा की घाटी व पहाड

"अपने चद्रयान से उतरने के वाद सर्जन ने चारो ओर देखा और उसे चद्रमा पर पहाड, घाटिया, गड्ढे आदि नजर आये

चद्रयात्रियो ने पहला काम अपनी चद्रगाडी को जोडने का किया यह गाडी उनको चद्रमा की घाटियो व पहाडो मे २० मील से भी अधिक की दूरी पर लेजायगी,, (नवभारत टाइम्स देहली) ता० १३ दिसम्वर १९७२) पहाड, घाटियो, गड्ढे आदि मे घूमने से यह बात उन्ही चद्रयात्रियो द्वारा स्पष्ट हो जाती है कि वे ऊपर सीधे नही गये है किन्तु तिरछे किन्ही ऊ ची पहाडियो मे गये है। और भी पढिये—

चन्द्रमा पर नारङ्गी मिट्टी मिली

"समिट ने जव चद्रमा के एक क्रेटर शार्टली किनारे मिट्टी को कुरेदा तो उसे नारङ्गी मिट्टी नजर आई तुरत उसने तथा सर्जन ने एक खाई खोदकर उक्त असाधारण मिट्टी के नमूने लेने आरम्भ कर दिये वह मिट्टी ज्वालामुखी से निकली प्रतीत हुई।

मिट्टी अपोलो १७ के दूसरे चद्र विचरण के दौरान आधे रास्ते मे मिली

समिट ने कहा कि यह मिट्टी आक्सीकृत रेगिस्तानी मिट्टी की तरह दीखती है।

अतरिक्ष सस्था के मुख्य भू रसायन विद् डाक्टर राविनवट ने कहा कि– चद्रयात्रियो को शार्टरी क्रेटर तक भेजने का उद्देश्य यही था वह क्रेटर ज्वालामुखी से वना मालूम होता हे।,,

(नवभारत टाइम्स देहली ता० १४ दिमम्वर १९७२) ऊपर के वक्तव्यो को पढने से यह खुलासा हो जाता है कि चद्रमा की खोज मे चद्रलोक मे जाने वाले यात्री मिट्टी पहाडो से भर लाये है और उसे ज्वालामुखी पहाड की मिट्टी और रेगिस्तान की मिट्टी उन्होने वताया है। मुख्य भू रसायन वेत्ता डाक्टर राविनवट ने भी यह अदाज प्रगट

किया है कि वह क्रेटर ज्वालामुखी से वना मालुम होता है।

इन सव वक्तव्यो से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिको की खोज को कोई निर्णीत वात नही माना जा सकता है वे स्वय अदाजा और सदेह प्रगट कर रहे है कहा ज्वालामुखी पहाड, और कहा रत्नो का प्रकाश करने वाला अनाधिनिधन मेरु प्रदिक्षणा देने वाला चन्द्र-विमान जिसमे मिट्टी, घाटी, पहाडो, गड्ढो का होना सर्वथा असम्भव है।

इसलिये सर्वज्ञ कथित और गणधर, श्रुतकेवली अवधि ज्ञानी मन पर्ययज्ञानी वीतराग प्रत्यक्ष दृष्टा महर्षियो द्वारा लोक स्वरूप आदि का श्रद्धान करना चाहिये और इन खोजो पर विश्वास करके अपने ज्ञान को मिथ्या कोटि मे नही ले जाना चाहिये।

जिन वाणी पर दृढ श्रद्धान किये विना व्यवहार सम्यग्यदर्शन भी नही हो सकता है।

और भी पढिये

तारीख १५ दिसम्वर १६७२ के नवभारत टाइम्स मे कुछ वाक्य इस प्रकार है—

"दो अमेरिकी चन्द्र यात्रियो ने चन्द्रमा के टारस लिट्रो क्षेत्र मे ऊचे पहाड मे खोज का काम किया।"

"एक चन्द्र यात्री सरनन ने चन्द्रमा के ६,१३० मीटर ऊचे पहाड की दलान पर खडे होकर ज्वालामुखी घाटी की ओर पीछे देखा जिसकी उन्होंने तीन दिन खोज की थी।"

"चन्द्रमा पर तीसरा विचरण सरनन और शिमिट आज भारतीय समय के अनुसार प्रात ४-४ पर चन्द्रमा के २-१३५ मीटर ऊचे पहाड की खोजबीन करने निकले इनमे कुछ पहाडियाँ और क्रेटर भी हैं जो ज्वालामुखी घाटी की काली मिट्टी से वने हैं।"

"अपोलो १७ चन्द्रयान मे कुछ नई व कुछ पुरानी चन्द्र चट्टाने हैं जिनसे चन्द्रमा के वारे मे अधूरा ज्ञान पूरा होगा।")

(नवभारत टाइम्स देहली ता० १५ दिसम्वर १६७२)

स्वाध्यायशील विद्वान् इस सब वक्तव्य को पढ कर स्वय निर्णय एव निष्कर्ष पर पहुचे। चन्द्रमा से पहाडी और ज्वालामुखी मिट्टी से बनी हुई घाटी का विवरण है। इन सब विवरणो से चन्द्रमा के बारे मे अधूरा ज्ञान बताया गया है।

इन उद्धरणो से जो स्वय चन्द्रलोक मे गये हुए यात्रियो ने बताये हैं, कम से कम जैन विद्वानो को तो इन काल्पनिक खोजो पर विश्वास नही करना चाहिये। यदि वे भी चन्द्रमा पर यात्रियो के पहुँच जाने पर विश्वास करते है तो यह समझना सहज है कि उनकी दृष्टि मे सर्वज्ञ कथित 'लोक रचना' एव देवो का गति विधान तथा उससे सम्बन्धित पुण्य सम्बन्ध सब कुछ कथन सत्य नही है। वास्तव मे ऐसी मिथ्या भ्रान्ति पूर्ण मिथ्या श्रद्धा ही दर्शन मोहनीय के उदय का सूचक है।

यह बात हम पहिले कह चुके हैं कि जीवो के पुण्य पाप के कारण स्वर्ग नरक आदि गतिया नियत हैं और असख्यात द्वीप समुद्रो का सद्भाव पृथ्वी को घूमती हुई और गोल मानने पर कैसे सिद्ध होगा ? पृथ्वी को गोल मानने वाले उसका परिमाण कितना मानते है कितना उसका व्यास और कितनी लम्वाई एव ऊचाई बताते हैं, यह भी समझना होगा। उनके मतानुसार स्वर्ग नरक लोक रचना आदि सर्वज्ञ द्वारा प्रत्यक्ष भासित एव अवधि मन पर्यय ज्ञानियो द्वारा एक देश प्रत्यक्ष भासित पदार्थों को नही मानना और भौतिक उन्नति के चक्र मे लगे हुए वैज्ञानिको की खोज मात्र पर विश्वास कर बैठना यह नास्तिक बुद्धि का ही परिणाम है और उसका भी मूल कारण मिथ्यात्व कर्मोदय है।

ऐसे भ्रमात्मक बुद्धि वालो के लिये हम एक प्रत्यक्ष प्रमाण देकर इस प्रकरण को समाप्त करते है। देखिये– ज्योतिप के दो भेद है एक फलित ज्योतिप, दूसरा गणित ज्योतिप।

जन्म समय एव अन्य समय मे शनि ग्रह आदि ग्रहो के अनुसार मनुष्यो के इस्टाऽनिष्ठ फल को ज्योतिषी बता देते हैं। अनिष्ट ग्रहो के प्रकोप को दूर करने के लिये उपाय भी बताते है जैसे शनि ग्रह दशा को दूर करने के लिये भगवान मुनि सुव्रत नाथ की पूजा शास्त्र-कारो ने बताई है।

गणित ज्योतिष के आधार पर सूर्य चन्द्रमा और केतु राहु के गमन के अनुसार ज्योतिषी विद्वान दस बीस वर्षो के पहले ही इस निर्णय की घोषणा एव पचागो द्वारा प्रसिद्ध कर देते है कि अमुक महीने मे सूर्य ग्रहण अमुक महीने मे चन्द्र ग्रहण पडेगा और यह भी सिद्ध कर देते हैं कि अमुक दिशा मे इतना भाग दीखेगा। या वह खग्रास (पूर्ण ग्रहण) या आधा या चौथाई पडेगा। साथ ही यह भी बता देते है कि इस समय ग्रहण का प्रारम्भ होगा और इस समय प॰ उसकी समाप्ति हो जायगी। पचागो के निर्णय के अनुसार उसी सन् मे उसी महीने मे उसी दिन उसी समय पर सूर्य ग्रहण चन्द्र ग्रहण ठीक समय पर पडते हैं और निर्धारित समय मे ही प्रारम्भ और ग्रहण होता है। यह सब देश देशान्तरो के लोग प्रत्यक्ष देखते है। ऐसी प्रत्यक्ष बातो को देखते हुए भी शास्त्र निर्दिष्ट सिद्धान्त को नही मानना और सर्वथा सिद्ध नही होने वाली अनुमानिक खोजो पर विश्वास कर लेना भी आस्तिक बुद्धि वालो के लिये उचित एव हितकर नही है।

इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाण और परोक्ष प्रमाण का स्वरूप दिगम्बर जैनाचार्यो ने स्पष्ट किया है। उसे मानकर स्वात्म हित करना प्रत्येक सम्यग्ज्ञानी का कर्तव्य है।

असम्भव सम्भव नहीं हो सकता है

जो असभव है वह किसी भी प्रयत्न से कभी भी सभव नही हो सकता है। इस बात का भी तर्क शास्त्रियो को ध्यान रखना

चाहिये। इस समय अमरीका और रशिया दोनो प्रधान राष्ट्र करोडो अरबो रुपये खर्च कर चन्द्रमा और मगल ग्रह पर जाने आने एव वहा पर ठहरने आदि के लिये स्टेशन आदि की तैयारी मे लगे हुए है। अमरीका एव रूस ने यात्रियो सहित राकेट भेजे भी है। चन्द्र पर वे पहुच भी गये है ऐसा भी देश विदेश के समाचार पत्रो मे प्रकट किया गया है। चन्द्रमा से बटोरकर वे यात्री ककर पत्थर और चट्टाने भी लाये है। वैज्ञानिको ने जाच कर उन चट्टानो को चार अरब वर्ष पुरानी चट्टाने बताया है। ऐसा विपरीत श्रद्धान करने से समाज का शास्त्राधार से सच्चा श्रद्धान शिथिल होता है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर इस सम्बन्ध मे थोडा सा प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

राकेट चन्द्रमा तक न पहुचे और न पहुँच सकते है–

पहली बात तो यह है कि राकेटो का प्रयोग करने वाले वैज्ञानिको ने यह प्रसिद्ध किया है कि राकेट चद्रकक्ष तक गये है और पौने तीन लाख मील तक ऊचे गये है चद्रकक्ष का क्षेत्र चद्रमा से लाखो मील दूर भी बताते हैं जैन सिद्धान्तानुसार चद्रमा पृथ्वी तल से ३५,२०,००० मील ऊपर है। जैसा कि यह प्रमाण है—

णउ दुत्तर सत्तसया दस सीदी चदुदुगतिय चउक्क।
तारारविससि रिक्खा वुह भग्गव गुरू अगिराह सणी॥

अर्थ–इस समान भाग पृथ्वी तल से ७६० योजन ऊपर तारे है। उनसे १० योजन ऊपर सूर्य है। उससे ८० योजन ऊपर चद्रमा है और उससे चार योजन ऊपर नक्षत्र है उनसे चार योजन ऊपर बुध है। उससे तीन योजन ऊपर शुक्र है। उससे तीन योजन ऊपर बृहस्पति है। उससे तीन योजन ऊपर मगलग्रह है। उससे तीन योजन ऊपर शनि है। इस गाथा के अनुसार इस पृथ्वी तल से चद्रमा ८८० योजन ऊचा है। तथा एक योजन ४००० (चार हजार) मील का होता है इस हिसाब से

यहा से चद्रमा की ऊचाई ३५,२०,००० (पैतीस लाख बीस हजार) मील है।

इस प्रमाण के अनुसार राकेटो का चद्रमा तक पहुँचना सर्वथा अशक्य है। जब कि केवल पौने तीन लाख मील ही राकेट गये हैं। तब चद्रमा तक कैसे पहुँच गये ? फिर चद्रमा प्रकाश देने वाला रत्नो का विमान है उसमे से ककड पत्थर पुरानी चट्टानें कीचड आदि कहाँ हो सकते है। यह केवल कल्पना पूर्ण अदाजिया खोज है। यह भी उन वैज्ञानिको ने स्पष्ट किया है कि वे यात्री अधेरी गुफा मे जाकर आधा घटा मे चट्टाने ले आये। इस वक्तव्य से यह बात सिद्ध होती है कि राकेट सीधे ऊपर नही गये हैं किन्तु चक्कर लगाते हुए तिरछे गये हैं और किसी पहाडकी ऊची चोटी पर पहुचकर उस पर्वत की अधेरी गुफा से ककड पत्थर चट्टाने बटोर लाये हैं। चद्रमा पर अन्धेरी गुफा तो नही है वहा तो रत्नो का महान प्रकाश है। जो पृथ्वी तक आकाश मण्डल मे फैल रहा है।

यह भी विचारणीय बात है कि जो चट्टानें लाई गई हैं वे चार अरब वर्ष पुरानी बताई गई हैं। यह भी परमाणुओ एव स्कधो की अत्यन्त जीर्णता की अदाजिया जाच है। वे चट्टानें दस बीस लाख वर्ष पुरानी भी हो सकती हैं। चार अरब वर्ष पुरानी हो इस बात का कोई निश्चित प्रमाण तो नही है। जो ऐसा ही मान लिया जाये। इसलिये इस विज्ञान प्रसार को प्रमाण नही माना जा सकता है।

एक बात यह भी है कि चन्द्रमा सूय विमान से ८० (अस्सी) योजन ऊचा है। अत चन्द्रमा तक जाने मे पहले सूर्य विमान मिलेगा। उसकी तीव्र तेजोमय किरणो के ससर्ग से राकेट जलकर भस्म हो जायेंगे।

चन्द्र इन्द्र है।

सर्वज्ञ कथित तथा अवधि मन पर्यय प्रत्यक्ष ज्ञानियो के द्वारा रचे गये शास्त्रो द्वारा ज्योतिषी देवो मे चन्द्र विमान मे रहने वाले

देवो के अधिपति चन्द्रदेव को इन्द्र और सूर्य विमानवासी देवो के अधिपति सूर्य को उपेन्द्र वताया गया है। यह चन्द्र इन्द्र महान वैभव एव महान् शक्तिशाली ज्योतिषी देवो का महाराजा है। वह चन्द्र विमान राकेट मे चढकर नही मिल सकता है। उसके लिये तीव्र पुण्य चाहिये। देवगति नाम कर्म एव देवायु आदि महान् शुभ पुण्य कर्म का मनुष्य पर्याय मे विशेष धर्म साधन से ही वध सकता है। जिनको राकेटो द्वारा चन्द्र विमान प्राप्त करने का विश्वास है। उन्हे सर्वज्ञ भासित जैन सिद्धान्त पर विश्वास एव निष्ठा नही है। जैन सिद्धान्त पर विश्वास भले ही नही हो। परन्तु वस्तु तत्व अथवा वास्तविक पदार्थ तो असत्य नही ठहर सकते है फिर जैन सिद्धान्त पर अविश्वास करना और विना प्रमाण के काल्पनिक अदाजिया वातो पर विश्वास कर लेना यह भी तो बुद्धिमत्ता नही है।

यह बात प्रशसनीय है कि पाश्चात्य वैज्ञानिको ने भौतिक उन्नति सीमातीत एव चमत्कारक कर डाली है। जिसके वायरलैस (विना तार के आकाश मे शब्द का प्रसार) टेलीविजन आदि अनेक विद्युत्प्रयोग हमारे आपके सवो के सामने है। वे प्रयोग असत्य नही है किन्तु असम्भव वातो की अदाजिया कल्पना करना असत्य एव वाधित है। ये सभी प्रयोग जल पृथ्वी तेज वायु आदि भौतिक पदार्थो की शक्ति का ही आविष्कार है। यह सम्भव वस्तु तत्व है जैन सिद्धान्त तो स्पष्ट वता रहा है। कि जीव मे जिस प्रकार अनन्त शक्ति है उसी प्रकार पुद्गल जड (Matter) मे भी अनन्त शक्ति है। जीव की गति के समान पुद्गल भी अपनी सतत एव सर्वोच्च तीव्र गति से एक समय मे चौदह राजू तक जा सकता है। साथ ही जैन सिद्धान्त ने यह भी स्पष्ट वता दिया है कि पृथ्वी जल अग्नि वायु भिन्न भिन्न द्रव्य नही है किन्तु पुद्गल की ही पर्यायें हैं। इन्ही पर्यायो के ये सब भौतिक चमत्कार है। जैन सिद्धान्त को छोडकर अन्य सभी नैयायिक वैशेषिक मीमासक यौगिक आदि प्राचीन अन्य दर्शन पृथ्वी जल अग्नि वायु

इनको भिन्न भिन्न द्रव्य और भिन्न भिन्न परमाणु मानते है परन्तु चारो की एक पर्याय के कार्य प्रत्यक्ष दीखते है अत जैन सिद्धान्त चारो को भिन्न भिन्न नही बताता है। अन्य दर्शन शब्द को अमूर्तिक एव आकाश का गुण मानते है "शब्द गुणकमाकाशम्" यह गौतम सूत्र है। परन्तु जैन सिद्धान्त शब्द को पुद्गल द्रव्य की मूर्तिमान पर्याय मानता है। यह जैन सिद्धान्त का कितना असाधारण महत्व पूर्ण प्रत्यक्ष प्रमाण है। जिसका प्रत्यक्ष कार्य हम आप सव देख रहे हैं। टेलीफोन टेलीग्राम आदि द्वारा शब्द चला जाता है। रिकार्ड मे भर लिया जाता है। बारूद के धमाके पूर्ण शब्द से पहाड फट जाता है। कानो की झिल्ली फट जाती है। इन सव बातो से यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि शब्द आकाश का गुण अमूर्तिक नही है। किन्तु जैन दर्शन के सिद्धान्त अनुसार शब्द पुद्गल द्रव्य की मूर्तिमान् पर्याय है।

विज्ञान की सफलता कब सम्भव है ?

इस विवेचन से यह वात निर्णीत रूप मे सुसिद्ध है कि जहा तक भौतिक (साइस) प्रयोग जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित तत्वो के अनुकूल है। वहा तक वह सफल हो सकता है। परन्तु जो साइ स प्रयोग जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित तत्वो के विपरीत है वह कभी सफल नही हो सकता है। असभव सभव नही हो सकता है। इसके उदाहरण मे हम एक ही वात कह देना पर्याप्त समझते हैं कि ससारी जीव चारो गतियो मे अपनी आयु कर्म गति कर्म आदि के उदय से घूमता है। जन्म मरण धारण करता है। यह जैन दर्शन है। इसके विपरीत यदि वैज्ञानिक आविष्कारक जीव को मरने नही देवें। अथवा मरे हुए जीव को जिन्दा कर देवें तो जैन दर्शन असत्य ठहर सकता है। परन्तु मनुष्य को सदैव जीवित रखने या मृत मनुष्य को जीवित करने के वडे वडे गम्भीर प्रयत्न किये जाचुके हैं। उस विषय मे वैज्ञानिक

(Scientist) न तो आज तक मफल हो मके है और न कभी सफल हो सकेगे। एक पाश्चात्य विद्वान ने एक मस्तक का ऐसा आविष्कार किया है कि उस मस्तक मे आखें खुल जाती है, हाथ पैर चलाये जा सकते है। परन्तु उस मस्तक मे इच्छा भूख प्यास और बुद्धि नही हो सकती है। इससे यह सिद्ध है कि असभव को सभव नही बनाया जा सकता है। इसलिये जैन दर्शन सर्वज्ञ कथित एव एक देश प्रत्यक्ष दृष्टा वीतरागी महर्षियो द्वारा प्रतिपादित है वही प्रमाण है। अत दिगम्बर जैन शास्त्रो का अध्ययन एव स्वाध्याय कर उनमे कहे हुए तत्वो पर पूर्ण श्रद्धान करके अपना कल्याण करना चाहिये। व्यर्थ कुतर्क पूर्ण चातुर्य से स्व-पर बचना के सिवा कोई लाभ नही है।

सम्यज्ञान ही प्रमाण है

जैन दर्शन जड चीजो को प्रमाण नहीं बताता है। जैसा कि प्राय सभी अन्य दर्शन वाले मानते है। नैयायिक वैशेपिक भाट्ट प्रभाकर मीमासक आदि सभी दर्शनकार वाह्य इन्द्रियो (द्रव्येन्द्रिय) को शब्द को सूर्य और दीपक आदि के प्रकाश को प्रमाण मानते है। उनका तर्क एव समर्थन यह है कि इन्ही इन्द्रियो के द्वारा शब्द एव प्रकाश के द्वारा ज्ञान होता है। इसलिये ये इन्द्रिय आदि प्रमाण है। परन्तु जैन दर्शन अनेक हेतुओ एव युक्तियो से यह बताता है कि ये चक्षु आदि इन्द्रिया तो शरीर के अग हैं। वे जड हैं वे स्वय ज्ञान नही करती है। किन्तु आत्मा के द्वारा ज्ञान कराने मे साधक है। वाह्य चक्षु (द्रव्य चक्षु) स्वय नही देखता है किन्तु भाव चक्षु जड इन्द्रियों की सहायता से आत्मा का ज्ञान ही देखता है। यह हिन्दी का दोहा मनन करने योग्य है।

नैनो से देखे जगत नैना देखे नाहिं।
ताहि देखि जो देखता नैन झरोखे माहिं॥

इसका अर्थ यह है कि जगत के लोग नेत्रो से देखते है। वे समझते है कि हमारे नेत्र ही देखते और जानते है। परन्तु नेत्र नही देखते। किन्तु नेत्र रूपी झरोखे से आत्मा चेतन ही देखता है। जानता है। उसे पहचानो।

जैसे भीतर कमरे मे बैठा हुआ मनुष्य तभी बाहर की चीजो को देख सकता है जबकि कमरे के दरवाजे खुले हुए हो। इसलिये दरवाजा तो देखने मे सहायक है वह स्वय नही देखता है किन्तु खुद दरवाजे की सहायता से मनुष्य ही देखता है जड चीजें सूर्य बिजली दीपक का प्रकाश आदि बाहरी साधन तो जड है। वे आत्मा चेतन के ज्ञान कराने मे सहायता करते हैं अत जैन दर्शन ज्ञान को ही प्रमाण मानता है। इन्द्रिय आदि जड साधनो को प्रमाण नही मानता है।

इसका अत्यन्त विपद अत्यन्त गम्भीर अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन अनेक हेतु युक्ति तर्क आदि से प्रमेय कमल मार्तण्ड अष्ट सहस्त्री श्लोक वार्तिक, राजवार्तिक आदि जैन दर्शन शास्त्रो मे बताया गया है। साथ ही यह भी बताया गया है कि ज्ञान मात्र ही प्रमाण नही है ज्ञान तो सशय ज्ञान, विपरीत ज्ञान और अनध्यवसाय ज्ञान है ये तीनो ही मिथ्या ज्ञान हैं। उनकी जानकारी से वस्तु का यथार्थ सच्चा बोध नही होता है सशय या विपरीत ज्ञान से अपना और पर का अहित होता है। अत प्रत्यक्ष द्रष्टा वीतरागी महर्षियो ने "सम्यग्ज्ञान प्रमाणम्" इन सूत्रो द्वारा सम्य ज्ञान को ही प्रमाण सच्चा ज्ञान बताया है।

आचार्य माणिक्य नन्दि ने परीक्षा मुख मे प्रमाण का लक्षण यह बताया है—

स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाण।

अर्थात् जो ज्ञान अपने स्वरूप को और अनिश्चित पदार्थ को निश्चयात्मक जानता है वही सम्य ज्ञान प्रमाण है। इसी प्रमाण की

सिद्धि मे प्रमेय कमल मार्तण्ड, प्रमेय कुमुद चन्द्रोदय आदि न्याय शास्त्रो की रचना आचार्य प्रभाचन्द्र जैसे महान् तार्किक विद्वान आचार्यो ने की है।

जैन दर्शनाचार्य
श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का प्रमाण निरूपक

प्रथम अध्याय समाप्त

अथ द्वितीय अध्याय

नयों का विशद विवेच
तथा
निश्चय एकांत खंड

नयों का स्वरूप और उनके भेद

प्रमाण का संक्षिप्त स्वरूप ऊपर कहा जाचुका है अब यहा पर नयो का स्वरूप कहा जाता है उसे ध्यान पूर्वक पढकर समीचीन नय कौन है और कुनय मिथ्या नय कौन है यह समाधान कर लेना प्रत्येक शास्त्र ज्ञाता का कर्तव्य है।

प्रमाण और नयो मे भेद क्या है ?

इसका समाधान यही है कि प्रमाण वस्तु के सर्वांशो को ग्रहण करता है और नय उस वस्तु के किसी एक अश को ग्रहण करता है। "सकलादेश प्रमाणाधीन विकला देश नया धीन" अर्थात् द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु को जो ज्ञान ग्रहण करता है वह प्रमाण ज्ञान है और जो द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु के केवल द्रव्याश को ग्रहण करता है अथवा केवल वस्तु के पर्यायाश को ग्रहण करता है वह नय ज्ञान है। प्रमाण और नय दोनो ज्ञान के ही भेद हैं। दूसरे शब्दो मे यह कहना ठीक है

कि वस्तु का ज्ञान करने मे जितने ज्ञान भेद विकल्प है उन्हे नय कहते है अथवा जितने अभिप्राय भेद है वे नय है अथवा जितने वाक्य भेद है वे नय है। दृष्टान्त यह समझिये कि किसी ने घी का घडा कहा, किसी ने मिट्टी का घडा कहा, किसी वे पानी का घडा कहा, किसी ने आटे का घडा कहा, वस यही विवाद का विपय वन जाता है और नयो के स्वरूप को समझने वालो को इन भिन्न भिन्न वाक्यो मे कोई विरोध या विवाद प्रतीत नही होता है। मिट्टी का घडा चाहने वाला मिट्टी का घडा लाओ ऐसा कहता है। सोने का घडा चाहने वाला सोने से बने घडे को चाहता है। घी चाहने वाला घी से भरे हुए घडे को चाहता है। उसे सोने या मिट्टी के घडे से प्रयोजन नही है किन्तु जिस घडे मे घी भरा है उस घडे को चाहता है। इसी प्रकार आटा को चाहने वाला आटा का घडा लाओ ऐमा कहता है। कोई पानी से भरे हुए घडे को चाहना है तो पानी का घडा वोलता है। इस प्रकार अभिप्राय एव वाक्य भेद से अनेक नयो की विवक्षा हो जाती है परन्तु विवादी लोग विवाद कर वैठते है कि घी का या पानी का घडा नही होता है घडा मिट्टी का या सोने का है। घी या पानी चाहने वाले के अभिप्राय को नही समझ कर यह तर्क कर वैठते है।

इसी प्रकार किसी ने कहा है कि अमुक पुरुष नव कवल वाला है। परन्तु दूसरा विवादी पुरुष उससे कहता है कि तुम भूठ बोलते हो उसके पास नौ कबल कहा है एक ही तो है तब दूसरा समझाता है कि भाई मैने तो यह कहा है कि इसके पास नवीन कवल है नौ कवल मैंने नही वताये है इसी प्रकार एक आदमी पर नौ कवल देखकर दूसरा कहता है कि वह नव कवल वाला है तीसरा विवादी कहता है तुम भूठ कहते हो इसके पास तो पुराने कवल हैं। नवीन कवल कहा हैं ? तव वह समझाता है कि नव कवल से मेरा अभिप्राय नये पुराने कवल से नही है किन्तु नौ कवलो से है। इन दृष्टान्तो से

यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वस्तु के स्वरूप विवेचन मे वक्ता के अभिप्राय और वाक्यो के भेद से नयो के भेद हो जाते है।

रेलगाडी मे बैठे हुए मनुष्य कहते है कि अव झासी निकल गया इटारसी आरहा है आदि परन्तु झासी इटारसी तो जहा के तहा ही हैं न कोई निकल गया है और न कोई आरहा है किन्तु वक्ता के अभिप्राय से यह कथन यथार्थ है। नही समझने वाला झूठा वताता है। नयो का रहस्य गहन है।

द्रव्य पर्याय नय

अनन्त गुणो के अखण्ड पिण्ड को द्रव्य कहते है। अर्थात् द्रव्य नाम गुणो के समूह का ही है। अत द्रव्य और गुणो के समूह मे कोई भेद नही है। द्रव्य की समय-समय मे वदलने वाली अवस्था को पर्याय कहते हैं। पर्याय वदलती रहती है अत वह अनित्य है। द्रव्य सदैव रहता है वह नित्य है। दृष्टान्त यह है कि एक जीव मरकर पशु हुआ और फिर मर कर मनुष्य हुआ फिर मरकर देव हुआ फिर मरकर मनुष्य हुआ। पर्याये वदलती गई परन्तु एक ही जीव उन सभी पर्यायो मे चला जाता है। इस परिस्थिति को समझने से जैन दर्शन का यह सिद्धान्त सत्य निर्वाध सप्रमाण सिद्ध है कि प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य स्वरूप से सदैव नित्य है। अत द्रव्य दृष्टि से जीव नित्य है। उसका कभी विनाश नही होता है। किन्तु वही जीव पर्याय दृष्टि से अनित्य है। इसलिये जीव द्रव्य को कथचित नित्य और कथचित अनित्य माना जाता है इसी प्रकार पुद्गल आदि सभी द्रव्यो मे यही वात समझनी चाहिये। इसी का नाम स्याद्वाद है। एक ही पदार्थ नित्य भी है और अनित्य भी है। दो विरोधी धर्म एक वस्तु मे कैसे रह सकते हैं ? यह शका अपेक्षा भेद को समझे विना सहज होती है। प्राचीन शकराचार्य ने यही भाव अपने वनाये हुए ग्रन्थो मे लिखा है कि "नैकस्मिन्न सभवात्" अर्थात एक वस्तु मे नित्य और अनित्य दो

विरोधी धर्म नही रह सकते है। अत जैन दर्शन का स्याद्वाद असत्य है परन्तु वे जैन दर्शन की अपेक्षा अथवा विवक्षा दृष्टि को नही समझे थे। जैन दर्शन के इस सहेतुक निर्वाध एव अकाट्य वस्तु स्वरूप का नाम ही स्याद्वाद है।

निश्चय नय और व्यवहार नय का स्वरूप

निश्चय नय और व्यवहार नय मे भी समझ की कमी से एक ऐसा मतभेद या विवाद खडा हो जाता है जो जैन सिद्धान्त का विघातक बन जाता है। इसीलिये निश्चय नय और व्यवहार नय का स्पष्टीकरण कर देना अत्यावश्यक है।

निश्चय नय उसे कहते है जो वस्तु के शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करता है। जैसे जीव का परम शुद्ध स्वरूप सिद्ध परमात्मा है वह आठो कर्मो से रहित है। शरीर रहित है अमूर्तिक है और अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य चारित्र आदि अनन्त विशुद्ध गुणो के पूण विकासमय है। यही निश्चय नय का विषय है। अर्थात जीव का परम विशुद्ध स्वरूप ही (सिद्धावस्था) निश्चय नय का विपय है। व्यवहार नय जीव की कर्म जो कर्म सराग वीतराग भाव, विभाव, स्वभाव, भाव आदि मिली हुई भेद पर्यायो को विषय करता है अर्थात व्यवहार नय ससारावस्था से लेकर जीवन्मुक्त परमात्मा केवली भगवान तक जीव की पुद्गल समिश्रित अवस्थाओ को ग्रहण करता है। तथा अखण्ड द्रव्य मे गुण गुणी का भेद वताता है।

निश्चय नय निर्विकल्प है। और अवक्तव्य है उस नय से वस्तु स्वरूप का विकल्पात्मक कोई प्रतिपादन नही हो सकता है। वह ता अमूर्तिक एव पुद्गल सम्वन्ध से सर्वथा रहित विशुद्ध चैतन्य आत्मा को ही विपय करता है निश्चय नय की दृष्टि से जीव अजीव आश्रव वन्ध सवर निर्जरा मोक्ष आदि कोई भेद विकल्प नही कहा जा सकता है। अत जीव ससारी है या मुक्त है यह कुछ भी निश्चय दृष्टि से नही कहा

जा सकता है जीव ज्ञानवान है। यह भेद करना भी निश्चय नय का विषय नही है। किन्तु इसे व्यवहार नय विषय करता है। अत व्यवहारनय विकल्पात्मक है वह जीव तत्व की विकारी अविकारी सभी पर्यायो को विपय करता है इस नय से जीव की नीचे से ऊपर तक सभी अवस्थाओ का परिचयात्मक वोध होता है। उसका भी मूल कारण यह है कि जीव अनादि काल से सर्वथा अमूर्तिक शुद्ध नही है। वह पहले ससारी है। कर्म नो कर्मो से बन्धा हुआ है। और विभाव भाव वाला है। अल्प ज्ञानी है। मिथ्या दृष्टि और मिथ्या चरित्र वाला भी है। सम्यग्दृष्टि श्रावक एव मुनि पद धारी भी है ऐसी अवस्था मे जीव को सर्वथा निश्चय नय का विपय कहना विपरीत होगा और ससारी जीव की ये अवस्थाये कल्पनात्मक नही है वास्तविक हैं सत्य हैं। केवली भगवान अवधि ज्ञानी, मन पर्यय ज्ञानी उन समस्त जीव की पर्यायो को प्रत्यक्ष देखते जानते हैं इसलिये उन्हे असत्य कहना सर्वथा विपरीत है व्यवहार नय उन सव वास्तविक अवस्थाओ को जानता है इसलिये वह भी सत्य है और यथार्थ ज्ञान है।

कौन बुद्धिमान यह कहने का साहस कर सकता है कि आत्मा से शरीर का सम्बन्ध झूठा है। इन्द्रिय ज्ञान झूठा है कषाय आविष्ट आत्मा होती ही नही है। नरक तिर्यञ्च मनुष्य देव पर्यायें झूठी हैं या काल्पनिक हैं। ऐसा समझना या कहना ही सर्वथा मिथ्या या झूठा है। क्यो कि ससारी पर्यायें सर्वज्ञ द्वारा प्रतिभापित पूर्ण सत्य है। और उनकी क्रम-क्रम से प्राप्ति होती है। राग द्वेष आदि भावो का छूटना भी मुनिपद मे क्रम से ही होता है। इस क्रम मे केवल ज्ञाप्य ज्ञापक भाव ही नही है किन्तु क्रम से पर्यायो की प्राप्ति से एव क्रम से भावो की विशुद्धता होने से साध्य साधक भाव है इन्ही सव सत्य एव यथार्थ पर्यायो को व्यवहार नय भिन्न-भिन्न रूप से ग्रहण करता है। अत व्यवहार नय को मिथ्या अथवा असत्य कहना सिद्धान्त विपरीत है।

क्योंकि मद्य मास आदि मे त्रस जीव भरे रहते है उनका भक्षण करना महापाप है इन पापो को छोडना ही जैन बनने की सबसे पहली सीढी है। इसी को पाक्षिक श्रावक कहा जाता है। यह सबसे छोटा जघन्य पद है। यदि आठ मूल गुण नही पालता है तो वह जैन भी नही है। जैन कुल मे पैदा होने मात्र से जैन नही बनता है इसके आगे पाच अणुव्रत अभ्यास रूप मे पालता है। आगे उत्तरोत्तर सम्यग्दृष्टि मनुष्य हिंसा, झूठ, चोरी कुशील, परिग्रह इन पाचो पापो को एक देश त्याग करता है फिर पहली दूसरी आदि ग्यारह प्रतिमाओ के व्रत पालता है यहा तक नैष्ठिक श्रावक कहलाता है। यह मध्यम पात्र कहलाता है। इसके आगे धन सम्पत्ति मकान, पुत्र, स्त्री आदि समस्त बाह्य परिग्रह का पूर्ण रूप से त्याग करता है और घर छोडकर वन मे तथा मन्दिर मठ बगीचा आदि स्थानो मे जाकर नग्न दिगम्बर साधु पद ग्रहण करता है। साथ ही अन्तरग मे क्रोध मान माया लोभ आदि राग द्वेप को छोडकर एव पाचो पापो का पूर्ण रूप से त्याग कर देता है। वह पुरुप उत्तम पात्र मुनि बन जाता हे। वह मुनि त्रस और स्थावर दोनो प्रकार की हिंसा का त्याग करता है और पूर्ण अहिंसा भावो की सम्हाल के लिये महाव्रत पाचो समिति आदि का पालन करता है। जब भावो की विशुद्धि बहुत बढ जाती है तब वह सातवे अप्रमत गुण स्थान के स्वस्थान अप्रमत से ऊपर सातिशय अप्रमत्त भावो को प्राप्त कर लेता है। वही से वह महामुनि उपशम-श्रेणी तथा क्षपक-श्रेणी पर पहुँच जाता है। वहाँ पर स्थिति खण्डन अनुभाग खण्डन के साधक अध करण अपूर्व करण अनिवृत्ति करण के द्वारा सूक्ष्म विशुद्धि प्राप्त कर कर्मो की निर्जरा करता हुआ क्षपक श्रेणी द्वारा अन्त शुद्धि से समस्त घातियाँ कर्मो का नाश कर केवल ज्ञानी वीतराग सर्वज्ञ जीवन्मुक्त परमात्मा अर्हन्त पद प्राप्त कर लेता है। और वही परमात्मा अघातिया कर्मो का भी विनाश कर कर्म नो कर्म

शरीर से रहित परम शुद्ध आकाश के समान अमूर्तिक एव अनन्त गुणो के प्रगट प्रकाश के साथ सिद्ध पद प्राप्त कर लेता है।

यह सब कथन अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे कहा गया है। यहा पर इस कथन से यह बताया गया है कि यही दिगम्बर जैन सिद्धान्त है। यही केवली भगवान सर्वज्ञ की दिव्य ध्वनि जिनवाणी का क्रम से होने वाला सार तत्व है। इसी सिद्धान्त को गणधरादि सभी महर्षियो ने शास्त्रो मे प्रतिपादन किया है। सातवें गुण स्थान से पहले तक सब क्रियात्मक चारित्र हैं अर्थात आशिक निश्चय चारित्र के साथ-साथ क्रियात्मक व्यवहार चारित्र है। चाहे सराग चारित्र हो, चाहे वीतराग चारित्र हो सभी मोक्ष अथवा सिद्ध पद प्राप्ति का अनिवार्य परमावश्यक परम साधक है। सिद्धान्त का जानकार कोई भी यह नही कह सकता है कि यह व्यवहार मिथ्या है या त्याज्य है या हेय है या उपादेय नही है। नीचे की श्रेणी से लेकर ऊपर तक क्रम-क्रम से विशुद्ध बढाने वाले इस व्यवहारात्मक चारित्र के बिना मोक्ष प्राप्ति सर्वथा असम्भव है। व्यवहार क्रियात्मक चारित्र है। कषायो के क्रमवर्ती अभाव एव उत्तरोत्तर मदता होने से यह सकल सयम रूप निश्चय चारित्र के ही भेद हैं। सभी शास्त्र इस विधान के पूर्ण समर्थक एव प्रमाण हैं। इस व्यवहार चारित्र को शरीर की परिणति कहना भी पूर्ण अज्ञान है। नीचे से ऊपर तक त्याग और तज्जन्य आत्म विशुद्धि आत्मा का ही परिणाम है इस बुद्धि पूर्वक त्याग को आत्म स्वरूप नही माना जाय तो फिर मोक्ष भी शरीर की परिणति होगी। सम्यग्दृष्टि के देव पूजन मुनि दान तीर्थ यात्रा, पच कल्याणक विधान कराना आदि सराग भावो को अथवा शुभ भावो को मोक्ष साधक (परम्परा) यदि नही माना जाय और उनको ससार वर्धक ही माना जाय तो इस प्रश्न का क्या समाधान होगा कि ये शुभ भाव मनुष्य को नीचे की ओर गिराते है या ऊपर की ओर बढाते हैं। यह तो प्रत्यक्ष अनुभव एव शास्त्र प्रमाण से सिद्ध है कि अणुव्रतो से महाव्रत

और महाव्रत से उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी प्राप्त हो जाती है। अर्थात शुभ भाव शुद्ध भाव के साधक है। उस सम्यग्दृष्टि के शुभ भावो को ससार का कारण बताना सिद्धान्त विरुद्ध है। शुभ भावो से अशुभ भावो का नाश और परम्परा विशुद्ध भावो एव मोक्ष की प्राप्ति होती है अत सम्यग्दृष्टि का पुण्य ससार का नाशक ही सिद्ध है। यही शास्त्रकारो ने बताया है।

सम्माइट्ठे पुण्ण ससार कारण णस्थि ।
सम्माइट्ठे पुण्ण मोक्खस्सेव कारण अस्थि ॥
(आचार्य देवसेन)

अर्थ — सम्यग्दृष्टि का पुण्य ससार का कारण नही है किंतु सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का ही कारण है। कितना स्पष्ट कथन है।

अनिवार्य-कारण त्याग से आत्मा का उत्थान

एक बात यह भी सोचने की है कि मद्य मासादि का त्याग किये विना क्या कोई सम्यग्दृष्टि बन सका है ? और अणुव्रत धारण किये विना कोई नैष्ठिक श्रावक बन सकता है क्या ? महाव्रत धारण किये विना उपशम क्षपक श्रेणी चढ सकता है क्या ? अथवा मुनि पद धारण किये बिना कभी कोई अर्हन्त पद मे पहुँच सकता है क्या ? कभी नही पहुच सकता। अत यह शास्त्राधार से सिद्ध है कि शुभ भाव रूप व्यवहार ही मुनि पद एव निश्चय का साधक है।

व्यवहार निश्चय का साधक है इसके कुछ प्रमाण

व्यवहार निश्चय का साधक है इसके प्रमाण मे आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं कि—

व्यवहारेणुव दिस्सादि पाणिस्स चरित्र दसण णाण ।
णयि णाण ण चरित्त ण दसण जाणगो सुद्धो ॥
(समय सार)

अर्थ — इस गाथा का यह अर्थ है कि आत्मा का ज्ञान दर्शन चारित्र (रत्नत्रय) गुण हैं। यह व्यवहार नय से कहा जाता है किन्तु निश्चय नय से आत्मा अखण्ड चिन्मूर्तिक शुद्ध है। निश्चय नय से उसे ज्ञान दर्शन गुण वाला नही कहा जासकता है। इसका तात्पर्य इतना ही है कि निश्चय नय से आत्मा निर्विकल्प एव अवर्णनीय है। आत्मा के ज्ञान दर्शन चारित्र गुण हैं ऐसा आत्मा और उसके गुणो का भेद रूप कथन करना यह व्यवहार है।

इस कथन से व्यवहार निश्चय का साधक सिद्ध होता है। क्योकि आत्मा के स्वरूप की पहिचान और उसके शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति के साधनो का परिज्ञान किये विना मोक्ष की प्राप्ति कभी किसी को नही हो सकती है। अत व्यवहार को हेय या अनुपादेय बताना समयसार शास्त्र के विरुद्ध है। समयसारकार आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी आगे और भी कहते हैं—

'तह ववहारेण विणा परमत्थु देसण असक्क।"

अर्थात् व्यवहार के विना परमार्थ का उपदेश नही हो सकता है इससे भी आचार्य ने व्यवहार को निश्चय का साधक ही बताया है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी और भी स्पष्ट करते हैं

सुद्धो सुद्धादेशो णायव्वो परम भाव दरसीहिं।
ववहार दे सिदो पुणा जेदु अपरमे ठिदा भावे॥

इस गाथा का स्पष्ट अर्थ यह है कि जो शुद्ध भाव (उपशम श्रेणी क्षपक श्रेणी) मे पहुचकर केवल शुद्ध स्वरूप आत्मा का अनुभव करते हैं उनके लिये केवल निश्चय नय ही उपादेय है परन्तु जो अपरम भाव (धर्मध्यान) मे स्थित है अर्थात जो अविरत सम्यग्दृष्टि है या जो श्रावक है या जो शुभ उपयोग वाले मुनि जन हैं उनके लिये व्यवहार उपादेय है। क्योकि उससे निश्चय साध्य की सिद्धि होती है।

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि कहते है

"निश्चय व्यवहारयो साध्य साधन भावत्वात् सुवर्ण-सुवर्ण पाषाण वत् अतएव उभय उभयनयायत्ता पारमेश्वरी तीर्थ प्रवर्तना ।"

(पचास्ति काय टीका)

अर्थ – जैसे सोना सोने के पाषाण से निकलता है अत सोना साध्य है और स्वर्ण पाषाण उसका साधक है। उसी प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनो मे साध्य साधक भाव है निश्चय साध्य है और व्यवहार साधक है ।

आचार्य जयसेन स्वामी भी पचास्ति काय की टीका मे लिखते है—

तच्च वीतरागत्व निश्चय व्यवहार नयाभ्याम् साध्य साधक रूपेण परस्पर सापेक्ष्यभ्यामेव भवति मुक्ति सिद्धये न च पुर्ननिरपेक्षाभ्याम् इति

(पचास्ति काय टीका)

अर्थ – वह वीतरागता निश्चय व्यवहार नयो के द्वारा साध्य साधक रूप से परस्पर एक दूसरे नय की अपेक्षा से मोक्ष प्राप्ति के लिये साधक है। निरपेक्ष नय से नही। अर्थात् व्यवहार नय के बिना निश्चय नय भी मोक्ष साधक नही है ।

एव निश्चय व्यवहाराभ्या साध्य साधक भावेन तीर्थ गुरू देवता स्वरूप ज्ञातव्य ।

(परमात्म प्रकाश टीका)

अर्थ – इस प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनो मे साध्य साधक भाव है निश्चय शुद्धात्म स्वरूप है और व्यवहार नय से धर्म तीर्थ धर्म गुरु और जिनेन्द्र देव के स्वरूप की पहिचान होती है । बिना व्यवहार के धर्म मे प्रवृति ही नही हो सकती है ।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

ऐसा पसत्थ भूदा समणाण वा पुणो घर स्थाण ।
चरिया परेत्ति भणिदा ता एव पर लहदि सोक्ख ॥
(प्रवचन सार २५४)

अर्थ – यह प्रशस्त राग शुभ राग व्यवहार धर्म जो मुनियो की तथा गृहस्थ श्रावको की चर्या धर्म प्रवृति है। उसी से परम मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है तथा

"व्यवहार मोक्ष मार्ग जानीहि त्व येन ज्ञातेन कथ भूतो ।
भविष्यति परपरया पवित्र परमात्मा भविष्यसि ॥
(परमात्म प्रकाश टीका)

आचार्य कहते हैं कि हे भव्य तू व्यवहार मोक्ष मार्ग को समझ ले जिसके समझने से तू परम्परा से पवित्र परमात्मा बन जायेगा। कितना स्पष्ट कथन है।

आचार्य देवसेन कहते है —

पज्जयणयेण भणिया चउब्विहाराहणाहु जासुत्ते ।
सा पुण कारण भूदाणिच्चयणयदो च उक्कस ॥
(आराधना सार)

अर्थ —सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तपये चारो आराधनायें शुद्ध आत्मा का निश्चयनय से स्वरूप हैं इन्ही चारो आराधनाओ को सम्यग्दर्शनादि के भेद रूप से कथन करना भेद रूप मे आराधना करना पर्याय आराधना अथवा व्यवहार आराधना है यह व्यवहार आराधना निश्चय आराधना मे कारण है।

अर्थात् परम विशुद्ध निश्चय स्वरूप की प्राप्ति मे व्यवहार कारण है।

आचार्य अमृत चन्द सूरि कहते है —

व्यवहार निश्चयौय प्रबुध्य तत्वेन भवति मध्यस्थ ।
प्राप्नोति देशनाया स एव फल मविकल शिष्य ॥
(पुरूषार्थ सिद्धयुपाय)

अर्थ —व्यवहार नय और निश्चय नय दोनो नयो के वास्तविक स्वरूप को समझकर जो मनुष्य मध्यस्थ भाव (राग द्वेषाभाव) धारण करता है। वही शिष्य आचार्यो के उपदेश का पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है। अर्थात् निश्चय नय को ही जो सर्वथा सत्य कहे व्यवहार नय को असत्य या मिथ्या कहता है। अथवा जो व्यवहार को सर्वथा सत्य कहे और निश्चय को मिथ्या कहता है वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है। वह गुरूओ के उपदेश का पात्र नही है।

तथा—"य अर्हत्सर्वज्ञ प्रणीत निश्चय व्यवहार नययो साध्य साधक भावेन मन्यते।

(द्रव्य सग्रह टीका)

आचार्य कहते है कि वही सम्यग्दृष्टि है जो अर्हत सर्वज्ञ प्रणीत निश्चय नय को साध्य और व्यवहार नय को उसका साधक मानता है। जो कोई निश्चय नय को ही एकाँत रूप से प्रमाण और यथार्थ मानते हैं। और व्यवहार नय को अप्रमाण हेयत्याज्य एव मिथ्या बताते है वे सम्यग्दृष्टि नही है मिथ्यादृष्टि है।

अधिक कहा तक लिखा जाय। आचार्य प्रणीत सभी शास्त्रो मे निश्चय और व्यवहार दोनो को सत्य बताया गया है आचार्यो ने यह स्पष्ट कहा है कि "निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तुतेऽर्थकृत्" अर्थात् निरपेक्ष नय मिथ्या है सापेक्ष नय ही वास्तव मे कार्य साधक है।

निश्चय और व्यवहार दौनो के द्वारा ही मोक्ष और मोक्ष मार्ग की सिद्धि हो सकती है। अन्यथा नही।

अनेक शास्त्रो मे दोनो नयो के साध्य साधक रूप मे अनेक प्रमाण है। उन्हे लिखने से वहुत ग्रन्थ विस्तार होगा आचार्य वचनो मे सर्वत्र कही विरोध नही है। जिन्हे विरोध प्रतीत होता है वह उनकी सिद्धान्त वोध की अजानकारी या उनकी पक्षपात पूर्ण स्वतन्त्र विचार धारा का ही परिणाम है।

निश्चय एकान्त वादियो के धर्म विरुद्ध मन्तव्य

जो लोग आचार्य वचनो की अवहेलना करते हुए व्यवहार धर्म को मिथ्या एव त्याज्य वताते है। और केवल निश्चय नय को ही मानते हैं। उनके स्वतन्त्र कल्पनात्मक विचार दिगम्बर जैन सिद्धान्त एव धर्म से सर्वथा विपरीत हैं। उनके विचारो का थोडा सा दिग्दर्शन इस प्रकार है —

१ तीर्थंकर केवली सर्वज्ञ भगवान की दिव्य ध्वनि शब्द रूप है। उससे किसी जीव का कोई हित नही हो सकता है।

यह मन्तव्य दिगम्वर जैन सिद्धान्त एव धर्म का मूल घातक है। जिन तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि को सुनकर समवसरण मे बैठे हुए अनेक भाव मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि वन जाते है। अनेक अणु-वती और अनेक महाव्रती वन जाते हैं। प्रलय काल मे रुका हुआ रत्नत्रयात्मक मोक्ष मार्ग भगवान की दिव्य ध्वनि से चालू हो जाता है। तीव्र मिथ्यादृष्टि जैन धर्म का विरोधी इन्द्रभूति जैसा महा अभिमानी विद्वान भी भगवान के दर्शन से चार ज्ञानधारी गणधर देव वन गया। उस दिव्य ध्वनि से किसी का हित नही हो सकता है यह कहना नितात अज्ञता एव धर्म का लोप करने वाली वात है।

शब्द पुद्गल की पर्याय है अत जड है यह ठीक है। परन्तु आत्मा के भावो से शब्द निकलते हैं वे हमारे विचारो के ही प्रतीक हैं। अन्यथा किसी के प्रश्नो का यथार्थ सही उत्तर क्या जड शब्द दे सकते हैं ? नही।

इसी प्रकार वीतराग सर्वज्ञ की निरीच्छ (बिना इच्छा के) दिव्य ध्वनि से निकलने वाले शब्द सर्वज्ञ वाणी के ही प्रतीक है यदि उन शब्दो का परमात्मा से सम्बन्ध नही हो तो तीन लोक छह द्रव्य रत्नत्रय स्वरूप जीवो के भावो का वर्णन क्या जड शब्द

कर सकते है ? कभी नही कर सकते। जड शब्द के द्वारा पदार्थो का परिज्ञान होना असम्भव है। आत्मा के ज्ञान के प्रकाश और प्रसार मे शब्द सहायक मात्र है। वे शब्द आत्मा के भावो से प्रेरित होकर ही निकलते है। तभी तीनो लोको का और जीवो के भावो का ज्ञान हो सकता है। अरहत भासयन्थ गणहरदेवेहिं-गथिये सम्म,, अर्हंतदेवने कहा गणधरदेवने शास्त्रो मे गूथा। ऐसा श्रुत है। तथा-स्वर्गापवर्गगम मार्ग विमार्गणेष्ट सद्धर्मतत्व कथनैकपटुस्त्रिलोक्या दिव्य ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ सर्व भाषा स्वभाव परिणाम गुणै प्रयोज्य । अर्थात् भगवान की दिव्य ध्वनि स्वर्ग मोक्ष, सद्धर्म, तत्व का स्वरूप वताती है यह जड शब्दो का कार्य नही हो सकता है।

२ जिन वाणी पर स्त्री के समान त्याज्य है। ऐसा निश्चय एकान्त वादी कहते है।

यह कहना धर्म का लोपक और स्ववचन वाधित है जैसे कोई अज्ञानी बालक यह कहे कि मेरी माता बाझ है। तो यह बालक कैसे उसके उदर से आया है ?

इसी प्रकार जिनवाणी त्याज्य है। ऐसा कहना स्ववचन वाधित है। क्यो कि समयसार आदि जिनवाणी के पढने सुनने से ही अनेक दिगम्बर जैन हुए है। और जिनवाणी के स्वाध्याय से ही मिथ्याज्ञान का विनाश और सम्यज्ञान की प्राप्ति होती है। तव जिनवाणी को त्याज्य कहकर उसका घोर तिरस्कार करना है। और मनुष्यो को सम्यज्ञान एव तत्व वोध से विमुख करने का दुष्प्रयास है। समयसार के स्वाध्याय से दिगम्बर जैन वनकर भी जो जिनवाणी के विरुद्ध प्रचार किया जाता है। वह पुरातन मान्यता के सस्कारो का ही फल है। तथा सिद्धान्त ग्रन्थ के तत्वो को नही समझने का ही परिणाम है। अथवा तीव्र मिथ्यात्व कर्म

का ही परिणाम है। फिर तीन बार समयसार का वाचन क्यो किया जाता है ?

३ कर्मों का आत्मा से कोई सम्बन्ध नही है। किन्तु आत्मा स्वय अपनी योग्यता से नरक स्वर्ग आदि चारो गतियो मे भ्रमण करता है।

यह मान्यता भी स्वतत्र विचारो से की जाती है। यदि आत्मा की स्वय की योग्यता से चारो गतियो मे भ्रमण एव ससारी सुख दु ख होता है। तो सब जीवो मे समानता क्यो नही? कोई जीव नरक कोई स्वर्ग आदि मे किस कारण से जाता है। आत्मा की स्वय की योग्यता तो सिद्धो मे भी है। वे ससार मे फिर क्यो नही आते हैं। आत्मा की वह योग्यता कौनसी है ? और उसका क्या लक्षण है ? और क्या कार्य है ? और वह योग्यता किस गुण की पर्याय है ? यह भी बताना चाहिये। दि० जैन धर्म मे सभी शास्त्रो मे तत्वार्थ सूत्र, सर्वार्थ सिद्धि राजवार्तिक, श्लोक वार्तिक, गोम्मट सार, धवला जय धवला, महा धवला समयसार, प्रवचन सार, परमात्म प्रकाश आदि सभी शास्त्रो मे कर्मों का आश्रव और बन्ध मन वचन काय योग और कषायो से होता है। यह बहुत विस्तार से बताया गया है। फिर ससारी आत्मा मे कर्मों का सम्बन्ध नही बताना समस्त शास्त्रो का खण्डन करना है। सिद्धान्त का लोप करना है। इसे कुमति के सिवा और क्या कहा जाय।

४ छ ढाला की दूसरी ढाल मे कहा गया है कि—

"कपिलादि रचितश्रुत को अभ्यास। सो है कुबोध बहु दैन त्रास॥"

इसका अर्थ तो स्पष्ट है कि साख्य आदि द्वारा रचे गये श्रुत का अभ्यास कुमति ज्ञान है। और दु ख देने वाला है।

इस अर्थ को बदलकर स्वतन्त्र मान्यता वालो ने यह अर्थ किया है कि जिन शास्त्रो मे वीतराग भाव जीव दया मुनि दान

आदि का वर्णन है वे शास्त्र कुशास्त्र है। उन्हे नही पढना चाहिये इसी प्रकार तत्वार्थ सूत्र समयसार आदि ग्रन्थो के आशय को बदला गया है। पूर्व आचार्यो द्वारा रचे गये शास्त्रो के कथन को अपनी स्वतन्त्र मान्यता से उन्ही शास्त्रो की स्वरचित टीकाओ मे उन शास्त्रो के आशय को बदल देना यह दिगम्बर जैन धर्म मे पूरी विकृति लाना है और सबसे बडा भारी अक्षम्य अपराध है। इसका फल परम्परा तक दुर्गति का दु ख भाजन बनना है यह अनधिकृत अत्यन्त निंद्य प्रयास है।

५ शुभ राग जन्य पुण्य भी भिष्टा के समान त्याज्य है और वह शुभ पुण्य भी ससार बढाने वाला है।

निश्चय एकान्तवादियो का ऐसा कहना और इस मिथ्या मान्यता का प्रचार करना शास्त्र विरुद्ध और धर्म का मूल विघातक है। क्यो विघातक है ? इसका समाधान समझिये—

कर्मो मे तीर्थंकर प्रकृति एक सर्वोत्कृष्ट परम प्रशस्त प्रकृति है तीन कल्याणक तो तीर्थंकर प्रकृति के साथ बधने वाले शुभ पुण्य कर्मो का फल है। तीर्थंकर प्रगति का उदय तो तेरहवे गुण स्थान मे होता हैं। उसका तो एकमात्र यही फल है कि समवसरण रचना होने पर तीर्थंकर केवली की दिव्य ध्वनि खिरती है। उसे सुनकर अनेक जीव सम्यग्दृष्टि हो जाते है। अनेक अणुव्रती महाव्रती बनकर रत्नत्रय प्राप्त कर मोक्ष जाते है। यह मोक्षमार्ग चालू होने का मूल एव मुख्य कारण तीर्थंकर प्रगति का उदय है। यह तीर्थंकर प्रकृति सर्वोपरि महान पुण्य है। ऐसी अवस्था मे शुभ पुण्य को भी भिष्टा के समान त्याज्य एव ससार वर्धक कहना महान् अपराध है।

ऊपर हम लिख चुके है कि सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का ही कारण है। वह ससार का कारण नही है। आचार्य देवसेन का प्रमाण भी दे चुके है। समयसार शास्त्र मे भगवत्कु दकु द स्वामी ने भी

प्रशस्न पुण्य को मोक्ष का साधक बताया है। सभी आचार्यो ने ऐसा ही कहा है-

देवपूजा मुनि दान आदि का निषेध

शुभ पुण्य को भिष्टा के समान त्याज्य और ससार का कारण बताने से देव पूजा मुनिदान तीर्थ यात्रा पचकल्याणक प्रतिष्ठा सिद्ध चक्र विधान, महामस्तकाभिषेक आदि सभी धार्मिक क्रियाओ का निषेध करना है। क्योकि इन क्रियाओ से शुभ पुण्य का सचय होता है और कर्मो की निर्जरा भी होती है। मुनियो की षडावश्यक पच समिनि आदि क्रियाओ से भी सातिशय पुण्य एव कर्मो की निर्जरा होती है। ऐसे धर्म पुण्य को भिष्ठा के समान त्याज्य बताना इन धर्म कार्यो का विरोध करना है। आचार्य देवसेन स्वामी की गाथा पढिये-

लद्ध जह चरम तणु चिरकय पुण्णेण सिज्झए णियमा
पाइव केवलाणाण जह खाइय सजम सुध्द
तह्या सम्माइट्ठी पुण्ण मोक्खस्स कारण हवइ
इह णाऊण गिहत्थो पुण्ण चायरउ जत्तेण

(भाव सग्रह)

अर्थ – यदि यह जीव अपने चिरकाल से सचित किये हुए पुण्य के उदय से चरम शरीरी हुआ तो वह जीव यथाख्यात शुद्ध चारित्र को धारण कर केवल ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। अत सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का कारण है। ऐसा समझकर गृहस्थ को प्रयत्न पूर्वक पुण्य का उपार्जन करते रहना चाहिये।

यही बात भगवत्कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार मे लिखी है। ऐसे स्पष्ट आचार्यो के वचनो के विरुद्ध पुण्य को भिष्टा के समान त्याज्य कहना कितनी निंद्य बात है और दि० जैन धर्म के सर्वथा विपरीत है यह निश्चय एकातवादियो का प्रचार समाज के लिए पूरा अहितकारी है।

आचार्य विद्यानन्दि (पात्र केसरी) ने लिखा है—

सर्वातिशायि पुण्य तत् त्रैलोक्याधिपतित्व कृत्

अर्थात् सबसे अधिक अतिशय वाला पुण्य तीन लोक का अधिपति तीर्थंकर बना देता है ।

वास्तव मे शुभ पुण्य सम्यग्दृष्टि का पुण्य देवेन्द्र पद, चक्रवती पद तीर्थंकर पर देने वाला है और अन्त मे सिद्ध पद का साधक बन जाता है । आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरड श्रावकचार मे यही कहा है । जिन पूजा या जिनेन्द्र स्तवन, बिना तीव्र भक्ति के नही हो सकता । भक्ति के बिना राग नही होती । मुनि दान मे भी धर्मानुराग और श्रद्धा भक्ति है । भगवान कुन्दकुन्द आदि आचार्यो ने इस धर्म राग को परम्परा मोक्ष का साधक बताया है । जो निश्चय एकान्तवादी इस धर्मराग को त्याज्य और ससार वर्धक कहते है । वे जिन पूजा आदि धर्म कार्यो का लोप करना चाहते है । जिन पूजा आदि धार्मिक क्रियाओ को वे धर्म भी नही मानते हैं । वे यह कहते है कि ये जिन पूजा आदि धर्म नही है क्योकि इनमे राग भाव होता है यदि वे क्रियायें धर्म नही है तो वीतराग महर्षि क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी षडावश्यक मूल गुणो मे जिन वन्दना स्तवन आदि क्यो करते हैं ? क्या वे ससार चाहते हैं ? णमोकार मन्त्र का जपन क्यो करते है ? शुभ पुण्य को आचार्यो ने परम्परा मोक्ष का साधक बताया है । अन्त मे तो पुण्य स्वय छूट जाता है। क्षपक श्रेणी मे पहुँचने पर सभी कर्म प्रकृतिया विशुद्धि आत्मा से छूट जाती है। परन्तु क्षपक श्रेणी के धारण करने से पहले, मुनि पद धारण करने, सर्वार्थ सिद्धि आदि मे जाने आदि मे पुण्य ही सहायक है। भगवान कुन्द कुन्द स्वामी ने प्रवचन सार मे कहा है कि "पुण्ण फला अरिहन्ता" अर्थात् पुण्य के फल से अर्हत पद प्राप्त होता है ।

बिना शुभ पुण्य सम्पादन किये मोक्ष मार्ग मे कोई लग भी तो नही सकता है । आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

दाण पूजा मुक्खो सावयधम्मेण सावया तेण विना
(रयणसार)

अर्थ –मुनि दान और देव पूजा ये श्रावक का मुख्य धर्म है। और भी कहा है —

जिण पूजा मुनि दान करेइ जो देह सत्ति रुवेण,
सम्माइ ट्ठी सावय धम्मी सो होई मोक्ख मग्गरओ।
(रयणसार)

अर्थ —अपने शरीर की शक्ति के अनुसार जो जिन पूजा और मुनि दान करता है वह सम्यग्दृष्टि श्रावण मोक्ष मार्ग मे लगा हुआ है। इतना स्पष्ट प्रमाण मिलने पर भी एकाती लोग भगवत कुन्दकुन्द स्वामी के वचनो को भी नही मानते हैं। यह भी समझना चाहिये कि जिस पुण्य को ये निश्चयाभासी हेय और त्याज्य कहते हैं वह पुण्य जिन पूजा और मुनिदान, तीर्थ यात्रा, पच कल्याणक महोत्व व्रत उपवास आदि का ही तो फल है। इसका तात्पर्य यही निकलता है कि जिन पूजा आदि धर्म कार्य ही त्याज्य और हेय है वे धर्म कार्य ही ससार के कारण ठहरते है। इसलिये निश्चयाभासी लोग धर्म का और जिन वाणी का ही खडन और लोप करना चाहते हैं।

जीव दया भी धर्म नहीं है हिंसा है

निश्चय एकातवादी यह भी बताते हैं कि जीवो पर दया भाव रखना यह तो राग है और हिंसा है। इस जीव दया को जो धर्म मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि है। इससे भी वढ कर वे यहा तक कहते हैं कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है। अत जीव के मारने मे कोई पाप या हिसा नही है।

एसा मानना तो नितात निंद्य और शास्त्र विपरीत है। दिगम्बर जैन धर्म मे जीव दया ही प्रधान है। श्रावक धर्म और मुनि धर्म जीवो की दया पर निर्भर है। जहा जीव दया नही है वहा हिसा

है। जीव दया को आचार्यो ने आत्मा का विशुद्ध गुण बताया है। अभय दान जीव दया का ही परिणाम है। भगवान के अतिशयो मे कहा गया है कि "नहि अदया उपसर्ग नहि" अर्थात् भगवान के अदया भाव नही होता है। कोई उपसर्ग भी नही होता है। जहा जीव दया नही है वहा अष्ट मूल गुण श्रावक की ग्यारह प्रतिनाय और महाव्रत भी नही पाले जा सकते है। क्यो कि उन सब क्रियाओ मे जीव दया और जीव रक्षा ही प्रधान है। प्रशस्त राग भी ससार का ही कारण है ऐसा मानना भी भूल भरा है। जिस समय तीर्थकर गृहस्थ होते है। निमित्त कारण पाकर उन्हे वैराग्य उत्कट होता है। तभी वे वन को चले जाते है, वह वैराग्य भी प्रशस्त राग है उन्हे ससार असार दीखता है। इच्छा पूर्वक उसे छोडकर वे मोक्ष पाने की तीव्र अभिलाषा करते है। अभिलापा राग है। वह राग वैराग्य और वीतरागता का ही कारण है वह राग ससार वर्धक नही किन्तु ससार छुडाने वाला है। जैसे धोवी कपडे से मैल मिट्टी दूर करने के लिये उस कपडे मे पहले से ही रेता की मिट्टी लपेट देता है। वह रेता कपडे के मैल मिट्टी को दूर कर साफ स्वच्छ बना देती है। इसी प्रकार भगवान का वैराग्य प्राप्ति का राग उन्हे पूर्ण वीतराग बना देता है। यदि सभी राग ससार वर्धक हो तो राग तो दसवे गुण स्थान मे क्षपक श्रेणी वालो को भी हैं। वहाँ सूक्ष्म लोभ का उदय है। परन्तु वे अन्तर्मुहूर्त मात्र समय मे केवली सर्वज्ञ बन जाते है। इसलिये प्रशस्त राग को भी ससार वर्धक कहना सर्वथा बाधित है।

भाव शुद्धि मे द्रव्य शुद्धि उपयोगी नही है

८ निश्चय एकान्ती भावो की शुद्धि मे द्रव्य शुद्धि को आवश्यक नही मानते है। परन्तु यह भी शास्त्र विरूद्ध और प्रत्यक्ष बाधित है। शास्त्रो मे कहा गया है कि—

"द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानु रूप, भावस्य शुद्धि मधिकामधि गन्तु काम ।

अर्थात् पहले द्रव्य शुद्धि करना आवश्यक है। उसके होने पर ही भाव शुद्धि हो सकती है। अन्यथा नही ? मदिरा मास का भक्षण करते हुए किसी को सम्यग्दर्शन प्रगट हो सकता है क्या ? अणुव्रत, महाव्रत, धारण किये विना कोई एक देश एव सर्व देश सयमी बन सकता है क्या ? शौच घर से आकर बिना स्नान किये और बिना शुद्ध वस्त्र पहिने कोई जिनाभिषेक और मुनि दान करने का अधिकारी बन सकता है क्या ? एक अस्पृश्य के घडे मे भरा हुआ गगा जल भी पवित्र माना जा सकता है क्या ? रजस्वला अवस्था मे कोई धर्मात्मा स्त्री भी शुद्ध मानी जा सकती है क्या ? निर्ग्रन्थ लिंग (मुनिपद) धारण किये विना कोई कभी मोक्ष प्राप्त कर सकता है क्या ? मुनिपद धारण करने के वाद ही सातवे छठे गुण स्थान के विशुद्ध भाव हो सकते है। इन सभी हेतुओ से स्पष्ट है कि पहले द्रव्य शुद्धि अर्थात् शरीर वस्त्र भोजन आदि की शुद्ध होने पर ही भाव शुद्धि (भावो मे निर्मलता) आ सकती है।

भाव को मुख्यता देने वाले कहते है कि सम्मेद शिखर को जाने के पहले भाव होते है। तभी तो वहा जाते हैं। भाव हुए विना शिखर जी कैसे जा सकते हैं। परन्तु यह भी भूल भरी वात है। शिखरजी जाने के भाव (विचार) होना केवल भावना मात्र है। अर्थात् वह इच्छा है। भाव शुद्धि तो तभी होगी जव शिखरजी के पवित्र पर्वत पर पहुँचकर तीर्थंकरो के चरणो का दर्शन करेंगे। तभी भावो मे निर्मलता आती है। यदि वहाँ के दर्शन किये विना ही भावो मे निर्मलता आ जाय तो वहा जाने की आवश्यकता ही क्या है ? इसलिये मुनि और त्यागी विवेकी जन अपने भावो को निर्मल बनाने के लिये अन्न, जल, वस्त्र आदि की शुद्धता का पूरा ध्यान रखते हैं। जैसा "खावे अन्न वैसा होवे मन जैसा पीवे पानी वैसी वोले वाणी" यह नीति वास्तविक है।

निश्चय पहले व्यवहार पीछे

एकातवादी यह भी कहते है कि निश्चय पहले होता है व्यवहार पीछे होता है। परन्तु यह भी भूल भरी वात है। उनके कहने के अनुसार तो पहले मोक्ष होगी पीछे मुनिपद धारण किया जायगा। पहले क्षपक श्रेणी होगी पीछे महाव्रत धारण किये जायेगे। यह सब विपरीत मान्यता है। यह समझने की भूल है। वास्तव मे पहले निश्चय नही हो सकता है। पहले व्यवहार धम धारण किया जाता है तभी निश्चय की प्राप्ति हो सकती है। यदि ऐसा नही है तो क्या मुनि पद धारण किये बिना ही मोक्ष हो सकती है ? यह समझ की भूल है। समझने की बात यह है कि पहले मोक्ष का (निश्चय) का स्वरूप जानना आवश्यक है बिना उसके समझे किस लक्ष्य (उद्देश्य) से व्यवहार का समीचीन साधन किया जायगा। अत निश्चय पहले नही होता है किन्तु निश्चय का ज्ञान पहिले किया जाता है। व्यवहार धर्म पालन करने के पहिले निश्चय का ज्ञान किया जाता है क्योकि विना मोक्ष का स्वरूप समझे उसकी प्राप्ति का उपाय करना ही निष्फल है। मोक्ष की प्राप्ति करना उद्देश्य है उसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये उपाय भूत व्यवहार धर्म धारण किया जाता है। इसलिये पहले निश्चय नही होता है किन्तु निश्चय का ज्ञान पहले किया जाता है।

६ वाह्य सभी क्रियाये जड शरीर की परणति है। आत्मा से उनका कोई सम्बन्ध नही है। अभक्ष्य भक्षण, हिंसा, झूठ आदि सभी क्रियाओ से आत्मा का कोई सम्बन्ध नही है वे जड शरीर की परिणति है। इसी प्रकार जिन पूजन आदि क्रियाये भी जड शरीर की परिणति हैं आत्मा की नही है। यह मान्यता कितनी अज्ञानपूर्ण मिथ्या है। इसे साधारण ज्ञानी भी समझता है। बुरे कर्मों से दुर्गति होती है। और अच्छे कर्मो से अच्छी गति होती है। यह दुर्गति और सुगति जीवो को ही होती है। दुख सुख जीव ही भोगता है। शरीर तो जड है न

तो वह अच्छा बुरा कर्म करने मे समर्थ है और न उसे सुख या दुख होता है। सभी कार्य जीव की इच्छा से ही होते हैं। जीव के विकारी भावो से ही खोटे कार्य होते हैं। जिन पूजन, मुनि दान आदि धार्मिक कार्य भी मनुष्य के धर्मानुराग से होते हैं। शरीर तो आत्मा की इच्छा से होने वाले कार्यों मे साधकमात्र है। शरीर मे क्रिया आत्मा की प्रेरणा से होती है। यदि इन्हे जड शरीर की परिणति मानलिया जाय तो फिर महाव्रत दश धर्म निर्ग्रन्थ लिंग आदि परम्परा मोक्ष के कारण नही ठहरेंगे और बुरे कार्य दुर्गति के कारण भी नही ठहरेंगे। जिस प्रकार चार्वाक पर लोक नही मानता है इसलिये वह किसी प्रकार के त्याग का विधान नही करता है इन्द्रिय विषयो के सेवन का ही पोषण और समर्थन करता है। इसी प्रकार अधर्म सेवन हिंसादि क्रियाओ और जिन पूजन आदि श्रावक की धर्म क्रियाओ को जड शरीर की क्रिया मानना पाप पुण्य और उसके फल का लोप करना है। एक वृद्ध पुरुष लाठी के सहारे से चलता है लाठी भी हिल रही है। वृद्ध पुरुष को देखकर यदि कोई बालक यह कहता है कि लाठी चल रही है वृद्ध नही चल रहा है तो उसकी अज्ञानता ही कही जायगी। इसी प्रकार आत्मा इच्छा पूर्वक धर्म या अधर्म कार्यो को कर रहा है तो वे कार्य जड शरीर के नही कहे जासकते है किन्तु आत्मा के हैं। शरीर की क्रिया तो जीव के आधीन है। अत पाप पुण्य एव वीतराग की उत्पादक जीव की क्रियाओ को जड शरीर की क्रिया कहना हास्यास्पद है और दि० जैन सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत है। सभी क्रियाओ का सम्बन्ध जीव के भावो से है तभी तो विकार अविकार एव अशुद्धता शुद्धता जीव के भाव माने जाते है।

उपादान मे निमित्त कुछ नहीं करता

१० उपादान स्वय करता है। निमित्त कारण उसमे किसी प्रकार की कोई सहायता नही करता है वह अकिंचित्कर है। ऐसी मान्यता भी शास्त्र विरुद्ध, प्रत्यक्ष विरुद्ध और अनुभव विरुद्ध है।

उपादान निमित्त के सम्बन्ध मे तत्वार्थ सूत्र सर्वार्थ सिद्धि राजवार्तिक, श्लोक वार्तिक, प्रमेय कमल मार्तण्ड, अष्ट सहस्त्री आदि सभी शास्त्रो मे स्पष्ट कथन है। कि बिना निमित्त के उपादान अकेला स्वय कुछ नही कर सकता है और विना उपादान के निमित्त भी कुछ नही कर सकता है। दोनो मे परस्पर कार्य कारण भाव निमित्त नैमित्तिक भाव है। इस विषय पर यदि विशेष लिखा जाय तो सौ पृष्ठो मे भी यह प्रकरण पूरा नही होगा।

इस विषय मे लौकिक और शास्त्रीय उदाहरण कहा तक दिये जाये ? प्रत्यक्ष बात मे विरोध को कोई स्थान नही है। दो चार दृष्टात देकर इस प्रकरण को पूरा कर दिया जायगा।

निमित्त की सहायता प्रत्यक्ष व्यवहार से सुसिद्ध है।

मनुष्य यदि माह दो माह कुछ भी नही खावे और पानी भी नही पीवे निर्जल निराहार रहे तो शरीर मे जीव रह सकता है क्या ? कभी नही। ससारी जीव के प्राणो का आधार खान पान है। इस निमित्त कारण का प्रत्यक्ष सिद्ध रात दिन का अनुभव सभी करते हैं।

सन्निपात क्षय रोग ज्वर आदि रोग औषधि सेवन से दूर होते है। यह भी प्रत्यक्ष सिद्ध है। अन्यथा वैद्य डाक्टरो का प्रयत्न और उपचार विधि सदा से शास्त्रो मे क्यो वताई गई है ? किसी का प्रवल रोग भले ही दूर न हो वहा कर्मोदय की तीव्रता एव पुण्य की क्षीणता इस अन्तरग कारण और वाहर मे प्रयत्नो की कमी या उचित निदान या उचित प्रयोग उचित औषधिया नही मिलना यह वाधक कारण है। चिकित्सा शास्त्रो मे वनस्पतिया (जडी वूटी) मे भिन्न भिन्न रोगो को दूर करने के गुण वताये गये हैं। चन्द्रोदय आदि रसायनो के सेवन से सन्निपातादि दूर होते है। दूध, घी, फल आदि खाने से शरीर मे शक्ति आती है और मनुष्य कार्य करने मे प्रयत्न शील वनता है। मदिरा पीने से मनुष्य वेहोश एव विक्षिप्त हो जाता है बिजली का

करट लगने से मर जाता है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को नदी या समुद्र मे धक्का देकर गिराकर एव शस्त्र से मार देता है। ये सब निमित्त से या पर द्रव्य के द्वारा होने वाले कार्य हैं। एक द्रव्य दूसरा द्रव्य नही बन सकता है। एक द्रव्य का गुण दूसरे द्रव्य मे नही जा सकता है। यह सिद्धान्त है। परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य मे बिकार अथवा सुख दुख तो पहुचाता है। यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है।

ठण्ड गर्मी मनुष्य जीवात्मा को लगते हैं। और रूई, ऊन के वस्त्रो और पखा आदि से दूर होते हैं। उससे मनुष्य को सुख शान्ति का अनुभव होता है। यह सब कार्य निमित्त की वलवत्ता को सिद्ध करते हैं।

मिट्टी पीतल आदि के वर्तन सोने चादी के गहने वस्त्र मकान आदि का निर्माण मनुष्य के बिना प्रयत्न के स्वय नही हो सकता है। रोकड खाता ऐसा निमित्त है कि करोडो रुपयो का लेनदेन उसके द्वारा मनुष्य करता है बिना इसके उतनी स्मृति प्रति दिन के लैन दैन मे मनुष्य रखने मे असमर्थ है।

पत्र या तार जड हैं। परदेश से पत्र या तार मे समाचार आते हैं कि आज एक लाख रुपये की हानि हो गई तो मनुष्य और उसके परिवार को दु ख होता है। कल यह समाचार मिलता है कि आज दो लाख का मुनाफा हो गया तो घर भर मे हर्ष एव आनन्द हो जाता है यह मनुष्य के कार्यो मे और उसके भावो मे निमित्त कारण की सहायता ही बलवती है। बिजली गिरने से, नदी मे गिरने से, अग्नि मे गिरने से प्रयत्न नही हो सके तो मनुष्य मर जाता है। पानी की वाढ आने से हजारो मनुष्य पशु और मकान बह जाते हैं। यह निमित्त का ही परिणाम है।

माता पिता के सयोग के बिना सन्तान कभी उत्पन्न नही हो सकती है। रजोवीर्य का योग मिलना आवश्यक है। छोटा बालक गुरु

और पुस्तक के निमित्त से शास्त्री और एम० ए० वैज्ञानिक और वैद्य डाक्टर वन जाता है।

विकारी मनुष्य सुन्दर श्रृंगारयुक्त स्त्री को देखने से विकारी एव विशेप रागी वन जाता है।

वर्षात की अधेरी रात्रि मे दीपक एव विजली गैस के प्रकाश के विना अच्छे नेत्र वाला भी पुस्तक नही पढ सकता है। यह क्या निमित्त की सहायता को सिद्ध नही करता है? एक वीतरागी ससार विरक्त साधु के पास बैठने से और उसके धर्मोपदेश सुनने से मनुष्य मे वैराग्य भाव जागृत हो जाते है यह सव निमित्त की महिमा है।

शास्त्राधार के कार्य कारण हेतु हेतुमद्भाव प्रत्यक्ष सिद्ध है। अनुभव से सुसिद्ध है कि जगत मे जितने भी अनन्त द्रव्य है चेतन, अचेतन, मूर्तिक, अमूर्तिक सभी मे प्रतिक्षण परिणमन एव क्रियात्मक व्यजन, पर्याये उपादान निमित्त के सहयोग से ही होती है। जीव की ससारावस्था से लेकर सिद्धावस्था तक प्रत्येक पर्याय निमित्त के सहयोग से ही होती है। इसलिये यह निर्णीत सिद्धान्त है कि प्रत्येक कार्य पचास टका उपादान और पचास टका निमित्त से सिद्ध होता है। अनेक विज्ञ भी यह समझते होगे कि सिद्ध परमेष्ठी तो शरीर और कम सम्बन्ध से रहित परम शुद्ध अमूर्तिक है। उनमे निमित्त क्या हो सकता है? और क्या कर सकता है? इसके समाधान मे उन्हे यह समझ लेना चाहिये कि सिद्ध भगवान भी प्रतिक्षण परिणमन करते है उनके उत्पाद व्यय ध्रौव्य प्रति समय मे होता है। सिद्धो का ज्ञान भूत भविष्यत् वर्तमान तीनो समय की द्रव्य गुणो की पर्याओ को जानता है द्रव्य गुणो मे भी अपनी अपनी व्यञ्जन पर्याये और अर्थ पर्याये प्रति समय वदलती रहती है। इसलिये उन द्रव्य गुणो की वदलती पर्यायो को जानने वाला उनका ज्ञान भी वदलता है जो वर्तमान द्रव्य की पर्याय है वह भूत हो जाती है भविष्यत पर्याय वर्तमान हो जाती है। सिद्धो का सर्वज्ञ ज्ञान भी वदलता रहता है। अन्यथा पदार्थो की

यथार्थता का ज्ञान नही हो सकता है। इसलिये केवली सिद्धो के ज्ञान के बदलने का निमित्त भूत वे अनन्त पदार्थ है।

सिद्ध भगवान लोकाकाश के अन्त मे सूक्ष्म वातवलय तक ही क्यो ठहरे हैं ? जब जीव का ऊर्ध्वगमन स्वभाव है और आकाश अनन्त है तव कर्मो का सर्वथा अभाव हो जाने पर सिद्ध भगवान अलोकाकाश मे क्यो नही चले जाते हैं ? लोक के अन्त मे ही क्यो रुक जाते हैं। इसका समाधान यह है कि लोक के वाहर जाने का निमित्त नही मिलता है। "धर्मास्ति काया भावात" इस शास्त्र प्रमाण के अनुसार जीव के गमन मे धर्म द्रव्य निमित्त है वह लोक तक ही है। अत ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने पर भी सिद्ध परमात्मा सूक्ष्म वातवलय तक रुक जाते है।

तीसरी बात यह और भी निमित्त की वलवत्ता को सिद्ध करती है वह यह है कि जीव असख्यात प्रदेशी है। और लोक भी असख्यात प्रदेश वाला है ? ससारावस्था मे तो कर्म नो कर्म के निमित्त से जीव को शरीर के परिमाण के अनुसार सकोच विस्तार से छोटे वडे शरीर मे रहना पडता है। परन्तु सिद्धो मे तो कर्म नो कर्म और शरीर नही है तो फिर वे शरीर बन्धन से रहित होने से लोकाकाश के बराबर असख्यात प्रदेशो मे क्यो नही फैल जाते है उन्हे कौन रोकता है पुरुषाकार ही क्यो रह जाते है। इसका समाधान यह है कि पुरुष पर्याय के आकार से आत्मा के आकार को वदलने का कोई साधन नही रहा है अत पुरुष पर्याय का निमित्त ही उसी आकार मे सिद्धो को बना चुका है।

काल द्रव्य भी सिद्धो के परिणमन मे निमित्त है आकाश द्रव्य उनके स्थान दान मे सहायक है धर्म द्रव्य गमन मे अधर्म द्रव्य ठहरने मे निमित्त है। ये निमित्त कारण द्रव्यो के लक्षण और उनके स्वभावो से शास्त्र निर्णीत है। यदि ये निमित्त कुछ नही करते हैं तो क्या

सर्वज्ञ वाणी एव शास्त्र अप्रमाण है ? और क्या निमित्त की सहायता से होने वाला प्रत्यक्ष कार्य अप्रमाण है ?

निमित्ति नैमित्तिक सम्वन्ध अनिवार्य है। सूर्यकात मणि मे सूर्य की किरणो के निमित्त से अग्नि उत्पन्न हो जाती है। चन्द्र के निमित्त से चन्द्रकात मणि से जल उत्पन्न हो जाता है। अग्नि के सयोग से पानी गरम हो जाता है। सबसे बढकर प्रत्यक्ष व्यवहार मे आने वाला निमित्त की सहायता का प्रमाण धन है। रुपया के बिना कोई कार्य नही होता है। स्वामी नौकर खान-पान रहन-सहन सभी कार्य धन से ही साध्य है। जब उदासीन निमित्त के बिना कोई कार्य नही हो सकता है तब प्रेरक एव समर्थ निमित्त की बात तो निराली है।

एक मनुष्य का दूसरा मनुष्य धक्का दे देता है तो वह गिर जाता है। रेल गाडी, बैल गाडी, वायुयान आदि निमित्त मनुष्य को देश से देशातर मे पहुँचाने मे सहायक है। सिनेमा, टेलीविजन आदि मनुष्यो को आल्हाद एव आश्चर्य पैदा कर देते है। टेलीफोन या वायरलैस (वेतार) रेडियो से दूर देश के समाचार मिलते हैं। व्यापार चलता है यह कितना बडा कार्य साधक निमित्त है।

धर्म कार्यों मे निमित्त पूर्ण साधक है

जिन पूजन सम्यग्दर्शन की प्राप्ति मे साधक है। शास्त्र श्रवण सम्यज्ञान की प्राप्ति मे साधक है मुनि दर्शन मुनिदान मुनि उपदेश चारित्र की प्राप्ति मे साधक है। देव शास्त्र गुरू के निमित्त मिले बिना धर्म साधन मनुष्य का असम्भव है। जिन मदिरो का निर्माण पचकल्याणक प्रतिष्ठा, स्वाध्यायमदिर धर्म साधन के ही तो निमित्त है। जिन बिंव दर्शन से जातिस्मरण होजाता है।

तपस्वी मुनियो को जब कोई शका होती है या कोई दोष लग जाता है। उसे दूर करने के लिये आहारक शरीर मुनि के मस्तक

से निकलकर जहा कही केवली भगवान विराजे हो वहा वह (आत्म प्रदेश विशिष्ट आहारक शरीर) पहुँचकर केवली भगवान का स्पर्श कर लौट आता है तभी उनकी शका अथवा दोप दूर हो जाता है। यह निमित्त का ही परिणाम है। अनेक गृहस्थ वादलो की क्षण-भगुरता को देखकर मुनि हुए हैं। अत निमित्त कारण के बिना कोई लौकिक या पारलौकिक कार्य नही हो सकता है।

मानस्तम्भ का निमित्त

तीर्थंकर भगवान के समवसरण के बाहर मानस्तम्भ होते है उन्हे देखते ही कुदृष्टि मानियो का मान तुरन्त खडित हो जाता है। जैसे इद्रभूति विद्वान का होगया, इतना ही नही समवसरण मे पहुँच कर उसने भगवान के दर्शन किए तो उसका मिथ्याज्ञान सम्यज्ञान रूप मे परिणत हो गया, इतना ही नही वह चार ज्ञान का धारी गणधर बन गया यह सब निमित्त कारण का ही प्रभाव है।

मुनिपद एव उत्तम सहनन

वज्र वृषभ नाराच इस उत्तम सहनन के बिना कोई जीव सातवें नरक नही जा सकता है और इसी उत्तम सहनन और मुनिपद धारण किए बिना कोई मोक्ष नही जा सकता है।

भावो की विशुद्धि एव वैराग्यभाव कितना ही बढ जाय परन्तु नग्न दिगम्बर मुनि पद धारण करने के पहिले तीर्थंकर तक पचम गुण स्थान मे ही रहते हैं। मुनि पद धारण करने के पीछे ही सातवे एव छठे गुण स्थान को वे प्राप्त करते हैं। यह निमित्त कारण की अनिवार्यता को सिद्ध करने वाली बात है।

तीर्थंकर प्रकृति का वध केवली भगवान अथवा श्रुत केवली के चरण सानिध्य मे ही होता है अन्यत्र इतनी विशुद्धि नही हो सकती है जैसा कि गोम्मटसार मे कहा है—

तित्थयरवध पारभयाणरा केवलि दु गते-अन्यत्र ऐताहक विशुद्धय सभवात ।

इतनी विशुद्धि अन्यत्र नही हो सकती है। इसी प्रकार क्षायिक सम्यग्दर्शन और परिहार विशुद्ध चारित्र भी केवली श्रुत केवली के पाद मूल मे ही होता है ।

अनादि मिथ्या दृष्टि जीव को विना गुरु की देशनालब्धि (उपदेश) प्राप्त किये सम्यग्दर्शन नही हो सकता है ये सब निमित्त के द्वारा ही उपादान की सिद्धि के कार्य है ।

कहाँ तक लिखा जाय प्रथमानुयोग और चरणानुयोग शास्त्रो को बाचने से यह भले प्रकार सिद्ध हो जाता है कि उपादान जीवात्मा, निमित्त कारण की सहायता से ही अपनी उन्नति या अवनति कर सकता है अन्यथा सर्वथा असमर्थ है । "परस्परोप ग्रहो जीवानाम्" जीवो मे एक दूसरे का उपकार होता है माता पुत्र के पालन करने मे कितना कष्ट उठाती है ? पुत्र माता पिता की सेवा करता है । शास्त्रो के विरुद्ध प्रचार करना कहा तक मिथ्या है ? प्रत्यक्ष अनुभव के विरुद्ध है । दु ख और सासारिक सुख की पराकाष्ठा नरक और स्वर्ग मे ही होती है यह क्षेत्र निमित्त का ही फल है ।

उदाहरण

दो चार उदाहरण दिये जाते है । तीर्थंकर आदिनाथ को नीलाजना का नृत्य एव उसका विलय (आयु समाप्ति) वैराग्य का कारण बना । नेमिनाथ तीर्थंकर को पशुओ की पुकार वैराग्य का निमित्त वना । भरत चक्रवर्ती का अभिमान उनके भाई वाहुवलि और ९९ अन्य भाइयो को दीक्षा लने का निमित्त वना । वज्र नाभि चक्रवर्ती को क्षेमकर मुनिराज का उनके उद्यान मे आना और उपदेश देना वैराग्य एव मोक्ष जाने का निमित्त मिला । सती सीता का हरण युद्ध एव आर्यिका बनने का निमित्त बना । युवराज देशभूषण

कुल भूषण को अपनी सहोदरी भगिनी वैराग्य एव मोक्ष प्राप्ति का निमित्त बनी । जब दौनो राजकुमार १२ वर्ष पीछे गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त कर राजमहल के दरवाजे पर आये तब एक देवागना जैसी अत्यन्त सुन्दरी राजकन्या ने उन दौनो राजकुमारो की आरती की । उसे देखकर दौनो कुमार उस कन्या पर मुग्ध हो गये और उसके साथ विवाह करने का सकल्प दौनो ने कर लिया जब विरद बखाना गया कि दौनो भाइयो की भगिनी (बहन) उनकी आरती कर रही है यह सुनकर देशभूषण, कुलभूषण दौनो अपने दुर्भावो पर पश्चाताप करते हुए जगल मे चले गये और दीक्षा लेकर मोक्ष गये । यह निमित्त की बलवत्ता का प्रमाण है । कुछ अज्ञान बालको की छेड़छाड़ द्वीपायन मुनि को क्रोध और द्वारिका भस्म होने का निमित्त बना । देवो द्वारा रामचन्द्र लक्ष्मण की मोह की परीक्षा करना ही लक्ष्मण की मृत्यु का कारण बना । भोगासक्त सुकुमाल को मुनिराज की वैराग्य भावना ही दीक्षा लेने एव सर्वार्थ सिद्धि जाने का निमित्त मिला । राजा श्रेणिक के पुत्र वारिषेण मुनिराज ने अपने गृहस्थ जीवन के मित्र पुष्प डाल को मुनि दीक्षा देदी परन्तु उसका मोह नही हटा । अपनी पत्नी से मिलने की तीव्र इच्छा उसकी हो गई आहार लेने के निमित्त से वह अपने घर जाने को तैयार हुआ । परन्तु मुनिराज वारिषेण को मालूम होने पर वे उसे अपने घर ले गये अपनी माता चेलना महाराणी से कहकर अपनी सभी स्त्रियो को बुलाया जो देवागना जैसी महासुन्दरी थी पुष्पडाल से उन्होने कहा कि ये मेरी पत्नी है । इस रहस्य को समझकर वह लज्जित हुआ फिर वह ससार से विरक्त हो गया यह निमित्त का ही प्रभाव है । सुकौशल राजकुमार को अपनी माता ही दीक्षा लेने का निमित्त बनी । भगवान पार्श्वनाथ का वचन ही नाग नागनी को धरणेन्द्र पद्मावती हो जाने का निमित्त मिला । कुत्ता को जीवधर द्वारा णमोकार मन्त्र देव पद पाने का निमित्त मिला । सिंह पर्याय मे चारण ऋद्धि धारियो का सिंह को

सबोधन महावीर भगवान बनने मे निमित्त बना।

कथा ग्रन्थो के स्वाध्याय से यह भली भाति मालूम हो जाता है कि कोई भी आत्मा का हित अहित बिना निमित्त कारण के मिले नही हो सकता है।

इसी प्रकार नीचे से ऊपर तक चारित्र का पालन भी निमित्त कारणो की सम्हाल से ही हो सकता है। व्यापार आदि मे अणुव्रतो की सम्हाल, जीव दया के लिये मुनियो की समिति आदि का पालन, शुद्ध अन्न शुद्ध जल आदि से मन की शुद्धि केश लु चन उपवास आदि तपश्चरण द्रव्य क्षेत्र काल आदि निमित्त आत्म शुद्धि के कारण है। वाह्य चरित्र पालन के बिना अतरग चारित्र विशुद्धि नही हो सकती है यह अनिवार्य नियम है। चरणानुयोगि शास्त्रो के स्वाध्याय से आत्म शुद्धि के लिये वाह्य निमित्तो की सम्हाल परमावश्यक है इस बात का परिज्ञान होता है। द्रव्यानुयोग शास्त्रो के अध्ययन से द्रव्य गुण पर्यायो के परिणमन एव उत्पादव्यय ध्रौव्य उपादान निमित्त दोनो के सहयोग से होता है इसका पूरा स्पष्टीकरण हो जाता है। लोक रचना भी उपादान निमित्तो से खचित है। घनौदधिघनवात तनुवात आदि आधार आधेय निमित्त उपादान से ही हो रहा है यह करणानुयोग शास्त्रो से जाना जाता है।

अनतवार मुनिपद धारण किया फिर भी मोक्ष नही

निश्चय एकातवादी छहढाला का सहारा लेकर यह भी कहते हैं कि भावो की निर्मलता मे वाह्य निमित्त कार्यकारी नही है। यदि वाह्य निमित्त आवश्यक हो तो मुनि पद अनतवार धारण करने पर एव पीछी कमडल के ढेर लग जाने पर भी मोक्ष नही होती है ग्रैवेयिक तक ही जीव चक्कर लगाता फिरता है। इसलिये आत्मा की विशुद्धि और मोक्ष प्राप्ति के लिये वाह्य मुनिपद आदि निमित्त कुछ नही कर सकते है ऐसा निश्चय एकात वादियो का कहना है।

परन्तु यह भी समझ की भूल भरी वात है छहढाला का कथन मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से हैं और अभव्य जीव की अपेक्षा से है। जव तक मिथ्यात्व है तव तक जीव मुनिपद भी धारण करता रहे तो भी उसे मोक्ष की प्राप्ति कभी नही हो सकती है। क्योकि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की प्राप्ति का मूल कारण है। इसलिए मिथ्यादृष्टि का मुनिपद धारण करना भी मोक्ष साधक नही हो सकता है सिद्धान्त तो यहा तक बताता है कि सम्यग्दर्शन प्राप्त होजाने पर भी यदि चारित्र की समग्रता नही है अथवा सम्यग्दर्शन छूट जाता है तो अर्ध पुद्गल परावर्तन काल तक उस समय जीव को मोक्ष नहीं हो पाती है। परन्तु सम्यग्दृष्टि उतने काल तक (अधिक से अधिक) नियम से मोक्ष चला जाता है।

फिर अभव्य जीव तो सदैव मिथ्यादृष्टि (पहले मिथ्यात्व गुण स्थान मे ही) रहता है। वह मुनि पद भी धारण कर ले तो भी उसका मिथ्यात्व नही छूट सकता है उसी अभिप्राय से छहढाला कर्ता प० दौलतरामजी ने अनतवार मुनिपद का उल्लेख कर तीव्र एव अनाद्यनत मिथ्वात्म कर्म का रहस्य बताया है।

न्याय सिद्धान्त की जानकारी के बिना भूल

यह भी न्याय शास्त्र सिद्धान्त से समझ लेना चाहिए कि केवल निमित्त ही सब कुछ करता हो सो भी बात नही है। किन्तु उपादान की योग्यता और पात्रता भी आवश्यक है। दोनो की योग्यता एव पात्रता अथवा दोनो की सामर्थ्य के विना कोई कार्य नही हो सकता है। निमित्त समर्थ भी मिल जाय किन्तु उपादान की पात्रता नही हो तो भी कार्य सिद्धि नही होती है। इस सबध मे एक कथा का सार यहा लिख देना उपयोगी है—

चतुर्थकाल मे एक मुनिराज महीनो तक उपवास, तीव्र गर्मी मे तपे हुए पहाडो पर ध्यान, तीव्र ठडे मे नदी तट पर ध्यान आदि

घोर तपश्चरण करते थे। आसपास के लोग यह समझ रहे थे कि इन महाराज को थोडे ही समय मे केवल ज्ञान होने वाला है। वहा के निवासियो के पुण्योदय रूप निमित्त से अनत वीर्य भगवान का समवसरण रचा गया जब सभी लोग वहा जा रहे थे तब मार्ग मे उन घोर तपस्वी साधु महाराज को एक ढाक (पलास) वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए उन लोगो ने देखा। समवसरण मे जाकर उन्होने सर्वज्ञ अनतवीर्य भगवान से प्रश्न किया उन मुनि को केवल ज्ञान कब होगा भगवान की वाणी खिरी कि जिस वृक्ष के नीचे वे ध्यान कर रहे है उस वृक्ष पर जितने पत्ते है उतने भव धारण करना अभी बाकी है। जब वे सभी श्रावक समवसरण से लौटकर आये तब उन्होने देखा कि वे एक इमली के वृक्ष के नीचे बैठे हैं। भगवान की वाणी खिरने के पहले ही वे इमली के वृक्ष के नीचे जा बैठे थे। उन श्रावको ने बडे खेद के साथ कहा कि महाराज आपका होनहार अच्छा नही है आप ढाक वृक्ष के नीचे ही बैठे रहते तो आपका क्या बिगडता था इमली के वृक्ष के नीचे आपका होनहार आपको ले आया। तब महाराज ने बिना विषाद किये प्रसन्नता से कहा कि देखो मै तो यह समझता था कि यह ससार समुद्र अपार है। मुझे शायद अनत भवो तक इस ससार मे भटकना पडे परतु सर्वज्ञ की वाणी से निश्चित हो गया कि अब मेरे भव जघन्य सख्यात मात्र रह गये है। इमली के पत्ते अनत नही है। परीता सख्यात युक्ता सख्यात और एक जघन्य असख्यात भी नही है। उत्कृष्ट सख्या तभी नही है साधारण जघन्य है। सो अब मेरा तो ससार का अत अति निकट है। लोगो के चले जाने पर मुनिराज ने निदान बाधा कि मैं मर कर निगोदिया बन जाऊ निदान नीचे का तो झट सफल हो जाता है ऊपर का नही भी हो। वे मरकर निगोदिया जीव हो गये।

इस कथा से लोग आश्चर्य के साथ शका करेंगे कि ऐसे महा

तपस्वी साधु ने निगोद का निदान क्यो किया ? बिना समझे ही ऐसी शकाऐं होती है ।

निगोदिया जीव एक अतर्मुहूर्त समय मे छयासठ हजार एक सौ बत्तीस जन्म और मरण करता है दो इन्द्रिय ते इन्द्रिय पचेन्द्रियो के भव मिलाकर अन्तर्मुहूर्त मे छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस जन्म मरण हो जाते है । जैसा कि गोम्मटसार है-

तिण्णि सया छत्तीसा छावट्ठि सहस्सकाणि मरमाणि ।
अन्तोमुहुत्त काले तावदिया चे खुद्दभवा ॥

इस सर्वज्ञ प्रतिपादित निगोद जीव के भवो को ध्यान मे लेकर ही उन मुनिराज ने निगोद होना शीघ्र मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन समझा । उन्होने इमली के पत्तो बराबर भव अन्यन्त थोडे समय मे पूरे कर डाले वहा से वे सीधे मनुष्य पर्याय मे आगये । और मुनि पद धारण कर उसी भव से मोक्ष चले गये ।

इस कथा को कहने का प्रयोजन यह है कि बिना उपादान मे पूर्ण पात्रता आये निमित्त भी कुछ नही कर सकता है । उन मुनिराज ने निगोद भव को धारण करने के पहले शुक्ल ध्यान के योग्य भावो की विशुद्धि प्राप्त नही की इसलिये मुनि पद का निमित्त पाकर भी वे उस भव से मोक्ष नही जासके । इसलिये जहा उपादान की योग्यता समर्थ एव योग्य है वहाँ सम्यदृष्टी मुनिपद का निमित्त पाकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है । जहा उपादान मे पात्रता नही है वहाँ मुनिपद रूप निमित्त कुछ नही कर सकता है अर्थात उपादान और निमित्त दौनो ही सामर्थ्य कार्य माधक है ।

न्याय सिद्धान्त का रहस्य

न्याय सिद्धान्त ही कार्यकारण भाव, हेतु हेतुमद्भाव, ज्ञेय ज्ञायक भाव व्याप्य व्यापक भाव का परिज्ञान कराता है इसी से जैन तत्वो का स्वरूप का परिज्ञान होता है । प्रकरण मे यहा विपम व्याप्ति है अनादि काल से जितने भी तीर्थङ्कर और सामान्य केवली मोक्ष गये

है। वे मुनिपद धारण करके ही गये हैं अर्थात मुनि पद धारण किये बिना कभी किसी को मोक्ष नही हो सकती है। परन्तु जो मुनि पद धारण करें वे सब मोक्ष जायेंगे ऐसा नियम नही है जिनकी आत्मा रत्नत्रय विशिष्ट है वे ही मुनि पद से मोक्ष प्राप्त कर सकते है। इस व्याप्ति से यह सिद्ध हो जाता है कि उपादान और निमित्त कारण दौनो की योग्यता कार्य साधक है। दोनो मे यदि एक की समर्थता पूरी नही है तो कार्य नही होगा। दोनो की सामर्थ्य आवश्यक है इस न्याय सिद्धान्त को बिना मनन किये जो निश्चय एकान्त पर आरूढ हो कर निमित्त का निषेध करते है वे वस्तु तत्व की जानकारी से वहिर्भूत है।

एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर कोई प्रभाव नहीं

ऐसी मान्यता भी एकान्त निश्चयवादियो की है कि किसी द्रव्य पर दूसरे पदार्थ का कोई असर या प्रभाव या विकार आदि नही होता है। सभी द्रव्य स्वतन्त्र है।

यहा पर यह खुलासा कर देना आवश्यक है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप कभी नही हो सकता है एक द्रव्य का गुण दूसरे द्रव्य मे नही जासकता है सभी द्रव्य और गुण अपने मे ही परिणमन करते है यह जैन सिद्धान्त है परन्तु प्रत्येक द्रव्य मे और उसके गुणो मे दूसरे पदार्थों की वाह्य सहायता से प्रभाव पडता है तभी तो द्रव्य गुणो मे विकार या विभाव रूप परिणमन होता है। जैसे घडा वनता है तो मिट्टी से ही परन्तु जब तक कुम्हार अपने हाथो से चाक को डण्डे से घुमाकर उस चाक पर रखी हुई मिट्टी पर अपना हाथ नही घुमावेगा तव तक घडा कभी नहीं वन सकता। हाथो के घुमाने से कुम्हार के गुण दोष घडे मे नही आते है परन्तु उसकी सहायता मिट्टी मे घडे का आकार वना देती है।

आत्मा पर परद्रव्य का प्रभाव

शब्द जड पुद्गल है फिर भी यदि कोई किसी को गाली देता है

तो सुनने वाले को तुरन्त क्रोध आजाता है। क्रोध आत्मा का विकारी भाव है बारुद से प्रेरित शब्द कानो की झिल्ली को फाड देता है। तब मनुष्य वात सुनने मे असमर्थ होता है। सिनेमा आदि देखने से सरागी मनुष्य बहुत प्रसन्न होते हैं यह प्रसन्नता आत्मा का ही राग परिणाम है। कडवा चिरायरा, गिलोय का काढा पीने मे भाव मन अरुचि करता है। मीठा खाने से मन मे रुचि होती है यह सब पर द्रव्य का ही आत्मा पर प्रभाव है। तीव्र दुर्गन्ध से मनुष्य नाक मुह बन्द कर लेता है बुरा अनुभव करता है। इतर की सुगन्ध आने पर मन मे सुखद अनुभव होता है यह सव आत्मा पर जड पुद्‌गल द्रव्य का प्रभाव प्रत्यक्ष है। जीवित शरीर मे सुई चुभोने से तीव्र कष्ट (दर्द) होता है। यह परद्रव्य का आत्मा पर गहरा प्रभाव नही है क्या ? विष भक्षण से मृत्यु हो जाती है यह पर द्रव्य का ही प्रभाव है। आत्मा का स्वभाव सर्वज्ञ एव वीतराग स्वरूप है परन्तु ससार मे पर पदार्थ पुद्‌गल के सयोग से आत्मा क्रोध मान माया लोभ आदि विकार एव विभाव मे लिप्त हो रहा है इसलिये वह नितान्त प्रत्यक्ष विपरीत वात है कि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य का बिगाड बना व कुछ नही कर सकता है। जीव पर द्रव्य पुद्‌गल का इतना भयकर एव दुखद प्रभाव है कि उस ईश्वर पद के सामर्थ्यशाली जीव को रक एव जड द्रव्य जैसा वना दिया है। घातियाँ कर्मो ने आत्मा के ज्ञान दर्शन, सुख दर्शन, चारित्र गुणो को विकारी बना दिया है।

जो होनहार है वही होगा (क्रमवद्ध पर्याय)

ऐसा भी निश्चय एकान्तवादी कहते है कि जिस जीव का जो होना है सो होगा। जो सर्वज्ञ ने देखा है वही होगा। इसी मन्तव्य को क्रमवद्ध पर्याय अथवा नियत पर्याय नाम से कहा जाता है परन्तु—

ऐसी मान्यता तो दि० जैन सिद्धान्त की पूर्ण विघातक है। इस

मान्यता से किसी भी जीव को कभी मोक्ष की प्राप्ति नही हो सकती है इसी का स्पष्टीकरण किया जाता है।

पहली बात तो यह विचारणीय है कि होनहार को मानने वाले कर्मोदय से होनहार मानते है या कर्म का आत्मा से सम्बन्ध नही मान कर आत्मा की स्वय की योग्यता से जीव की होनहार वताते है यदि कर्मोदय से होनहार वतायी जाती है। तो जीव कर्मबध करता रहेगा और उसके उदयानुसार चारो गतियो मे घूमता रहेगा पुराने कर्म समय पाकर झर जायेंगे नवीन कर्म वधते रहेगे ऐसी अवस्था मे सविपाक निर्जरा एव कर्म चेतना तथा कर्म फल चेतना ही वनी रहेगी। जीव को ससार से मुक्त होने का कभी भी अवसर नही आसकता है।

यदि कहा जाय कि आत्मा मे कर्म का तो सम्बन्ध नही है वह अपनी योग्यता से ही गतियो मे घूमता है और आत्मा की योग्यता से ही मोक्ष भी हो जाती है तव इस प्रश्न का क्या समाधान है कि वह आत्मा की योग्यता आत्मा का स्वभाव है या विभाव है जिससे ससार और मोक्ष दोनो विराधी कार्य होते हैं। यदि योग्यता आत्मा का स्वभाव है तो ससार भ्रमण रूप विभाव क्यो हो रहा है ? यदि आत्मा का विभाव है तो आत्मा मे किस कारण से आगया है ? और उस विभाव से छूटकर स्वभाव वह किस कारण से कव होगा ? क्योकि जीव की पर्याये तो नियत एव क्रमवद्ध मानी जाती हैं इन प्रश्नो का कोई समाधान नियत क्रमवद्ध पर्याय मानने वाले नही दे सकते है।

शास्त्राधार से सहेतुक समाधान

गोम्मटसार मे नियतिवाद को मिथ्यादृष्टि के भेदो मे वताया गया है। जैन सिद्धान्त मे इस नियतिवाद अथवा क्रम वद्ध पर्याय को कोई स्थान नही है।

ज जम्मि देसे जेण विहाणेण जेण कालमि इत्यादि भी जैन शास्त्रो मे होनहार का उल्लेख है उसका अर्थ यही है कि जो मनुष्य

या जीव अपनी पर्याय को खाने, पीने निद्रा, भय विषयो के सेवन आदि मे ही बिताते हैं परलोक का एव आत्मा के उत्थान का कोई लक्ष्य नही रखते हैं ऐसे जीवो का होनहार ही प्रवल रहता है। उनके कर्म बधते हैं और उदयागत कर्म झरते है यह सविपाक निर्जरा होती रहती है। सभी शास्त्रो मे पुरूषार्थ को प्रधान बताया गया है और परमार्थ सिद्धि के लिए व्रत तपश्चरण ध्यान सयम समता भाव जिन पूजन मुनिदान आदि साधनो द्वारा कर्मो की निर्जरा करने का विधान है। अविपाक निर्जरा कर्मों की पुरूषार्थ से ही की जाती है इसी आत्मीय पुरूषार्थ से असख्यात गुणी कर्म निर्जरा सम्यग्दृष्टि से लेकर श्रावक मुनि उपशम एव क्षपक के उत्तरोत्तर बढती जाती है। इसी आत्मीय चारित्र पुरूषार्थ से अध करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति करण, इन करणत्रय द्वारा स्थिति खडन अनुभाग खडन होजाता है। तथा कर्मो का उत्कर्षण अपकर्षण भी होता है। राजा श्रेणिक ने सातवे नरक की तेतीस सागर की आयु बांधी थी परन्तु क्षायिक सम्यक्त्व एव तीर्थंकर प्रकृति का बध हो जाने से उसकी नरकायु केवल चौरासी हजार वर्ष की रह गयी यह कितना महान परिवर्तन है जो क्षायिक सम्यग्दर्शन आदि विशुद्ध भावो से प्राप्त होगया और श्रेणिक को विशुद्ध भावो की प्राप्ति मुनिराज के प्रभाव पूर्ण सबोधन से हुयी थी। देखिए-भरत चक्रवर्ती गृहस्थ जीवन मे विरक्त रहे और जब तपोवन को गये तब उनकी परिणाम विशुद्धि इतनी बढ गयी कि उन्होने निर्ग्रन्थ मुनिपद धारण कर केश लुञ्चन आदि क्रियायें की पश्चात् उन्हे केवल ज्ञान होगया। अनत सचित कर्म समूह उनका क्षण मात्र मे झर गया यदि वे होनहार पर ही निर्भर रहते तो क्या वे मोक्ष कभी पा सकते थे? या वन मे जाकर मुनि क्यो बनते? मोक्ष सिद्धि का उपाय आत्मीय पुरूपार्थ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को प्राप्त करना है। वह ज्ञान चेतना से ही साध्य है। कर्म और कर्मफल चेतना वाले ही होनहार के भरोसे

अनत ससार मे घूमते फिरते है सर्वज्ञ ने जो देखा है वही होगा। यह तो सर्वथा सत्य है, सर्वज्ञ ने उन जीवो को भी देखा है या देखते है जो होनहार के भरोसे व्रत, तप, सयम का विरोध करते है और अपने कुमतिज्ञान के साथ दूसरो का भी अहित करते है। और सर्वज्ञ देव ने उनको भी देखा है और देखते हे कि जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इन चार आराधनाओ का पालन करते हुए मोक्ष मार्ग मे लगे हुए है सर्वज्ञ होनहार वालो को और पुरुपार्थ वालो दोनो को देखते है जो जब जैसा करता है उसे सर्वज्ञ वैसे रूप मे देखते जानते है अत सर्वज्ञ ने जो देखा है वही होता है और जो होना है उसे वे उसी रूप मे जानते है अत सर्वज्ञ प्रत्यक्ष दृष्टा है। यदि होनहार ही शास्त्र सम्मत होता तो श्रावक धर्म और मुनिधर्म धारण करने का तथा आत्म विशुद्धि एव वीतरागता प्राप्तकर कर्मो के नाश करने का कथन आचाय क्यो करते ? शास्त्रो मे क्रमबद्ध पर्याय या नियतिवाद मिथ्यावाद का निषेध और आत्मीय पुरुषार्थ का विधान पाया जाता है। व्यवहार धर्म एव निश्चय धर्म होनहार रूप कर्म सतति को नष्ट करने एव मोक्ष प्राप्ति के लिए ही पालन किया जाता है।

होनहार के पात्र कौन है ?

होनहार अर्थात् कर्मो के अनुसार जब जिसका जो होना है वह उसका होगा यह भी शास्त्रो मे लिखा है उसके पात्र नियम रूप से तो निगोदिया आदि अनतानते एकेन्द्रिय जीवो से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक सभी जीव होनहार के ही पात्र हे। वे मन के विना स्वात्महित सोचने मे असमर्थ है अपने कर्मो के अनुसार फल भोगते है। ऐसे जीव तो नियम से होनहार के ही पात्र है। साथ ही वे सज्ञी मनुष्य भी होनहार के पात्र है। जो अपने तीव्र दर्शन मोहनीय कर्मो दय से अपनी ख्याति, पूजा और जनता मे मान वडाई चाहने आदि तुच्छ प्रयोजन वश शास्त्र विरुद्ध नवीन मत चलाने की धुन मे अपना

और दूसरो का अहित करना चाहते है ऐसे लोग अपनी भूल से आत्म सिद्धि अथवा और अध्यात्म मार्ग से बहुत दूर है।

दि० जैन धर्म एक ऐसा चितामणि अमूल्य रत्न है जिसके द्वारा मनुष्य सन्मार्ग मे लगकर सच्चे सुख को प्राप्त कर सकता है। इस असाधारण परम हितकारी धर्म को दो प्रकार से प्राप्त किया जासकता है। या तो वीतराग महर्षियो द्वारा रचे हुए शास्त्रो मे बताये हुए तत्वो को आज्ञा मानकर उन पर पूर्ण श्रद्धान कर लेना चाहिए। अथवा यदि उन शास्त्रो को समझने की विद्वत्ता है तो परीक्षा करके तत्व श्रद्धान करना चाहिए। जो कुल परपरा से दि० जैन नही है वे इस आत्म सिद्धि कराने वाले सर्वज्ञ भासित सहेतुक एव अकाट्य प्रमाणसमत धर्म को परीक्षा प्रधानी बन करके ही ग्रहण करते है। आचार्य विद्यानदि (पात्र केसरी) ने परीक्षा करके ही इस धर्म को धारण किया था। वे जगवद्य आचार्य बने उन्होने अष्ट सहस्त्री, श्लोक वार्तिक जैसे महान् गभीर शास्त्रो की रचना की। वर्तमान मे भी अन्यधर्मावलवी अनेक सत्पुरुषो ने इस दि० जैन धर्म को धारण कर अपनी स्वात्म सिद्धि के लिए सप्तम प्रतिमा क्षुल्लक पद एव मुनि पद धारण कर स्वपर हित किया हैं। पूज्य क्षुल्लक न्यायाचार्य गणेशप्रसादजी वर्णी साठी वैश्य वैष्णव थे वे दि० जैन सिद्धान्त को पढकर दि० जैन एव पूज्य त्यागी बने। आज भी हमारे सामने परम पूज्य मुनिराज श्रुत सागर महाराज हैं। जो कलकत्ता के व्यापारी श्वेताम्बर जैन थे। उस समय वे कलकत्ता मे हमारी कपडे की दूकान पर आते थे और अनेक शकाएें करते थे। उनका समाधान करते हुए हमे अत्यधिक प्रसन्नता होती थी। हमे क्या मालूम थी कि ये श्वेताम्बर शकाकार आगे शीघ्र ही वदनीय दि० साधु बन जायेगे? उन्होने परीक्षा करके दि० जैन धर्म को धारण किया और वे आज विशिष्ट विद्वान् एव तपस्वी निर्ग्रन्थ साधु हैं और धवल आदि दि० सिद्धान्त शास्त्रो का अध्ययन और मनन करते है उनके द्वारा

समाज का सच्चा कल्याण हो रहा है।

इसलिए चाहे कुल परपरा से दि० जैन हो चाहे समयसार के निश्चयनय को पढकर उस निमित्त से दि० जैन वना हो चाहे परीक्षा प्रधानी हो चाहे जिनवाणी का आज्ञा प्रधानी हो कोई भी हो उसका कर्तव्य है कि वह लोकेषणा-ख्याति पूजा की चाहना छोडकर अपना परमार्थ साधक सच्चा आत्मीय हित करे। श्रोताओ को भी सन्मार्ग का ही प्रतिपादन करे। इसके विपरीत जो इस दि० जैन धर्म जैसे परम हितकारी चिंतामणि स्वात्म सुख देने वाले दि०जैन धर्म को धारण कर भी जो उसके विपरीत प्रवृत्ति एव प्रचार करते है वे दु ख भाजन अनत ससारी बनते है।

आज समाज के परम सौभाग्य से कई विद्वान दिगम्वर जैन आचार्य है और अनेक विद्वान मुनिराज है उनके समीप मे शास्त्रीय रहस्य समझने का प्रयत्न करना ही श्रेयस्कर है। अन्यथा जिनवाणी के विरुद्ध मान्यता और धर्म विपरीत प्रचार करने वालो की जिन मदिर निर्माण एव जिन पूजन आदि क्रियाये केवल दिखावटी एव समाज के आकर्षण का प्रलोभन मात्र है। जबकि वे राग वताकर इन धार्मिक मोक्ष साधक क्रियाओ को ससारवर्धक एव त्याज्य वताते है और उन्ही जिन मदिरो मे अपनी मूर्ति स्थापित कराकर उसकी स्तुति आरती पूजा कराते है। आचायो का यह श्लोक प्रत्येक स्वहित चाहने वालो को ध्यान मे लेना चाहिए--

सूक्ष्म जिनोदित तत्व, हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञा सिद्ध च तद्ग्राह्य नान्यथा वादिनोजिना ॥

अर्थ-जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित तत्व अत्यन्त सूक्ष्म है। वे इतने सप्रमाण एव सहेतुक है जो किसी वादी प्रतिवादी द्वारा खडित नही हो सकते हैं अत स्वहित चाहने वाले भव्यो का कर्तव्य है कि वे उन जिनेद कथित तत्वो को आज्ञा रुप ग्रहण करे क्योकि जिनेंद

भगवान सर्वज्ञ एव वीतराग है उनके बचन अन्यथा नही हो सकते है।

भावि तीर्थंकर होने की घोषणा

निश्चय एकान्तीयो द्वारा एक ओर तो यह कहा जाता है कि पुण्यभिष्टा के समान त्याज्य है दूसरी ओर यह कहा जाता है कि ये भावि तीर्थंकर है। निश्चय एकात के प्रवर्तक के मुख से यह घोषणा की जाती है कि वे विदेह क्षेत्र मे सीमधर स्वामी के समवसरण मे राजकुमार की पर्याय मे अपने साथियो के साथ बैठे थे। वही पर कुद कुद आचार्य भी बैठे थे। वहा से यहा मनुष्य पर्याय मे आगये है।

ये सब ऐसी काल्पनिक बाते है जिन पर कोई थोडा विचार-शील भी विश्वास नही कर सकता है। इस प्रसग मे यह सोचने समझने की बात है कि क्या दो हजार वर्ष पहले के भवो को बताने का ज्ञान एक अव्रती साधारण गृहस्थ को हो सकता है। क्या बताने वाले गृहस्थ को अवधि ज्ञान होगया है या विभगावधि है ? या भवो को बताने वाला निमित्त ज्ञान हो गया है ? ऐसा निमित्त ज्ञान तो एक सामान्य मुनि को भी नही हो सकता है, विशेष ऋद्धि धारी महा तपस्वी परम शुद्ध मुनि ही दो हजार वर्ष पूर्व के भवो को बता सकते हैं। फिर अपने भवो को बताने के साथ दूसरे के भवो को बताना ऐसा तो अवधिमन पर्यय ज्ञानधारी मुनिराज ही बता सकते है। वर्तमान समय मे ऐसे मुनि भी नही हैं। साधारण गृहस्थ की तो बात क्या ? ऐसी निर्मूल निराधार काल्पनिक बातो की घोषणा ये निश्चय एकाती स्वय अपने मुख से करते हैं फिर भी कुछ भोले लोग एव कुछ स्वार्थ साधक लोग ऐसी मिथ्या मान्यताओ का आदर एव समर्थन करते हैं वे अपनी मिथ्या श्रद्धा का परिचय देते है। यदि दो हजार वर्ष के भवो को बताने वाला निमित्त ज्ञानी आज कल की एक भी बात का सही उत्तर दे सके तो उसके निमित्त ज्ञान की परीक्षा की

जा सकती है। फिर यह भी विचारणीय बात है कि विदेह क्षेत्र मे स्वामी सीमंधर तीर्थंकर के समवसरण मे बैठे हुए ये निमित्त ज्ञानी सम्यग्दृष्टि थे या मिथ्यादृष्टि ? यदि सम्यग्दृष्टि थे तो स्वर्ग जाने या आयु बंध पहले कर चुके हों तो भोग भूमि मे जाने फिर स्त्री पर्याय से पुरुष पर्याय मे कैसे आगये। ये सब बाते ध्यान देने योग्य है। दूसरी बात भावि तीर्थंकर सम्बन्ध की है निश्चय एकान्त प्रवर्तक यदि भावि तीर्थंकर है तो प्रश्न यह है कि तीर्थंकर प्रवृत्ति का बंध उन्होने कब और कहा पर किया था ? क्योकि यह शास्त्र प्रमाण है कि—

तित्थयर बध पारभयाणरा केवलि दुगते (गोम्मटसार)

अर्थ — तीर्थंकर प्रकृति का बंध केवली और श्रुत केवली के चरण सान्निध्य मे ही हो सकता है, अन्यत्र नही। इस प्रमाण के अनुसार बताना चाहिये कि तीर्थंकर प्रकृति का बंध कब और कहा किया गया इसी के साथ यह भी विचारणीय बात है कि तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यग्दृष्टि पुरुष ही कर सकता है। ऐसा बंध करने वाला सम्यग्दृष्टि मरकर स्वर्ग जाता है। यदि आयु बंध पहले हो गया हो तो नरक भी जाता है जैसे कि राजा श्रेणिक पहले नरक गये है वे क्षायिक सम्यग्दृष्टि और तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर चुके थे। अब वे वहा से निकल कर पहले तीर्थंकर महापद्म होगे।

ये भावि तीर्थंकर यहा मनुष्य पर्याय मे कैसे आ गये ? यह बात सर्वथाशास्त्र विपरीत और काल्पनिक है निश्चय एकान्त के प्रवर्तको के अनुयायी साक्षर लोग भी क्यो चुप है। उन्हे ऐसी मनगढन्त काल्पनिक बातो का स्पष्ट रूप से प्रतिवाद कर देना चाहिये। ऐसी सर्वथा धर्म विरुद्ध बातो को तथा निश्चय एकान्त को धर्मात्मा पुरुष मुनिजन तथा श्रावकजन सहन नही कर सकते है। उन्हे बहुत खेद होता है और सर्व कल्याणकारी दि० जैन धर्म मे विकृति एव एक नया सम्प्रदाय बन जायगा इस बात की चिन्ता है। आचार्य शिरोमणि जिनसेनाचार्य ने कहा है—

धर्मं निर्मूल विध्वस सहन्ते न प्रभावका ।

इसका अर्थ यह है कि जो धर्म की प्रभावना चाहने वाले धर्मात्मा पुरुप है वे धर्म का जड मूल से विघात होना सहन नही कर सकते है।

जो कोई दिगम्बर धर्म को धारण कर और आगम पर पूर्ण श्रद्धा रख कर तदनुसार स्व पर हित मे लग जाते है उनका धर्मात्मा पुरुष हृदय से आदर प्रतिष्ठा और सराहना करते है। आचार्य वर्य अमृतचन्द्र सूरि कहते हैं कि—

सकल नय विलसिताना विरोध मथन नमाम्यनेकान्तम् ।

अर्थ — आचार्य अमृतचन्द्र सूरि उस अनेकान्त धर्म को नमस्कार करते है जो द्रव्य पर्याय निश्चय व्यवहार इन सापेक्ष नयो से सुशोभित हो रहा है तथा एकान्त नयो के विरोध को सर्वथा नष्ट कर देता है।

इस प्रकार वस्तु तत्व के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने वाला प्रमाण और नय रूप सम्यग्ज्ञान है इन्ही दोनो का शास्त्राधार से थोडा सा दिग्दर्शन हमने किया है। पचाध्यायी ग्रन्थ राज मे इन प्रमाण और नयो का विस्तार से विवेचन है स्वाध्यायशील सज्जन उसका मनन और अध्ययन करें।

सर्व मगल मागल्य सर्वं कल्याण कारकम् ।
प्रधान सर्वं धर्माणा जैन जयतु शासनम् ॥

जैन दर्शनाचार्य
श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का व्यवहार निश्चय
नयो का निरूपक तथा निश्चय
एकान्त का खण्डन विवेचक

द्वितीय अध्याय समाप्त

अथ तृतीय अध्याय

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

चतुर्थगुणस्थान में सम्यक्चारित्र अवश्य होता है

व्यवहार सम्यग्दर्शन मे ही अष्ट मूल गुणो का पालन अनिवार्य आवश्यक है

समयसार प्रवचनसार पचास्तिकाय वृहद्द्रव्यसग्रह पञ्चाध्यायी आदि शास्त्रो मे सम्यग्दर्शन का निरूपण वहुत विशद स्वरूप से महत्वपूर्ण लिखा गया है। जिस सम्यग्दर्शन गुण के प्रकट होने पर आत्मा नियम से एव अनिवार्य रूप से मोक्ष प्राप्त कर लेता है उस सम्यग्दर्शन गुण की महिमा अद्भुत है। उसे पढते पढते आत्मा इतना प्रभावित एव अपने मे निर्मलता का अनुभव करता है जितना कहा नही जासकता है।

पचाध्यायीकार ने एक बात बडे महत्व की सूक्ष्मदृष्टि से लिखी है उन्होने लिखा है कि चाहे उपशम सम्यकत्व हो चाहे क्षयोपशम चाहे क्षायिक सम्यकत्व हो उन तीनो मे सम्यग्दर्शन गुण की निर्मलता की दृष्टि से कोई भेद नही है। तीनो मे सम्यग्दर्शन की विशुद्धता समान है। भले ही चारित्र मोहनीय कर्मोदय की परवशता से सम्यकत्व मे अधिक नैर्मल्य नही है फिर भी सम्यकत्व गुण का विकाश

तीनो मे समान है जिससे सम्यग्दृष्टि भव्यात्मा मोक्ष का अधिकारी वन जाता है। यही वात मोक्ष मार्ग मे कही गई है यथा—

"सोतो जैसा सप्त तत्वनिका श्रद्धान छद्मस्थ के भया था तैसा ही केवली सिद्ध भगवान के पाइए है। ताते ज्ञानादिक की हीनता अधिकता होते भी तिर्यचादिक वा केवली सिद्ध भगवान के सम्यक्त्व गुण समान ही कहना" "मोक्ष मार्ग प्रकाश पृष्ठ ४६०" इसी अन्तर्दृष्टि को लक्ष्य मे लेकर केवल सम्यक्त्व गुण के सर्वोपरि दिव्य माहात्म्य के धारक सम्यग्दृष्टि को सिद्धपदौपमम् अर्थात् सिद्ध पद की उपमा वाला वताया गया है। यह अतिशयोक्ति नही है किन्तु सिद्धो मे अनतगुणो की अभिव्यक्ति मे सम्यग्दर्शन गुण भी है वह गुण सम्यग्दृष्टि मे भी प्रगट हो चुका है जो सिद्ध पद का एक अश है। जैसे जिनलिगधारी मुनि को अर्हत का लघु नदन कहा जाता है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से प्रगाढ श्रद्धानी आचार्य समतभद्र स्वामी ने सम्यग्दर्शन का माहात्म्य अनेक श्लोको द्वारा रत्नकरड श्रावकाचार मे प्रगट किया है, इतना ही नही उन्होने शिवकोटि राजा के सामने उसकी आज्ञा से कोटपाल द्वारा गर्दन पर तलवार रख देने पर भी अर्हत देव को छोडकर मिथ्यादेव को नमस्कार नही किया किन्तु अपने महान् प्रतिभापूर्ण पाण्डित्य से बृहत्स्वयम् स्तोत्र की तत्काल रचना की और जव चद्रप्रभु भगवान की स्तुति की, उस स्तुति मे

चद्र प्रभ चद्रमरीचिगौर चद्र द्वितीय जगतीव कान्तम्
वन्देभिवद्य महतामृषीन्द्र जिन जित स्वान्त कषाय वन्धम्
य सर्वलोके परमेष्ठितायाः पद वभूवाद्धुतकर्मतेजा
अनन्त धामाक्षर विश्व चक्षु समन्तदु खक्षय शासनश्च।

इन श्लोको को रचा उसी समय ज्वाला मालिनी देवी ने भगवान चद्रप्रभ की रत्नमयी दिव्य प्रतिमा रत्नमयी सिंहासन पर विराजमान करदी उसी समय स्वामी समतभद्र ने भगवान चद्रप्रभ को मन वचन

काय से नमस्कार कर अपने दृढ सम्यग्दृष्टि होने का चमत्कारी प्रगाढ माहात्म्य प्रगट कर दिया।

इन श्लोको मे आचार्य श्री ने अपने मारे जाने का अनिवार्य प्रसग आने पर "समतदु खक्षय शासनश्च" यह वाक्य रचा है अर्थात् समन्तभद्र पर जो मरने तक का घोर दु खमय सकट आगया है उस सकट को निवारण करने की परिपूर्ण सामर्थ्य हे भगवान् ! आपके शासन मे ही है।

जिस प्रकार सम्यग्दृष्टि पद्मावती देवी भगवान पार्श्वनाथ की भक्ति श्रद्धा के साथ सदैव आराधना करती है उसी प्रकार ज्वाला मालिनीदेवी भी सम्यग्दृष्टि देवो है वह भगवान चद्रप्रभ की भक्ति और श्रद्धा पूर्ण आराधना करती है, आचार्य समन्तभद्र को ज्वाला मालिनी सिद्ध थी। इसलिये उसने अटल सम्यग्दशनधारी आचार्य श्री के धर्म पर आने वाले सकट को तुरत दूर कर दिया। सम्यग्दृष्टि शासन देव धर्म पर आये हुए अथवा दृढात्मा धर्मात्माओ पर आये हुए सकट को दूर करने मे समर्थ हैं।

अव्रत सम्यग्दृष्टि के विषय मे भ्रम पूर्ण विवाद

चतुर्थ गुण स्थान वर्ती अव्रत सम्यग्दृष्टि को भी जघन्य पात्र एव पूज्य पात्र शास्त्रो मे बताया गया है। सर्व साधारण एव स्वाध्याय शील महानुभाव सम्यग्दृष्टि को ससार विरक्त (अविरत) चारित्रधारी मानते है। ऐसा मानना विवाद का विषय भी नही है शास्त्र सम्मत है।

कोई विद्वान कहते हैं कि चौथे गुण स्थान वर्ती सम्यग्दृष्टि अव्रती है उसके चारित्र नाम मात्र भी नही होता है कोई यहा तक कहते हैं कि अविरत सम्यग्दृष्टि स्थावर हिंसा और त्रसहिंसा दोनो को करता है चाहे जो खाना पीता है। कोई विद्वान कहते हैं कि अविरत सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र नही होता है। कोई

विद्वान सिद्धो मे भी चारित्र नही मानते हे। इस प्रकार चारित्र के विपय मे विवाद खडा होगया है। इस विवाद से सम्यग्दृष्टि के स्वरूप मे वाधा, आती है, उसके माहात्म्य मे वहुत दोप आता है। इसी प्रकार सिद्धो मे चारित्र नही मानने से सिद्ध स्वरूप एव मोक्ष मार्ग के स्वरूप मे पूरी वाधा आती है। इसीलिये हम इस विवाद को हेतु पूर्वक शास्त्रो के प्रमाण से निवारण करते हैं जिससे भ्रम दूर हो जाय और धर्म प्रवृत्ति मे रुकावट नही आसके। पूर्वाचार्यों के वचनो के अनुसार ही वस्तु तत्व का स्वरूप यथार्थ है। इसी श्रद्धा से आत्मा का कल्याण हो सकता है। इसी सद्भावना से हम थोडा सा खुलासा कर देना उचित एव आवश्यक समझते है।

अविरत सम्यक्दृष्टि के चारित्र अवश्य होता है

जो विद्वान् अविरत सम्यग्दृष्टि के चारित्र का निषेध करते हैं वे गोम्मटसार का प्रमाण देते है—

णोइदियेपु विरदोणोजीवे थावरे तसेवापि।
जो सद्दहदि जिणुत्त सम्माइट्ठी अविरदो सो॥

अर्थ—जो इद्रिय सम्बन्धी भोगो से विरक्त नही है और स्थावर हिंसा तथा त्रस हिंसा से भी विरवत नही हैं किंतु जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए तत्वो पर पूर्ण श्रद्धान करता है वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।

इसी गाथा के प्रमाण से अविरत सम्यद्दृष्टि के चारित्र का निषेध किया जाता है परन्तु ऐसा समझना और ऐसा गाथा का भाव समझना भूल है। इस गाथा का अर्थ यही है कि अविरति सम्यग्दृष्टि अभी व्रत्ती नही है उसके प्रतिमारूप चारित्र नही है। वह नैप्ठिक नही है। अणुव्रत निभी रतीचार नही पालता है। उसके सयम रूप चारित्र नही है। एक देश सयम अप्रत्याख्यानकपाय के अभाव मे होता है। उसके उसका उदय है। परन्तु वह निरर्गल निर्मर्याद धर्म विरुद्ध प्रवृत्ति करता हो सो वात नही है। वह ससार से, भोगो

से, विरक्त है। वह अनुकम्पा (दया) रखता है प्रशम भाव रखता है वह जीवो को मारे ऐसी हिसा मय भावना तथा प्रवृत्ति वह नही करता है। इसी गाथा की सस्कृत टीका के आधार पर हिंदी टीका मे श्रीमान् प० खूबचन्दजी शास्त्री ने यह लिखा है कि इस चौथे गुण स्थान मे दोनो सयमो प्राण सयम और इन्द्रिय सयम इन दोनो मे कोई सयम नही होता है अतएव इसको अविरत सम्यग्दृष्टि कहते है परन्तु इस चौथे गुण स्थान के लक्षण मे जो अपि शब्द पडा है उससे सूचित होता है कि वह अविरत सम्यग्दृष्टि विना प्रयोजन किसी हिंसा मे प्रवृत्त नही होता है। क्योकि यहा असयम भाव से प्रयोजन अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों के अनुदय से पाचवे गुण स्थान मे पाये जाने वाले देश सयम के निषेध से है। अतएव असयत कहने का अर्थ यह नही कि असयत सम्यग्दृष्टि की प्रवृत्ति मिथ्यादृष्टि के समान अनर्गल हुआ करती है। क्योकि चौथे गुण स्थान मे ४१ कर्म प्रकृतियो के बध व्युच्छित्ति हो जाती है।

(गोमटसार हृदी टीका)

इस कथन से यह सिद्ध हो जाता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि आरभी उद्योगी विरोधी हिंसा का त्यागी नही है किंतु त्रस हिसा सकल्पी कभी नही करता है। और चाहे जो अभक्ष्य भक्षण भी नही करता है। निश्चय सम्यग्दृष्टि का यह लक्षण और कथन है जब कि व्यवहार सम्यग्दृष्टि भी अष्टमूल गुणधारी बन जाता है तब निश्चय सम्यग्दृष्टि की महिमा तो निराली है।

णोइंदियेसु विरदो– इसी गाथा की दोनो सस्कृत टीकाओ मे स्पष्ट लिखा है– पहली सस्कृत टीका मे लिखा है– अपि शब्देन अनुकपादिगुण सद्भावात् निरपराधहिसा न करोति इति सूच्यते। दूसरी सस्कृत टीका मे लिखा है कि–

अपि शब्देन सम्वेगादि सम्यकत्व गुणा सूच्यन्ते अपि शब्देन

अनुकपादि स्यात् ॥ (गोम्मटसार)

इसी गाथा की हिंदी टीका मे पडित प्रवर प० टोडरमलजी ने इस प्रकार लिखा है—

"वहुरि अपि शब्द करि अनुकपा भी है भावार्थ कोई जानेगा कि विपयनि विखें सम्यग्दृष्टि की अविरति है ताते विपयानुरागी बहुत होगा सो नही है सवेगादिगुग युक्त है। वहुरि हिसादि विखे अविरति हे ताते निर्दयी होगा सो नाही है दया भाव सयुक्त है ऐसा अविरत सम्यग्दृष्टि है।" (गोमटसार)

गोमटसार की गाथा, उसकी दोनो सस्कृत टीकाएं तथा श्री प० टोडरमलजी की हिंदी टीका से यह स्पष्ट होजाता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि दयावान् और सवेगवान् ससार से विरक्त होता है। वह निश्चय सम्यग्दृष्टि मद्यापिका सेवन अथवा त्रसजीवो की हिसा कभी नही कर सकता है।

ऊपर कही गई गोम्मटसार की णोइ दियेसुविरदो इस गाथा मे सम्यग्दृष्टि के लक्षण मे मूल बात यह कही गई है कि वह अविरत सम्यग्दृष्टि जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित कथन का पूर्ण श्रद्धान करता है। सम्यग्दृष्टि के लक्षण मे कहा गया है कि वह तीर्थंकर भगवान के द्वारा कहे गये और गणधर देव श्रुत केवली आदि पूर्वाचार्यों द्वारा रचे गये शास्त्रो पर पूर्ण श्रद्धान करता है। जव वह दृढ श्रद्धानी है तब वह जोव हिंसा आदि पापो मे कभी प्रवृत्त नही हो सकता है।

सम्यग्दृष्टि मे प्रशम, सवेग, अनुकपा आस्तिक्य ये गुण प्रगट हो जाते है। उनका स्वरूप समझ लेने से यह भली भाति सिद्ध हो जाता है उसकी प्रवृत्ति हिंसादि कार्यों मे नहो हो सकती है। प्रशमादि गुणो का स्वरूप पढिये—

प्रशमगुण–सम्यग्दृष्टि का

प्रशमो विषयेषूच्चैर्भाव क्रोधादिकेषुच ।
लोका सख्यात मात्रेषु स्वरूपाच्छिथिल मन ।
सद्य कृतापराधेषु यद्वा जीवेषु जातुचित् ।
तद्वाधादि विकाराय न वुद्धि प्रशमो मत ।

श्लोक ४२६/२७ (पचाध्यायी)

अर्थ— पचेन्द्रिय सम्बन्धी विषयो मे और असख्यात लोक प्रमाण क्रोधादि भावो मे स्वभाव से ही मन की शिथिलता का न होना अर्थात् क्रोधादि मे मन की प्रवृत्ति का नही होना प्रशम है। इसी के आगे यह बताया गया है कि यदि यह प्रशम गुण सम्यग्दर्शन के साथ है तो प्रशम गुण है।

सम्यग्दृष्टि का सवेग गुण

सवेग परमोत्साहो धर्मे धर्म फले चित
सधर्मेष्वनुरागो वा प्रीतिर्वा परमेष्ठिषु ।
धर्म सम्यक्त्वमात्रात्मा शुद्धस्यानुभवो यथा
तत्फल सुखमत्यक्ष मक्षय क्षायिक च यत् ।

श्लोक ४३१/४३२ (पचाध्यायी)

अर्थ— धर्म और धर्म के फल मे पूरा उत्साह होना और साधर्मी भाइयो मे अनुराग होना तथा पाच परमेष्ठियो मे प्रीति का होना सवेग है।

सम्यग्दर्शन स्वरूप आत्मा ही धर्म है अथवा शुद्धात्मा का अनुभव होना ही धर्म है उसका फल कभी नष्ट नही होने वाला अतीन्द्रिय क्षायिक सुख है।

सम्यग्दृष्टि की अनुकम्पा

अनुकम्पा क्रियाज्ञेया सर्वसत्वेष्वनुग्रह

मैत्रीभावोथ माध्यथ नै शल्य वैग्वर्जनात्

श्लोक ४४६ (पचाध्यायी)

अर्थ— सम्पूर्ण प्राणियो मे उपकार बुद्धि रखना अथवा सब जीवो मे मैत्री भाव रखना यह भी अनुकम्पा है। अथवा विरोधी पुरुपो मे माध्यस्थ (उपेक्षा) भाव रखना तथा सब जीवो से वैरभाव छोड कर नि शल्य कपाय रहित भाव रखना अनुकम्पा है।

इस उपर्युक्त कथन से और गोम्मटसार की उक्त गाथा के ही प्रमाण से तथा पचाध्यायी तथा राजवार्तिक के प्रमाण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्यग्दृष्टि चारित्र पालना है किनु सयम रूप चारित्र उसके नही होता है उसका विरोधी अप्रत्याख्यान कषाय का उदय है जो अविरत सम्यग्दृष्टि के मौजूद है। सयम रूप चारित्र पाचवे गुण स्थान से प्रारम्भ होता है उस गुण स्थान मे एक देश सयम है। उसमे सयम रूप चारित्र नियमित एव प्रतिज्ञा रूप मे धारण किया जाता है आगे आगे की प्रतिमाओ मे पहली पहली प्रतिमाओ का पालन करना अत्यन्त एव अनिवार्य आवश्यक है। अन्यथा प्रतिमा भग हो जायगी। परन्तु सयम रहित चारित्र मे अभ्यास दशा है उसमे क्रम से बढने वाली विशुद्धता नही है।

सम्यग्दर्शन के दो भेद

एक व्यवहार सम्यग्दर्शन दूसरा निश्चय सम्यग्दर्शन व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप उमास्वामि आचार्य ने—

"तत्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनम्" बताया है, आचार्य समत भद्र स्वामी ने—

श्रद्धान परमार्थानामाप्तागम तपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमप्टाग सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥

और भी आचार्यो ने श्रद्धा रुचि प्रतीति तथा प्रशम सवेग अनुकम्पा आस्तिक्य आदि सम्यग्दर्शन के लक्षण वताये हैं परन्तु वे

सभी लक्षण ज्ञान परक हैं तत्वो का देव शास्त्र गुरुओ का, लोक अलोक आदि का श्रद्धान करना ज्ञान की ही पर्यायें हैं। ज्ञान के द्वारा सम्यग्दर्शन का वाह्य स्वरूप बताया गया है। यह सब कथन व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप है। इनके रहने पर निश्चय सम्यक्त्व हो भी या नही भी हो। व्यवहार सम्यक्त्व निश्चय सम्यक्त्व का साधक है। जो जिनेन्द्र भगवान के श्रद्धाभक्ति से दर्शन पूजन करते है मुनिदान देते हैं तीर्थयात्रा करते हैं पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराते है। जिन मदिर का निर्माण कराते है। ये सब व्यवहार सम्यग्दृष्टि के चिन्ह हैं।

अष्टमूल गुण धारण भी उसी का चिन्ह है

आठ मूल गुण इस प्रकार हैं—

मद्यपल मधुनिशासन पचफली विरति पञ्चकाप्तनुति
जीव दया जल गालन मिति च क्वचिदष्ट मूल गुणा
(सागार धर्माभृत)

अर्थ—मदिरा, मास, मधु का त्याग करना, रात्रि भोजन का त्याग करना, पाच उदम्बर फलो का त्याग करना, नियम रूप से देव दर्शन एव पच परमेष्ठी का पूजन स्तवन करना जीवो पर दया रखना, जल छान कर पीना। यह सव व्यवहार चारित्र की क्रिया है। क्योकि इनको पालन नही करने वाला जैन कहलाने का भी पात्र नही है। इसीलिये इन आठ मूल गुणो का पालन करना व्यवहार सम्यदृष्टि का चारित्र है।

अष्टमूल गुण धारण किये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता है

कोई विद्वान यहा तक कहते हैं कि सम्यग्दर्शन के वाद ही मद्य मासादि का त्याग होता है उसके पहले नही होता। उनकी समझ यह है कि सम्यग्दृष्टि केवल जिनेन्द्र कथित पदार्थो की श्रद्धा करता है वह त्रसहिसा का त्यागी नही है अत चाहे जो अभक्ष्य भक्षण करना

है चाहे जैसी सकल्पी हिंसा करता है। ऐसी समझ शास्त्रो के अभिमत को नही समझने से है। सम्यग्दृष्टि को उन्होने सामान्य समझा है जो अनत ससार के परिभ्रमण को नष्ट कर नियम से मोक्ष का अधिकारी वन चुका है। सम्यग्दृष्टि वहुत विशुद्ध वन चुका है वह मद्यमासादि का त्याग तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से पहले ही कर देता है। अन्यथा विना विशुद्ध हुए वह सम्यग्दर्शन कभी प्राप्त नही कर सकता है। प्रमाण इस प्रकार है—

निसर्गाद्वा कुलाम्नायादायातास्ते गुणा स्फुटम्
तद्विना न व्रत यावत् सम्यक्त्व च तदाङ्गिनाम्
एतावता विनाप्येष श्रावको नास्ति नामत
किं पुन पाक्षिको गूढो नैष्ठिक साधकोथवा
(पञ्चाध्यायी)

अर्थ-ये आठ मूल गुण स्वभाव से अथवा जैन कुल मे उत्पन्न होने से स्वय पाले जाते है। उनके विना न तो कोई व्रत हो सकता है और न सम्यग्दर्शन ही हो सकता है। यदि आठ मूल गुणो को भी जो नही पालता है वह नाम से भी श्रावक (जैन) नही है फिर पाक्षिक गूढ नैष्ठिक अथवा साधक श्रावक तो बहुत दूर की बात है।

और भी कथन

मद्य मास मधुत्यागी त्यक्तोदुम्बरपञ्चक
नामत श्रावक क्षान्तो नान्यथापि तथा गृही (पचाध्यायी)

अर्थ-मदिरा मास मधु और पाच उदम्बेर फलो का त्यागी नाम मात्र का श्रावक है। वही साधारण क्षमा धर्म का पालक है अन्यथा वह श्रावक अथवा जैन कहाने का पात्र भी नही है। कितना स्पष्ट कथन है। फिर भी जो सम्यग्यदृष्टि के चारित्र नही बताते है और जो यह कहते हैं कि सम्यग्दर्शन प्रगट होजाने के बाद ही आठ मूल गुण पाले जाते हैं यह सब कहना शास्त्र विरुद्ध है।

मद्य मास तथा क्षौद्रमथोदुम्बर पञ्चकम्
वर्जयेच्छ्रावको श्रीमान् केवल कुल धर्म वित्

(लाटी सहिता)

इस श्लोक का अर्थ लाटी सहिता के हिन्दी टीकाकार धर्म रत्न सरस्वती दिवाकर श्रीमान् श्रद्धेय प० लालारामजी शास्त्री ने इस प्रकार किया है—

"इन आठो का त्याग कर देना आठ मूल गुण कहलाते है इन आठ मूल गुणो का पालन करना श्रावको का कुल धर्म है जब तक इन आठ मूल गुणो को जो धारण नही कर लेता तब तक वह अपने कुल धर्म का भी पालन नही कर सकता है और की तो वात ही क्या है।" आगे इसी स्वरचित हिंदी टीका मे धर्म रत्न पूज्य प० जी ने लिखा है कि वह इस प्रकार है—

"आचार्य अमृतचद्र सूरि ने अपने पुरुषार्थ सिद्धचु पाय मे लिखा है—

अष्टावनिष्टदुस्तर दुरितायतनान्यमूनि परिवर्ज्य
जिन धर्म देशनाया भवन्ति पात्राणि शुद्धधिय

(पुरुषार्थ सिद्धयुपाय)

अर्थात् मद्यमांसादिक आठो ही अनत पापो के स्थान हैं। इसलिये जो इनका त्याग कर देता है वही शुद्ध बुद्धि वाला पुरुष जिन धर्म के सुनने का पात्र होता है,,

इस कथन से बहुत खुलासा हो जाता है कि विना मांसादिक का त्याग किये जैन धर्म सुनने का भी पात्र नही होता है। सम्यग्दर्शन का प्राप्त करना तो बहुत दूर की वात है।

सम्यग्दर्शन कब प्राप्त हो सकता है?

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये पाच लब्धिया बताई गई हैं जैसे—

खाओपसमिय विसोही देसण पाउग्गकरण लद्धीऐ
(गोम्मटसार)

कर्मो का क्षयोपशम होना, आत्म विशुद्धि का होना, गुरु का उपदेश मिलना, सज्ञी, पचेन्द्रिय, पर्याप्तक, भव्य होना और करण लब्धि का होना। इन कारणो के मिलने पर ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। यदि आत्मा मे विशुद्धता और गुरु का उपदेश सुनने की पात्रता नही हो और स्थिति खडन अनुभाग खडन करने वाले करण त्रय नही हो तो सम्यग्दर्शन नही हो सकता है। जो कर्म सत्तर कोटाकोटी सागर तक बध सकता है वह केवल अत कोटा कोटी सागर मात्र स्थिति मे बधे और सत्ता मे सख्यात हजार सागर कम अत कोटा कोटि पर्यन्त उपशम बना रहे। जहा आत्मा की इतनी विशुद्धिहो जाती है साथ ही प्रशम ससार से विरक्तभाव,जीवो पर दया भाव और देवगुरु शास्त्र तथा तत्वार्थो मे जिनेन्द्र की आज्ञानुसार दृढ श्रद्धा हो उसी आत्मा मे सम्यग्दर्शन हो सकता है। ऐसी अवस्था मे मद्यमांसादि का त्याग रूप चारित्र का पालन सम्यग्दर्शन से पहले ही होता है। सम्यग्दर्शन होने पर तो और भी विशुद्धता बढती है और असख्यात गुणी निर्जरा सम्यग्दृष्टि के होती है।

सात प्रकृतियो के उपशम क्षय क्षयोपशम से होने वाले निश्चय सम्यग्दर्शन के पहले व्यवहार सम्यग्दर्शन और व्यवहार चारित्र का पालन करना अनिवार्य आवश्यक है ऐसे मनुष्य की प्रशसा पडित प्रवर आशाधर जी ने इस प्रकार की है—

यावज्जीवमिति त्यक्त्वा महापापानि शुद्ध धी,
जिन धर्म श्रुतेर्योग्य स्यात्कृतोपनयो द्विज
(सागारधर्मामृत)

अर्थात् जीवन पर्यन्त मद्य मासादिक महा पापो का त्याग करके शुद्ध बुद्धि बनता है वही मनुष्य उपनय सस्कार को धारण करके जिन

धर्म के सुनने का अधिकारी बन जाता है। इस कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि निश्चय सम्यग्दर्शन के पहले ही व्यवहार चारित्र मे अप्ट मूल गुण धारण करने रूप चारित्र का सद्भाव मानना आवश्यक है। यदि मद्य मासादि के त्याग रूप चारित्र,निश्चय सम्यग्दर्शन होने के पहले नही माना जाय तो क्या मद्य मासादि का सेवन करते हुए सम्यग्दर्शन हो जायगा ? कभी नही होगा।

और भी सुनिये—

तत्रादौ श्रद्धधज्जैनी माज्ञा हिंसा मपासितुम्
मद्यमास मधून्नुजद्धेत् पच क्षीर फलानि च

अर्थ— जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का श्रद्धान करने वाला सबसे पहले हिंसा को दूर करने के लिए मद्य मास मधु तथा त्रस जीवो से भरे हुए पाच उदम्बर फलो का त्याग करे। इसी त्याग के साथ मे वह जिन पूजन, मुनि दान, व्रत उपवास, इस त्याग, जीव रक्षण आदि चारित्र का भी पालन करता है। यह सब धार्मिक क्रिया चारित्र ही तो है यह सब व्यवहार चारित्र है। फिर निश्चय सम्यग्दर्शन विशिष्ट चौथे गुण स्थान मे कुछ भी चारित्र नही होता है ऐसा कहना और समझना शास्त्र सम्मत नही है।

अनंतानुबधी मे दोनो को घातने की शक्ति है

अनतानुबधी कषाय सम्यक्त्व और चारित्र दोनो को घातती है अत उसके अभाव मे आत्मा मे चारित्र का अश प्रकट हो जाता है। उसी का फल मद्यमासादिक का त्याग है।

कोई शका करते हैं कि यदि अनतानुबधि कषाय के अभाव मे चारित्र हो जाता है तो सम्यग्दर्शन भी तीसरे गुण स्थान मे हो जाना चाहिये इसके उत्तर मे उन्हे यह समझ लेना चाहिये कि अभी तीसरे गुण स्थान मे जात्यंतर सर्वघाति सम्यङ् मिथ्यात्व प्रकृति का उदय है अत वह सम्यग्दर्शन के प्रगट होने मे बाधक है।

चौथे गुण स्थान मे जहा सम्यग्दर्शन आत्मा मे प्रगट हो जाता है वहा तो प्रशम सवेग अनुकम्पा आस्तिक्य भाव सम्यग्दृष्टि के अविनाभावी गुण बन जाते है । इसलिए सम्यग्दृष्टि के सयम रूप चारित्र नही होने पर भी चारित्र अवश्य है । और वह सम्यक चारित्र है । क्योकि सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाने पर ज्ञान सम्यज्ञान और चारित्र सम्यक चारित्र बन जाता है ।

शास्त्रो के अनुभव से यह बात जाननना चाहिये कि जिन मनुष्यो के मिथ्यात्व कर्म और अनन्तानुबधि कषाय का उदय है उनके तो मिथ्या चारित्र है जैसे भस्म रमाने वाले, पचाग्नि तपने वाले, चीमटा रखकर बाल बढाने वाले, चिलम गाजा पीने वाले बाबाजी मिथ्या चारित्र धारी है परन्तु जिनके मिथ्यात्व कर्म एव अनतानुबधि कर्म का उदय नही है ऐसे मनुष्य सम्यग्दृष्टि है और जो जैन कुलोत्पन्न है वे तो स्वभाव से ही मद्यादि का त्याग कर देते हैं । यह चारित्र सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का साधक व्यवहार चारित्र है । सात प्रकृतियो के उपशम क्षय क्षयोपशम से जब निश्चय सम्यग्दर्शन हो जाता है तब उस सम्यग्दृष्टि के तो सम्यक चारित्र नियम से होता है । सयम रूप चारित्र अविरत सम्यग्दृष्टि के नही होता है । वर्तमान मे विरले ही निश्चय सम्यग्दृष्टि होगे । दि० जैन समाज मे व्यवहार सम्यग्दृष्टि और व्यवहार चारित्रधारी हो सर्वत्र हैं क्योकि वे देवशास्त्र गुरु मे अटल श्रद्धा रखते हैं और यथा शक्ति त्याग भी करते है । अष्ट मूल गुणो का पालन करते हैं । सातिचार व्रतो का भी पालन करते है जब ये चारित्र क्रियायें व्यवहार सम्यग्दृष्टि मे पाई जाती हैं तब निश्चय सम्यग्दृष्टि के चारित्र नही होता है ऐसा मानना शास्त्र सम्मत नही है ।

क्षायिक सम्यक्त्व की निराली महिमा

क्षायिक सम्यग्दृष्टि की तो महिमा निराली है वह वीतराग सम्यग्दृष्टि कहा जाता है । जैसा कि लिखा है—

आत्म विशुद्धिमात्र मितरत् सप्ताना कर्म प्रकृतीना मात्यतिकेऽपगमे सत्या आत्म विशुद्धिमात्र मितरत् वीतराग सम्यक्त्व मुच्यते ।

(राजवार्तिक)

अर्थ — सात प्रकृतियो के अत्यन्त क्षय हो जाने से आत्मा मे विशुद्धि का होना वीतराग सम्यग्दर्शन है अविरत क्षायिक सम्यग्दृष्टि की वीतरागता दर्शन मोहनीय जन्य राग के अभाव से कही गई है। यह क्षायिक सम्यग्दर्शन केवली अथवा श्रुत केवली के पाद मूल मे ही होता है ऐसे सम्यग्दृष्टि के ससार और भोगो से विरक्तता, जीवो पर दयाभाव तथा परिणामो मे निर्मलता आदि होने से सम्यकचारित्र का सद्भाव अवश्य एव अनिवार्य है। वह शास्त्राधार से सुसिद्ध है। द्रव्य चारित्र और भाव चारित्र दोनो प्रकार का चारित्र अविरत सम्यग्दृष्टि के होता है।

चारित्र का ण

असुहादो विणिवित्ति सुहे पवित्ती ह जाणि चारित

(द्रव्य सग्रह)

अर्थ — अशुभ से निवृत्ति होना और शुभ मे प्रवृत्ति होना चारित्र है। ऐसा आचार्य नेमिचन्द सिद्धात चक्रवर्ती कहते है। चारित्र का यही लक्षण सर्वार्थ सिद्धि और राजवार्तिक मे कहा गया है। अविरत सम्यग्दृष्टि की अशुभ से निवृत्ति और शुभ कार्यो मे प्रवृत्ति होती है। इसलिये वह सम्यक चारित्रधारी है।

चतुर्थ गुण स्थान मे सम्यक चारित्र अवश्य होता है

चतुर्थ गुण स्थान मे जो विद्वान किसी प्रकार का चारित्र नही मानते है उन्हें शास्त्राधारो पर दृष्टिपात कर अपनी धारणा बदलनी चाहिये। सबसे पहला प्रमाण यह है—

तत्वार्थ सूत्र महा शास्त्र मे दूसरे अध्याय मे जहा जीव के पाच भावो का विधान है वहा मिश्र (क्षयोपशम) भाव को मध्य मे कहा

गया है। इसका कारण यह बताया गया है कि क्षायोपशमि भाव सम्यग्दृष्टि और मिथ्या दृष्टि दोनो के होता है। जैसे ज्ञान को क्षयोपशम भाव बताया गया है वैसे चारित्र को भी क्षयोपशम भाव बताया गया है क्षयोपशम भाव अठारह प्रकार का है जैसा कि–

ज्ञानाऽज्ञान दर्शन लब्धय इस सूत्र द्वारा अठारह भेदो के नाम लिये गये है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि जैसे ज्ञान क्षयोपशमभाव होने से मिथ्या दृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनो मे रहता है। इसी प्रकार चरित्र भी मिथ्या दृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनो मे रहता है यह अनुभव एव प्रत्यक्ष सिद्ध है कि मिथ्या दृष्टि मनुष्यो मे मिथ्या चारित्र प्रत्यक्ष देखा जाता है क्योकि वे कुदेव कुशास्त्र और कुगुरुओ को मानते हैं। उन्हे पूजते है। भस्म लपेट कर, पचाग्नि तप कर, रात्रि भोजन कर, अभक्ष भक्षण कर अनेक प्रकार से मिथ्या आचरण द्वारा मिथ्या चारित्र का पालन करते हैं। जब मिथ्या चारित्र का सद्भाव मिथ्या दृष्टियो मे पाया जाता है तब सम्यग्दृष्टि के भी चतुर्थ गुण स्थान मे चारित्रका सद्भाव अवश्य है। वह चारित्र मिथ्या चारित्र नही है। किन्तु सम्यक चारित्र है। सम्यक दृष्टि के चारित्र को अचारित्र अथवा मिथ्या चारित्र बताना सर्वथा सिद्धान्त विरुद्ध है जो तीसरे गुण स्थान मे मिथ्या दृष्टि का चारित्र था वही चतुर्थ गुण स्थान मे सम्यग्दर्शन होने पर सम्यक चारित्र हो जाता है। इसी बात को हम समयसार, राजवार्तिक आदि शास्त्रो के प्रमाणो से सिद्ध करते हैं।

समयसार के सस्कृत टीकाकार आचार्य जयसेन लिखते हैं—

"यदा काल लब्धिवशेन भव्यत्व शक्तेर्व्यक्तिर्भवति तदाय जीव सहज शुद्धपारिणामिकभाव लक्षण निज परमात्म द्रव्य सम्यक् श्रद्धान ज्ञानानुचरण पर्यायेण परिणमति" (समयसार) –

अर्थ–जब काल लब्धि आजाने के कारण भव्यत्व शक्ति प्रगट हो जाती है तब यह जीव स्वभाव से शुद्ध पारिणामिक लक्षण वाले अपने परमात्य द्रव्य का सम्यक् श्रद्धान सम्यक् ज्ञान और सम्यक् अनुसरण

रूप पर्याय से परिणत हो जाता है। अर्थात् काल लब्धि आने पर इस जीव को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। उसी समय उसके भव्यत्व गुण का विकाश होता है। और उसी समय सम्यग्दर्शन के साथ सम्य ज्ञान और सम्यक चारित्र भी हो जाता है। इसका खुलासा यह है कि काल लब्वि और भव्यत्वभाव का विकाश कहने से चतुर्थ गुणस्थान का कथन सिद्ध होता है। और उसी चतुर्थ गुण स्थान मे सम्यग्दर्शन के साथ सम्यज्ञान और सम्यक् चारित्र भी होता है यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है। पचाध्यायी मे भी यही बात कही गई है कि—

भव्यभाव विपाका द्वा जीव सम्यकत्वमस्नुते

अर्थात् भव्यत्वभाव के विपाक (पक्क परिणमन) से जीव सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है। यह भी चतुर्थ गुण स्थान का स्पष्ट सूचक श्लोक है अर्थात् चतुर्थ गुण स्थान मे सम्यक् चारित्र भी होता है और आत्मा मे अनुसरण होने का अर्थ स्वरूपाचरण चारित्र है पचाध्यायी और समयसार के कथन मे कोई अन्तर नही है दोनो के कथन से स्वरूपाचरण चारित्र की सिद्धि होती है।

जैन दर्शनाचार्य- श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
रचित इस ग्रन्थ का व्यवहार निश्चय सम्यग्दर्शन
का स्वरूप तथा चतुर्थ गुण स्थान मे
सम्यक्चारित्र का प्रतिपादक

तृतीय अध्याय समाप्त

अ॰ चतुर्थ अ॰ ॥

सम्यग्दर्शन मूल धर्म है, उस सम्यग्दर्शन के साथ सम्यक्चारित्र और स्वरूपा चरण चारित्र का भी सद्भाव चतुर्थ गुण स्थान मे शास्त्र सम्मत है

चतुर्थ गुण स्थान में स्वरूपाचरण चारित्र शास्त्र सम्मत है

आशिक स्वरूपाचरण चारित्र चतुर्थ गुण स्थान मे अवश्य एव अनिवार्य होता है यह पूर्वाचार्यों के वचनो से सुसिद्ध है। इस विपय मे किन्ही विद्वानो का मतभेद है परन्तु चतुर्थ गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र नही मानने से निश्चय सम्यग्दृष्टि की विशुद्धि और उसके लोकोत्तर असाधारण महत्व को घटाने की बात है। जो विद्वान निश्चय सम्यग्दृष्टि (चतुर्थ गुण स्थान वर्ती) के स्वरूपाचरण चारित्र का सद्भाव नही मानते हैं निपेध करने के उनके दो हेतु हैं–

पहला हेतु तो उनका यह है कि जो स्थानक वासी सम्प्रदाय को छोडकर नये दि० जैन बने हैं वे (सोनगढ पथी) चौथे गुण स्थान मे स्वरूपाचरण चारित्र मानते हैं यदि हम भी उनकी इस मान्यता

का समर्थन करे तो उनकी नवीन विचारधारा की मान्यता बढ जायगी । और उनका आगम विरुद्ध प्रचार बढने लगेगा इसलिये स्वरूपाचरण चारित्र अविरत सम्यग्दृष्टि के नही मानना चाहिये। परन्तु यह हेतु ठीक नही है क्योकि यदि कोई दि० जैन सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत प्रचार करता है तो उसकी बात का तो विरोध करना आवश्यक है परन्तु उसके विरोध मे आगम पक्ष अथवा सिद्धान्त का विरोध नही करना चाहिये। निश्चय एकान्तवादी मोक्ष मानते हैं तो क्या आगमवादियो को मोक्ष नही मानना चाहिये। वे लोग समयसार का स्वाध्याय करते हैं तो क्या आगमवादी विद्वानो को समयसार का स्वाध्याय छोड देना चाहिये। वे जिन दर्शन और जिन पूजा करते हैं तो क्या जिन दर्शन और जिन पूजा यथार्थ श्रद्धानियो को छोड देना चाहिये। वे अपने को दि० जैन कहते है तो क्या आगम वादियो को दि० जैन कहना छोड देना चाहिये ? नही ! इसलिये यह पहला हेतु नि सार है। अनार्षवादी यदि निश्चय सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र का समर्थन करता है तो उसका कहना किसी दूसरे प्रयोजन से है उस पर ध्यान नही देकर शास्त्र समस्त सिद्धान्त का तो विरोध नही करना चाहिये।

हम क्या समस्त समाज और विद्वान त्यागी सभी भले प्रकार समझ चुके है कि जो लोग खान-पान शुद्धि एव जिन पूजन मुनिदान आदि धार्मिक क्रियाओ को जड शरीर की क्रिया बताते है द्रव्य शुद्धि की आवश्यकता नही बताते केवल भावो का ही गुणगान करते हैं। साथ ही तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि से, किसी जीव का कोई हित होना नही मानते है आत्मा से कर्मो का सबन्ध तक नही मानते है जो जीव दया जैसे श्रावक तथा मुनियो के मूल भूत व्रताचरण को भी अधर्म और हिंसा बताते हैं और जिन वाणी को परस्त्री के समान त्याज्य बताते है। ऐसे अनार्पवादी लोग चौथे गुण स्थान मे स्वरूपाचरण चारित्र बतावे या साख्य मत के समान ससारी आत्मा को भी परम

शुद्ध माने तो मानो उनको तो अनार्षवादी ही माना जायगा। परन्तु आगमनिष्ठ विद्वानो को तो आगम का ही समर्थन करना चाहिये। अन्यथा सिद्धान्त एव वस्तु स्वरूप का अपलाप होता है।

दूसरा कारण यह है कि जो विद्वान चतुर्थ गुण स्थान मे स्वरूपाचरण चारित्र के निषेध मे जो जो शास्त्रो के प्रमाण देते हैं उनके समझने मे भूल है। उसी का खुलासा हम वहुत सक्षेप से सार रूप करते है। पहले यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि स्वरूपाचरण चारित्र चौथे गुण स्थान मे हो या नही हो इससे किसी का या हमारा कोई हानि लाभ नही है शास्त्रो से जो सिद्ध हो उसे मानना चाहिये। आगम मानने वालो मे कोई मतभेद या पक्ष विपक्ष की वात भी नही होनी चाहिये। किन्तु सम्यग्दृष्टि का क्या स्वरूप है और कितनी आत्म विशुद्धि है उस वस्तु स्वरूप का एव सिद्धान्त का प्रतिपादन ही हितकारक है इसी सद्भावना से हम इस विषय का स्पष्टीकरण करते है।

सम्यग्दर्शन धर्म नहीं है उसमे चारित्र भी नही है यही मान्यता विरोध का कारण है

सवसे पहली वात यह है कि जो आगम की आज्ञा को मानते है वे भी यह वार२ लिखते हैं कि सम्यग्दर्शन धर्म नही है किन्तु धर्म का मूल है। एसा वे इसलिये कहते हैं कि चौथे गुण स्थान मे स्वरूपाचरण चारित्र का वे निषेध करते है इसकी पुष्टि मे वे उस गुण स्थान मे चारित्र नही वताते हैं। उनका दृष्टिकोण यह है कि जव चौथे गुण स्थान मे धर्म और चारित्र दोनो नही हैं तव स्वरूपाचरण चारित्र वहा कैसे हो सकता है ? अर्थात् नही हो सकता है इसके प्रमाण मे "चारित्त खलु धम्मो" यह कहते है चारित्र धर्म है। सम्यग्दर्शन धर्म नही है। परन्तु उनका ऐसा कहना सिद्धान्त विरुद्ध है। आचार्यों ने

चारित्र को धर्म कहा है यह ठीक है किन्तु और भी तो धर्म है उनका निषेध तो नही किया है ।

आचार्यों ने- "वत्थु सहावो धम्मो, जीवाणरक्खण धम्मो" आदि भी धर्म बताये हैं वस्तुओ का स्वभाव भी धर्म है जैसे पुद्गल का धर्म रूप रस गध स्पर्श है जीव का धर्म ज्ञान दर्शनादि है। रत्नत्रय भी धर्म है जीवो की रक्षा भी धर्म है अहिंसा परम धर्म है। सम्यग्दर्शन भी धर्म है। जो विद्वान सम्यग्दर्शन को धर्म नही बताते हैं वे बहुत बडी भूल मे है। सम्यग्दर्शन तो धर्म का मूल है धर्म एव मोक्ष मार्ग मे प्रधान धर्म है।

सम्यग्दर्शन मूल धर्म है इसके ण

आचार्य शिरोमणि समन्त भद्र स्वामी ने धर्म का स्वरूप इस प्रकार कहा है-

सद्दष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदु

अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यज्ञान सम्यक् चारित्र ये रत्नत्रय ही धर्म है। ऐसा तीर्थंकर भगवान कहते हैं।

पचाध्यायी कार कहते हैं—

स धर्मं सम्यगदृगज्ञप्ति चारित्र त्रितयात्मक
तत्र सद्दर्शन मूल हेतुरद्वैतमेतयो

अर्थ—वह धर्म सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के तीन रूप हैं उन तीनो धर्मों मे सम्यग्दर्शन मूल धर्म है। अर्थात इस मूल धर्म के बिना ज्ञान चारित्र दोनो धर्म ही नही ठहरते हैं।

जैसे कोई कहे कि जड शाखा पुष्प फल रूप वृक्ष है। बीज वृक्ष नही है तो यह कहना गलत है। क्योकि वृक्ष मे बीज का अभाव नही है किन्तु वह बीज ही वृक्ष रूप परिणत हुआ है। बीज के अभाव मे वृक्ष नही हो सकता है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान

चारित्र दोनो सम्यज्ञान और सम्यक चारित्र नही कहला सकते है। अत सम्यग्दर्शन तो प्रधान धर्म है। और भी प्रमाण पढिये–

तत सागाररूपोवा धर्मोऽनागार एव वा
सम्यक पुरस्सरो धर्म न धर्म तद्विना क्वचित्
(पचाध्यायी)

अर्थ — चाहे गृहस्थ धर्म हो चाहे मुनि धर्म हो किन्तु सम्यग्दर्शन पूर्वक ही धर्म होता है उसके बिना कुछ भी धर्म नही है। अर्थात मुख्य धर्म अथवा पहला धर्म सम्यग्दर्शन ही है। और भी प्रमाण–

धर्म सम्यक्त्वमात्रात्मा शुद्धस्यानुभवोऽथवा
तत्फल सुखमत्यक्ष अक्षय क्षायिकश्च तत्
(पचाध्यायी)

अर्थ– सम्यग्दर्शन रूप ही धर्म है अथवा आत्मा का शुद्ध अनुभव धर्म है। उसी धर्म का फल अतीद्रिय अविनाशी क्षायिक सुख है। जिसका अर्हत भगवान का सुख रूप फल है उस सम्यग्दर्शन को धर्म नही कहा जाय यह बात सर्वथा धर्म विपरीत है। कार्य कारण भाव वस्तु स्वरूप है। उपादान कार्य की सिद्धि मे वाह्य कारण भी होते है परन्तु काय से अभिन्न अन्तरग कारण प्रधान है। जैसे घडे के बनने मे कुम्हार चाक दडा आदि कारण तो बाहरी हैं वे निमित्त कारण है किंतु घडा बनने मे मिट्टी उपादान कारण है वह घडे की ही पूर्व पर्याय हे अथवा घडे का मूल तत्व है उस मिट्टी को घडे का कारण या घडे रूप नही कहा जाय तो यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है। वस्तु स्वरूप से एव कार्य कारण सिद्धान्त से सर्वथा विरुद्ध है। इसी प्रकार धर्म का मूल धर्म सम्यग्दर्शन है उसे धर्म नही माना जाय यह सर्वथा सिद्धान्त विरुद्ध है।

सम्यग्दृष्टि के सम्यक्चारित्र हैं

स्वरूपाचरण चारित्र असयत सम्यग्दृष्टि के नही होता है ऐसा मानने वाले विद्वान चौथे गुण स्थान मे चारित्र ही नही मानते है उनके

मत के अनुसार जब चौथे गुण स्थान मे चारित्र ही नही होता है तब स्वरूपाचरण कैसे हो सकता है ? परतु उनका ऐसा समझना भी भूल भरा एव सिद्धान्त सम्मत नही है। हम इसी प्रसग मे पहले अनेक प्रमाणो से सिद्ध कर चुके हैं कि व्यवहार सम्यग्दृष्टि के भी चारित्र होता है। तब निश्चय सम्यग्दृष्टि के तो नियम से सच्चारित्र होता है। यह भी हम स्पष्ट कर चुके हैं कि सम्यग्दृष्टि का चारित्र मिथ्या चारित्र नही है। क्योकि मिथ्यात्व कर्म और अनतानुवधि कर्म का उदय सम्यग्दृष्टि के नही है और सम्यग्दर्शन को प्रगट नही होने देने वाला सम्यड मिथ्यात्व का भी चौथे गुण स्थान मे उदय नही है अत सम्यग्दृष्टि का ज्ञान और चारित्र दोनो ही सम्यग्दर्शन के प्रगट होते ही सम्यज्ञान और सम्यक चारित्र रूप हो जाते हैं यह सम्यग्दर्शन गुण का माहात्म्य है।

भजनीय का समाधान

चौथे गुण स्थान मे चारित्र नही मानने वाले विद्वान यह भी कहते हैं कि सम्यग्दर्शन के साथ सम्य ज्ञान तो हो जाता है परन्तु सम्यक चारित्र नही होता है वह भजनीय हैं अर्थात् वह आगे के पाचवें गुण स्थान और छठे आदि गुग स्थानो मे होगा। प्रमाण राजवार्तिक शास्त्र का देते है। परन्तु राजवार्तिक की पक्तियो को समझ लेने से वह प्रमाण उनके कहने के विरुद्ध ही पडता है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-

आत्म स्वरूपाभाव प्रसगात यदि सम्यग्दर्शन लाभे ज्ञान भजनीयत्वादसद्विरोधात् मिथ्याज्ञान निवृत्तौ सम्यज्ञानस्य चाभावात् ज्ञानोपयोगाभाव आत्मन प्रसक्त (राजवार्तिक)

यहा यह शका उठाई गई है कि यदि सम्यग्दर्शन हो जाने पर ज्ञान भजनीय है तो मिथ्या ज्ञान के नष्ट होने पर सम्यज्ञान का सद्भाव तो रहेगा नही। वह तो भजनीय होगा तब ज्ञानोपयोग का अभाव ही होगा ? इसके उत्तर मे कहा गया है कि-

कचन ज्ञानमित्येतत्परिसमाप्यते श्रुतकेवलयो
यत श्रुत केवल ज्ञान ग्राही शब्दनय श्रुत केवल एव
इच्छति नान्यज्ज्ञानमपरिपूर्णत्वात् इति तद पेक्ष सपूर्ण
द्वादशाग चतुर्दशपूर्व लक्षण श्रुत केवल च भजनीयमुक्तम्,
(राजवार्तिक)

अर्थात् सम्यज्ञान की समाप्ति श्रुत केवली और केवली मे होती है। अत द्वादशाग लक्षण श्रुतज्ञान तथा केवल ज्ञान भजनीय है। इसका भावार्थ यह है कि सम्यज्ञान तो सम्यग्दर्शन के प्राप्त होते ही हो जाता है उसका अभाव नही है किंतु पूर्ण श्रुत ज्ञान और केवल ज्ञान भजनीय है तथा पूर्व सम्यग्दर्शन लाभे देश चारित्र, सयतासयतस्य सर्व चारित्र प्रमत्तादारभ्य सूक्ष्मसापरायन्तांना यच्च यावच्च नियमादस्ति सपूर्ण यथाख्यात चारित्र तु भंजनीयम्
(राजवार्तिक)

अर्थात् सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाने पर सम्यक्त्वाचरण रूप चारित्र तो हो जाता है आगे देश सयम उसके आगे सकल सयम उसके आगे यथा ख्यात चारित्र भजनीय हैं।

अत चौथे गुण स्थान मे जैसे सामान्य सम्यज्ञान है उसी प्रकार सामान्य चारित्र भी हैं, जैसे सामान्य सम्यज्ञान से ऊपर २ विशेष २ सम्यज्ञान—श्रुत केवल और केवल ज्ञान तक भजनीय है उसी प्रकार चौथे गुण स्थान मे सामान्य सम्यक् चारित्र (सम्यक्त्वाचरण रूप) होता है उससे ऊपर देश सयम पाचवे मे और सकल सयम (छठे से १०वे गुण स्थान तक) आगे यथा ख्यात चारित्र भजनीय है।

इससे स्पष्ट सिद्ध है जैसे सम्यग्दर्शन के साथ सम्यज्ञान हो जाता है वैसे सम्यक् चारित्र भी हो जाता है।

यही बात श्लोक वार्तिक मे "तेषा पूर्वस्य लाभेपि भाज्यत्वादुत्तरस्य च" इस श्लोक से लेकर अनेक शका समाधान द्वारा यही

सिद्ध किया गया है कि चौथे गुण स्थान मे सम्यग्दर्शन के साथ सम्य ज्ञान और सम्यक् चारित्र भी होते हैं परन्तु आगे २ विशेष ज्ञान चारित्र की प्राप्ति की जाती है वह पूर्व की अपेक्षा भजनीय है अर्थात् अविरत सम्यग्दर्शन के साथ विशेष ज्ञान और देश सयम आदि विशेष चारित्र नही होता है। किन्तु सम्यक् चारित्र तो होता है। राजवार्तिक का प्रमाण हम दे चुके हैं अत श्लोक वार्तिक के प्रमाण के स्पष्टीकरण की आवश्यकता नही है।

अनन्तानुबंधी मे सम्यक्त्व और चारित्र दोनो को घातने की शक्ति है

चतुर्थ गुण स्थान मे असयत सम्यग्दृष्टि के सम्यक् चारित्र नही है। क्योकि अनतानुवधी कपाय केवल सम्यग्दर्शन को ही घातती है ऐसा कोई विद्वान कहते है। वे अपने कथन की पुष्टि मे यह कहते है कि आदि के चार गुण स्थान दर्शन मोहनीय की अपेक्षा से कहे गये हैं।

"दसणमोह पडिच्च भणिदाहु" यह गोम्मटसार का प्रमाण देते है। उनके कहने का साराश यह है कि जब चार गुण स्थान दर्शनमोहनीय की अपेक्षा से होते हैं तो अनतानुवधी कषाय सम्यग्दर्शन को ही घातती है चारित्र को नही घातती है। परन्तु वे विद्वान इस प्रमाण का एक अश ही पकडते है गाथा के आशय को पूर्णता से ग्रहण नही करते हैं। उस गाथा का आशय इतना है कि पहले गुण स्थान से लेकर चौथे गुण स्थान अविरत सम्यग्दृष्टि तक दर्शन मोहनीय की अपेक्षा है क्योकि वहा तक मिथ्यात्व अनतानुवधी और सम्यङ् मिथ्यात्व इन तीन प्रकृतियो के उदय के कारण सम्यग्दर्शन नही होता है। चौथे गुण स्थान मे उनका अभाव होने से सम्यग्दर्शन हो जाता है परन्तु वहां देश सयम नही होता है क्योकि उसका घातक अप्रत्याख्यान कपाय है वह अविरत सम्यग्दृष्टि को देश सयम नही

होने देती है किंतु सम्यग्दर्शन के साथ होने वाले सम्यक्त्वाचरण (स्वरूपाचरण) को घातने वाला अनतानुवधी है। उस के अभाव मे जैसे सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है वैसे सम्यक्त्वाचरण भी प्रगट हो जाता है।

जो विद्वान् चौथे गुण स्थान मे स्वरूपाचरण का निषेध करते है वे यह कहते हैं कि अनतानुवधी कषाय केवल सम्यग्दर्शन का ही घात करती है चारित्र का घात तो अप्रत्याख्यान कषाय करती है इसलिये चौथे गुण स्थान मे स्वरूपाचरण चारित्र नही होता है। परन्तु उनका ऐसा समझना शास्त्र सम्मत नही है। इस सबध मे शास्त्र सम्मत समाधान इस प्रकार है—

पहली बात तो यह है कि अनतानुवधी कषाय चारित्र मोहनीय का भेद है। सोलह कषाय और नवनोकषाय ये पच्चीस भेद चारित्र मोहनीय के हैं अत चारित्र का घात करना उसका कार्य है। मिथ्यात्व सम्यड्‌मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्व ये तीन भेद दर्शन मोहनीय के हैं यदि अनतानुवधी कषाय केवल सम्यग्दर्शन का ही घात करती है तो उसे दर्शन मोहनीय मे क्यो नही गिनाया गया ? इससे यह सिद्ध है कि अनतानुवधी चारित्र का तो घात करती ही है साथ ही सम्यग्दर्शन का भी घात करती है। उसमे दोनो को घात करने की शक्ति है। जिस प्रकार धतूरे के वृक्ष मे दो प्रकार की शक्ति है। धतूरे के पत्ते और उसके फल मे विष होने से मनुष्य को मारने की शक्ति है किन्तु उसकी जड मे विष को दूर करने की शक्ति है। धतूरे के पत्ते और फल खाने वाले को विष चढ़ जाता है। उसे धतूरे की जड पीसकर पिलादी जाय तो उसका विष नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार अनतानुवधी मे सम्यग्दर्शन और चारित्र दोनो को घात करने की शक्ति है इसका शास्त्र प्रमाण यह है—

धवल सिद्धान्तशास्त्र मे आचार्य वीर सेन स्वामी ने लिखा है–

"अणताणुवधिणो कोह माण माया लोहा एदे चत्तारिवि सम्मत चारित्ताणा विरोहिणो दुविहि सत्ति सजत्तादो,,
(धवल शास्त्र)

अर्थ— अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चारो सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की विरोधी प्रकृति है क्योकि उनमे सम्यग्दर्शन और सम्यकचारित्र दोनो को घातने की शक्ति है। अब दूसरे प्रमाण देने की आवश्यकता नही है। धवल सिद्धान्त शास्त्र का प्रमाण ही पर्याप्त है। इसी प्रकरण मे आचार्य वीरसेन स्वामी ने और भी शकाये उठाकर समाधान किया है। उन्होने अनन्तानुबधी मे दोनो प्रकार की शक्ति सिद्ध करने के लिए लिखा है-

"न तस्य मिथ्यादृष्टि व्यपदेश किन्तु सासादन इति व्यपदिश्यते किमित मिथ्यादृष्टि रिति न व्यपदिश्यते चेन्न अनतानुवन्धिना द्विस्वभावत्व प्रतिपादन फलत्वात्" (धवलसिद्धात शास्त्र)

अर्थ — दूसरे गुण स्थान को सासादन कहा गया है इसी से सिद्ध होता है कि अनन्तानुबधी कपाय मे सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र दोनो को घातने की शक्ति है अन्यथा अनतानुवधी यदि सम्यग्दर्शन का ही घात करती तो दूसरे गुण स्थान सासादन को अलग कहने की आवश्यकता नही होती केवल मिथ्यादृष्टि पहला गुण स्थान कह दिया जाता। अर्थात अनन्तानुबधी चारित्र मोहनीय का भेद होने से वह स्वरूपाचरण चारित्र (सम्यक्त्वाचरण) को रोक देती है। आगे और भी स्पष्ट किया गया है-

"यस्मान्च विपरीताभिनिवेशोऽभूदनतानुबधिनो न तत्दर्शन मोहनीय तस्य चारित्रावरणत्वात् तस्योभयप्रतिवधकत्वात् उभयव्यवदेशो न्याय्य इतिचेन्न इष्टत्वात् सूत्रे तथानुपदेशो नयापेक्ष" (धवल शास्त्र)

जो विपरीत अभिनिवेश (विपरीत परिणाम) अनन्तानुवधी कपाय से होता है वह विपरीत भाव दर्शन मोहनीय के उदय से नही

होता है किन्तु वह चारित्र मोहनीय के उदय से होता है यहा इस शका का भी समाधान किया गया है कि जब अनतानुबधी दोनो का घात करती है तब उसे दोनो रूप कहना चाहिये इसके उत्तर मे वीरसेन स्वामी कहते हैं कि उभय रूप कहना हमे इष्ट है किन्तु नय विवक्षा से वैसा नही कहा गया है। नय विवक्षा भी यही है कि चौथे गुण स्थान तक असयम की प्रधानता है। और सम्यङमिथ्वात्व के अभाव मे होने वाले सम्यग्दर्शन की प्रधानता है। देश सयम नही होने से चारित्र की प्रधानता नही ली गई है। किन्तु अनतानुबधी के उदय मे सम्यग्दर्शन और उसका अविनाभावी सम्यक्त्वाचरण नही होता है। इसीलिये अनतानुबधी कषाय को चारित्र मोहनीय मे गिनाया गया है दो मिथ्यात्व प्रकृतिया और अनतानुबधी चार प्रकृतिया ये छह प्रकृतिया सम्यग्दर्शन को प्रगट नही होने देती है इसलिये आदि के चार गुण स्थान दर्शन मोहनीय की अपेक्षा से कहे गये है परन्तु अनतानुबधी मे चारित्र घातने की भी शक्ति होने से दूसरा सासादन गुणस्थान कहा जाता है। यदि अनतानुबधी मे केवल सम्यग्दर्शन को घातने की शक्ति होती तो उसके उदय मे औदेयिक भाव कहा जाता किन्तु सासादन गुण स्थान को पारिणामिक भाव कहा गया है क्योकि उसमे दर्शन मोहनीय का उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम नही है। इससे स्पष्ट है कि अनन्तानुबधी चारित्र मोहनीय का भेद होने पर भी उसमे सम्यग्दर्शन और चारित्र दोनो को घातने की शक्ति है।'

धवल सिद्धान्त का इतना स्पष्ट प्रमाण मिलने पर भी अनतानुबधी को केवल सम्यग्दर्शन का ही घातक मानना सिद्धान्त शास्त्रो के विरुद्ध है।

श्लोक वार्तिक मे लिखा है

भव हेतु प्रहाणाय वहिरभ्यत्तर क्रिया विनिवृत्ति पर सम्यक्चारित्रम्। नापि सा मिथ्यादृश तद्भवति ज्ञानिन इति वचनाम् ॥

अर्थ — ससार के कारणो को हटाने के लिए वाह्य और अभ्यन्तर क्रिया की निवृत्ति होना ही मुख्य सम्यक चारित्र है वह वाह्य और अभ्यन्तर क्रिया की निवृत्ति मिथ्यादृष्टि को नही हो सकती है क्योकि ज्ञानी के ही हो सकती है ऐसा कहा गया है । अर्थात् वह क्रिया निवृत्ति सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के ही होती है । इससे स्पष्ट है कि चौथे गुण स्थान मे उसके सम्यक चारित्र होता है ।

राजवार्तिक मे लिखा है कि– "*अज्ञान पूर्वकाचरण निवृत्यर्थं सम्यग्विशेषणम्*" अर्थात अज्ञान पूर्वक आचरण की निवृत्ति के लिए सम्यक विशेषण दिया गया है । इस वार्तिक से भी यह सिद्ध होता है कि सम्यग्दर्शन के साथ जो ज्ञान और चारित्र है वह सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र है । वह चौथे गुण स्थान का द्योतक है क्योकि चौथे गुण स्थान मे अज्ञान पूर्वक आचरण नही होता है सम्यग्दृष्टि की क्रयायें परपरा मोक्ष साधक होती हैं अज्ञान पूर्वक आचरण मिथ्या दृष्टि के होता है । अत सम्यग्दृष्टि का आचरण सम्यक चारित्र है । सम्यग्दृष्टि के चारित्र को मिथ्या चारित्र नही कहा जासकता है । श्लोकवार्तिक मे स्पष्ट लिखा है–

मिथ्यादृगादि हेतु स्यात् ससार तदपक्षये क्षीयमाणात्वतो वातविकारादिजरोगवत् । सम्यक चारित्र वतस्तु मिथ्या चारित्र स्याऽपक्षये तद्भवमात्र ससार सिद्धे मोक्ष प्राप्ते सिद्धमेव ससारस्य क्षीयमाणात्वम् । (श्लोक वार्तिक)

अर्थ — मिथ्या दर्शन आदि (आदि पद से अनतानुबधि प्रकृति) ससार के कारण हैं । उन मिथ्यात्वादि के नाश होने पर जैसे औषधि से वात विकारादि रोग नष्ट हो जाते है उसी प्रकार सम्यक चारित्र वाले का मिथ्या चारित्र नष्ट हो जाता है । उस सम्यग्दृष्टि का तो ससार उसी भव तक रह जाता है अर्थात क्षायिक सम्यग्दृष्टि उसी भव से भी मोक्ष जासकता है ससार उसका नष्ट हो जाता है ।

यहा पर चारित्र मोहनीय का अभाव नही बताया गया है किंतु मिथ्या दर्शन और अनतानुबधी का ही अभाव बताया गया है इससे चतुर्थ गुण स्थानवर्ती का ही सम्यक चारित्र लिया गया है यह बात प्रामाणिक है कि सम्यग्दृष्टि का ससार नाम मात्र थोडा रह जाता है अनन्त ससार उसके नही हो सकता है।

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

दृडमोहोपशमे सम्यग्दृष्टेरुल्लेख एव स
शुद्धत्व सर्व देशेपु त्रिधा बधापहारियत् (पचाध्यायी)

अर्थ — दर्शन मोहनीय कर्म के उपशम होने पर सम्यग्दृष्टि का आत्मा सर्व देशो मे (सर्व आत्म प्रदेशो मे) शुद्ध हो जाता है और तीन प्रकार के बध को द्रव्यबध, भावबध, उभयबध को नष्ट कर देता है। सम्यग्दृष्टि का ससार एक प्रकार छूट जाता है।

आचार्य समत भद्र कहते हैं–

मद्य मास मधु त्यागै सहाणुव्रत पञ्चकै
अष्टौ मूलगुणानाहु गृहिणा श्रवणोत्तमा (रत्नकरडश्रा)

अर्थ – मद्य, मास मधु के त्याग के साथ पचाणुव्रत को धारण करना आठ मूल गुण कहे जाते हैं। इस कथन से चौथे गुण स्थान मे सम्यक चारित्र का विधान सिद्ध होता है।

पंडित दौलतराम जी का भी समर्थन है

पडित प्रवर दौलतराम जी के छहढाला का प्रमाण देकर अविरत सम्यग्दृष्टि के चारित्र नही होता है। ऐसा जो कहते है वे स्वय भ्रम मे हैं छहढाला में कहा गया है कि "चरित मोहवस लेस न सयम" अर्थात चारित्र मोहनीय के उदय की परवशत्ता से अविरत सम्यग्दृष्टि के लेशमात्र भी सयम नही है। इसका स्पष्ट अर्थ वाक्य से ही हो जाता है। दौलतराम जी चौथे गुण स्थान मे चारित्र का

निपेध नही करते है किन्तु सयम का निपेध करते है एक देश सयम अप्रत्यास्यानावरण कपाय के अभाव मे होता है । किंतु अनतानुवधी कपाय के अभाव मे चारित्र अवश्य होता है परतु वह चारित्र तीसरे गुण स्थान तक मिथ्या चारित्र है । सम्यडमिथ्यात्व का अभाव होने पर सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है । तभी वह चारित्र सम्यक चारित्र हो जाता है । इसके प्रमाण मे आचार्य कु दकु द स्वामी ने चारित्र के दो भेद बताये है एक सम्यक्त्वाचरण दूसरा सयमाचरण जैसा कि हम ऊपर लिख चुके है ।

सम्यग्दर्शन का विशेष माहात्म्य

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य ज्ञान चारित्र से भी बढकर है जैसा कि आचार्य समतभद्र स्वामी ने कहा है—

> दर्शन ज्ञानचारित्रात् साधिमानमुपाश्नुते
> दर्शन कर्णधार तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते (रत्नकरडश्रा)

अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र से भी अधिक एव प्रधान है। मोक्षमार्ग मे वह खेवटिया के समान माना जाता है । ऐसा अपरिमित माहात्म्य वाला सम्यग्दर्शन केवल श्रद्धान रूप ही नही है किंतु अत्यत विशुद्ध एव जीव दया पालक चारित्रयुक्त भी है ।

और भी खुलासा यह है कि पहले से तीसरे गुण स्थान तक ज्ञान भी है और चारित्र भी है। उन दोनो का सद्भाव है इसीलिये मिथ्याज्ञानी के क्रियावादी आदि भेद गोमटसार मे बताये गये हैं । वे पाखण्डी मिथ्या चारित्र वालो के ही भेद हैं। किन्तु जब चतुर्थ गुण स्थान मे सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है तभी उसके प्रभाव से ज्ञान सम्यज्ञान और चारित्र सम्यक् चारित्र बन जाता है। इसलिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनो का अविनाभाव होने से चौथे मे तीनो का सद्भाव एव मोक्ष मार्ग का प्राथमिक रूप है ।

चौथे गुण स्थान मे चारित्र और स्वरूपाचरण विधायक प्रमाण

अविरत सम्यग्द्रष्टि के स्वरूपाचरण और सम्यक् चारित्र अवश्य होता है इसकी सिद्धि इस प्रकार है–

आचार्य मुकुट कु दकु द स्वामी कहते है–

जिणणाम दिठ्ठि सुद्ध पढम सम्मत्त चरण चारित्त
विदिय सजय चरण जिणणाण सदेसिय तपि

(चारित्र पाहुड)

आचार्य कु दकु द स्वामी कहते है कि चारित्र दो प्रकार का है पहला चारित्र सम्यक्त्वाचरण है दूसरा चारित्र सयमाचरण चारित्र है। दोनो प्रकार का चारित्र जिनेन्द्र भगवान ने वताया है।

जो कोई विद्वान यह लिखित समाधान करते है कि चौथे अविरत गुण स्थान मे किसी प्रकार का कोई चारित्र नही होता है क्योकि वह अविरत सम्यग्दृष्टि है उसके नाम मात्र भी चारित्र नही होता है उन्हे ऊपर के गाथा से समझ लेना चाहिये कि देश सयम से पहले भी भगवान कु दकु द स्वामी ने चारित्र वताया है। वह भी सहेतुक है क्योकि अविरत सम्यग्दृष्टि के अनतानुवधी चारित्र मोहिनी कषाय का अभाव होने के चारित्र प्रगट हो गया है और वह चारित्र सम्यग्दर्शन के साथ होने से सम्यज्ञान के समान सम्यक चारित्र है। इसी सम्यक्त्वाचरण का खुलासा कु दकु द स्वामी ने और भी किया है वह भी पढिये–

एव चियणाऊणय सब्वे मिच्छत्त दोस सकाइ
परिहरि सम्मत्तमला जिणभणिया तिविह जोगेण

(आचार्य कु दकु द स्वामी)

अर्थ – इस प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्र को जानकर समस्त मिथ्यात्व कर्म के उदय से होने वाले शकादि दोपो को और सम्यग्दर्शन मे आने वाले मलो का मन वचन काय से त्याग करदो ऐसा जिनेन्द्र भगवान

ने कहा है। अर्थात् सम्यक्त्वाचरण चारित्र से सभी दोष और मलो का त्याग कर दिया जाता है।

त चेव गुण विसुद्ध जिण सम्मत्त सुमुक्ख ठाणाय
ज चरइ णाण जुत्त पढम सम्मत्त चरण चारित्त
(चारित्र पाहुढ)

आचार्य कुदकुद स्वामी कहते है कि जो सम्यक्त्वाचरण से विशुद्ध सम्यग्दर्शन है वह मोक्ष का देने वाला है उसका जो सम्यज्ञान के साथ आचरण किया जाता है। वह सम्यक्त्वाचरण चारित्र है। वह पहला चारित्र है।

सम्मत्त चरण शुद्धा सजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा
णाणी अमूढ दिठ्ठी अचिरे पावति णिव्वाण
(चारित्र पाहुढ)

अर्थ – जो सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वाचरण से शुद्ध है और सयमाचरण चारित्र से भी सुप्रसिद्ध है वे सम्यज्ञानी अमूढ दृष्टि शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेते है।

इन उपर्युक्त भगवत् कुदकुद स्वामी के वचनो से यह भली भाति सिद्ध हो जाता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि के भी सम्यकचारित्र है। आचार्य महाराज ने चारित्र के दो भेद बताये है एक सम्यक्त्वाचरण दूसरा सयमाचरण अविरत सम्यग्दृष्टि का चारित्र अनतानुबधी चारित्र मोहनी के अभाव मे होता है। सम्यङमिथ्यात्व प्रकृति के अभाव मे सम्यग्दर्शन के प्रगट हो जाने पर वह चारित्र सम्यकचारित्र हो जाता है। यही सम्यक्त्वाचरण चारित्र स्वरूपाचरण है। क्योकि वह चारित्र आत्मा मे स्थिति-स्व स्वरूप मे स्थिति रूप है। इसलिये सम्यक्त्वाचरण का अपर नाम स्वरूपाचरण है। यह तो बताया गया है कि सम्यग्दर्शन के साथ ज्ञान सम्यज्ञान और चारित्र सम्यक चारित्र हो जाता है यह चारित्र सरूपावलोकन रूप ही है इसीलिये सम्यक्त्वा-

चरण का अपर नाम ही स्वरूपाचरण है इसी बात को आचार्य अमृतचन्द्र सूरि नीचे लिखे श्लोक से स्पष्ट करते हैं ।

दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्म परिज्ञान मिष्यते ज्ञानम्
स्थितिरात्मनि चरित्र कुत ऐतेभ्यो भवति वन्ध

(आचार्य अमृतचन्द्र सूरि)

अर्थ – आत्मा का निश्चय (प्रगाढ श्रद्धा) सम्यग्दर्शन है आत्मा का परिज्ञान होना सम्यज्ञान है और आत्मा मे स्थिति होना (स्व स्वरूप मे लग जाना) चारित्र है। इन तीनो से वध कैसे हो सकता है ? अर्थात् नही होता है ।

इस श्लोक से भी स्पष्ट हो जाता है कि सम्यग्दर्शन से सम्यक्त्वा चरण चारित्र कथचित् भिन्न और उसका अविनाभावी है और वह स्वरूप मे स्थिति रूप है उसी का नाम स्वरूपाचरण चारित्र है। इस रत्नत्रय से बध नही होता है इसीलिये आचार्य ने कहा है कि बध का कारण राग है रत्नत्रय नही है। यही बात अमृतचन्द्र सूरि स्पष्ट करते हैं–

येनाशेन सुदृष्टि स्तेनाशेन वधननास्ति
येनाशेन तु रागस्तेनाशेन बधन चास्ति

अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यज्ञान और सम्यक चारित्र वध के कारण नही है वे तो आत्मा के विशुद्ध गुण हैं किंतु वध का कारण राग है। इतना समझना चाहिये कि जो वध सम्यग्दर्शनादि के प्रगट होने पर होता है वह शुभ राग से होता है उस शुभ राग को प्रशस्त राग कहा गया है राग तो दसवें गुण स्थान तक रहता है अत प्रशस्त राग से जो बघ होता है वह पुण्य बध है वह परम्परा मोक्ष का ही साधक है जैसा कि आचार्य देवसेन स्वामी ने कहा है–

सम्माइट्ठी पुण्ण ससार कारण णत्थि
सम्माइठ्ठि पुण्ण मोक्खस्सेव व कारण होइ

अर्थात् सम्यग्दृष्टि का पुण्य ससार का कारण नही है किन्तु मोक्ष का ही कारण है। उस पुण्य से उत्तम कुल, वज्र वृषभ नाराच सहनन जैन धर्म, मुनि दर्शन की प्राप्ति, जिनेन्द्र श्रद्धा भक्ति, इन्द्र पद जो नन्दीश्वर द्वीप की पूजा पञ्चकल्याणको मे साक्षात् तीर्थंकर भगवान की सेवा आदि का महान् पुण्य का फल प्राप्त करे एक भव धारण कर नियम से मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है। तीर्थंकर पद की प्राप्ति भी पुण्य का फल है। इसलिये सम्यग्दृष्टि का पुण्य बध आत्महित साधक है। वास्तव मे तो सम्यग्दर्शन हो जाने पर ससार का परिभ्रमण एक प्रकार से छूट ही जाता है वह सम्यग्दृष्टि मोक्ष के निकट पहुँच चुका है। अत उसका बध अबध जैसा है।

सम्यग्दृष्टि संसार वर्धक क्रियाओं से मुक्त होजाता है

"ससार कारण विनिवृत्ति प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतो वाह्याभ्यन्तर क्रिया विशेषोपरम, सम्यक्चारित्रम्,, (राजवार्तिक)

अर्थ—ससार को बढाने वाले कारणो को दूर करने के लिये प्रयत्नशील जो सम्यज्ञानी पुरुष है उसके वाह्य और अभ्यन्तर ससार वर्धक क्रियाओ का रुक जाना सो सम्यक् चारित्र है यह चारित्र चतुर्थ गुण स्थान मे भी है। देखिये सर्व एव आत्मा ज्ञानवान् चैतन्यात्, मिथ्या दर्शनोदये विपरीतार्थग्राहित्वात्, मिथ्यादृष्टि अज्ञ तदभावे याथा तथ्येन अर्थविभावनात् सम्यग्दृष्टि प्रशस्तज्ञान तस्य ज्ञानवत (राजवार्तिक)—

अर्थ—सभी आत्माऐ ज्ञानवान् है क्योकि चैतन्य लक्षण सभी आत्माओ मे पाया जाता है। मिथ्यादर्शन कर्म के उदय मे विपरीत अर्थ का ग्रहण होता है इसलिये मिथ्यादृष्टि जीव अज्ञ-अज्ञानी कहा जाता है। उस मिथ्यात्व कर्म के अभाव मे यथार्थ पदार्थ का ग्रहण होने से सम्यग्दृष्टि प्रशस्त समीचीन ज्ञानी कहा जाता है। उस सम्यज्ञानी के ससारवर्धक वाह्य अभ्यन्तर क्रियाओ का निरोध

(अभाव) हो जाता है यही सम्यग्दृष्टि का सम्यक् चारित्र है।

राजवार्तिक के ऊपर की और नीचे की पक्तियो का सवध है उनको मिलाकर पढने से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुण स्थान वर्ती आत्मा मे भी सम्यक् चारित्र होता है। क्योकि राजवार्तिक मे चारित्र मोह का अभाव (इन पक्तियो मे) नही बताया गया है किंतु दर्शन मोह का अभाव बताया गया है इससे बहुत खुलासा हो जाता है कि यह चरित्र का लक्षण चतुर्थ गुण स्थान मे भी लिया गया है। उत्तरोत्तर चारित्र मोहनीय की कमी होते २ वह चारित्र बढता जाता है वीतराग अवस्था मे उत्कृष्ट हो जाता है। सम्यग्दृष्टि आत्मा तत्व विचार और आचरण आगमानुकूल ही करता है। अतरग और वाह्य मे मिथ्या विचार और मिथ्या क्रियाऐं वह नही करता है क्योकि सम्यग्दृष्टि का आत्मा विशुद्ध है अत उसका चारित्र भी सम्यक् चारित्र है।

असख्यात गुणी निर्जरा

जो कर्म बध के कारण हैं उन कार्यो के अभाव मे चारित्र होता है बन्ध के कारण पाच है उनमे मिथ्यात्व कर्म के अभाव अथवा अनुदय मे १६ प्रकृतियो की वधत्युच्छित्ति हो जाती है। दूसरे गुण स्थान मे २५ प्रकृतियो की बधव्युच्छित्ति हो जाती है। चौथे असयत सम्यग्दृष्टि के १० प्रकृतियो की बधव्युच्छित्ति हो जाती है इसलिये ५१ प्रकृतियो की वधव्युच्छित्ति हो जाने से कर्मों के आगमन की क्रिया का निरोध हो जाना ही चारित्र है अत असयत सम्यग्दृष्टि के सम्यक् चारित्र का सद्भाव अवश्य है।

इतना ही नही उसके असख्यात गुणी निर्जरा भी होती है। सम्यग्दृष्टि श्रावक विरतानतवियोजकदर्शन मोह क्षपकोपशमकोपशान्त मोहक्षपकक्षीणमोह जिना (तत्वार्थसूत्र)

सम्यग्दृष्टि के असख्यात गुणी कर्म निर्जरा होती है उससे

गया है। आठ अगो के प्रकरण मे यह कहा गया है। और भी–

रागदीनामनुद्रेक प्रशम ससारभीरुता सवेग सर्व प्राणिषु मैत्री अनुकम्पा, जीवादयोर्था यथा स्वभावै सन्तीति मति रास्तिक्यम् ए एतैरभिव्यक्त लक्षण प्रथम सराग सम्यक्त्व मित्युच्यते।

सप्ताना प्रकृतीना आत्यन्तिकेऽपगमे सत्यात्म विशुद्धि मात्र मितरत् वीतराग सम्यक्त्व मित्युच्यते। (राजवार्तिक)

अर्थ – अविरत सम्यग्दृष्टि की आत्मा मे रागादिक का प्रकोप नही है अर्थात् मिथ्यात्व एव अनतानुबधी जन्य रागादि दुर्भाव उसके नही होते है इसलिये वह प्रशमवान् है ससार से सदैव उसे भय रहता है वह ससार के दु खो से भयभीत होकर समार को छोडने की भावना करता है ऐसा सवेग उसके रहता है। सर्व जीवो मे उसका मैत्री भाव रहता है किसी जीव को वह सताना या मारना नही चाहता है इसलिये वह दयाभाव रखता है और सर्वज्ञ देव द्वारा कथित समस्त पदार्थों पर पूर्ण श्रद्धा रखता है अत वह परमास्तिक्या वाला है। ये सभी गुण अविरत सम्यग्दृष्टि मे रहते है यह उपशम और क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि का स्वरूप है। किंतु सातो प्रकृतियो का सर्वथा नाश करने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि तो वीतराग है।

वीतराग सराग च सम्यक्त्व कथितद्विधा
विराग क्षायिक तत्र सरागमपर द्वयम् ६५

(अमितगति श्रावकाचार)

अर्थात् उपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्वसराग हैं तथा क्षायिक सम्यग्दर्शन वीतराग है।

अर्थात् असके मिथ्यात्व और अनतानुबधी राग नही है। अत वह अत्यन्त विशुद्ध वीतराग है वह या तो उसी भव से मोक्ष चला जाता है अथवा तीसरे या चौथे भव से नियम से मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ऐसे विशुद्ध परिणाम वाले को चारित्र और स्वरूपाचरण नही

असख्यात असख्यात गुणी निर्जरा श्रावक, विरत, अनन्तानुबधी का विसयोजक दर्शन मोह क्षपक चारित्र मोह उपशमक उपशात चारित्र मोह क्षपक क्षीण मोह और सयोग तथा अयोग केवली इन सबो के होती है यह चारित्र के कारण से होती है अत सम्यग्दृष्टि के भी सम्यक्त्वाचरण चारित्र अथवा स्वरूपाचरण चारित्र जन्य विशुद्धि है इसीलिये उसके असख्यात गुणी निर्जरा होती है ।

सम्यग्दृष्टि को ससार से विरक्तता

सम्यग्दृष्टि रसौ भोगान् सेवमानोप्यसेवक
नीरागस्य न रागाय कर्माऽकामकृत यत
आरभादि क्रिया तस्य दैवाद्वा स्यादकामत
अन्त शुद्धे प्रसिद्धत्वान्नहेतु प्रशमक्षते (पचाध्यायी)

अर्थ — सम्यग्दृष्टि भोगो को सेवन करता हुआ भी विरक्त है चारित्र मोहनीय के वश सेवन करता है परन्तु वह वास्तव मे भोगो से उदास रहता है। क्योकि सम्यग्दृष्टि को भोगो मे राग नही है अत बिना इच्छा के किया हुआ कार्य उसके लिए राग वर्धक नही हो सकता है। वह जितनी भी आरभादिक क्रिया करता है वह बिना इच्छा के उदासीनता से चारित्र मोहवश करता है अन्तरग परिणाम उसके विशुद्ध है। आत्मा मे परम शान्ति है।

यह व्यवहार सम्यग्दर्शन का कथन नही है किंतु सात प्रकृतियो के उपशम क्षय क्षयोपशम से होने वाले निश्चय सम्यग्दर्शन का कथन है इसलिये मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबधी जन्य राग वहा नही है। जो राग अनत ससार को बढाने वाला है वह राग सम्यग्दृष्टि के नही रहा है उसका ससार तो नियम से समाप्त होने वाला है। उस सम्यग्दृष्टि के सयम रूप चारित्र नही होने पर भी स्वरूपाचरण चारित्र अवश्य हैं। पचाध्यायी ग्रन्थराज मे सम्यग्दृष्टि का अपूर्व माहात्म्य बताया गया है। उसके स्वरूपाचरण और शुद्धोपयोग बताया

गया है । आठ अगो के प्रकरण मे यह कहा गया है । और भी–

रागदीनामनुद्रेक प्रशम ससारभीरुता सवेग सर्व प्राणिषु मैत्री अनुकम्पा, जीवादयोर्था यथा स्वभावै सन्तीति मति रास्तिक्यम् ए एतैरभिव्यक्त लक्षण प्रथम सराग सम्यक्त्व मित्युच्यते ।

सप्ताना प्रकृतीना आत्यन्तिकेऽपगमे सत्यात्म विशुद्धि मात्र मितरत् वीतराग सम्यक्त्व मित्युच्यते । (राजवार्तिक)

अर्थ – अविरत सम्यग्दृष्टि की आत्मा मे रागादिक का प्रकोप नही है अर्थात् मिथ्यात्व एव अनतानुबधी जन्य रागादि दुर्भाव उसके नही होते है इसलिये वह प्रशमवान् है ससार से सदैव उसे भय रहता है वह ससार के दु खो से भयभीत होकर ससार को छोडने की भावना करता है ऐसा सवेग उसके रहता है । सर्व जीवो मे उसका मैत्री भाव रहता है किसी जीव को वह सताना या मारना नही चाहता है इसलिये वह दयाभाव रखता है और सर्वज्ञ देव द्वारा कथित समस्त पदार्थो पर पूर्ण श्रद्धा रखता है अत वह परमास्तिक्या वाला है । ये सभी गुण अविरत सम्यग्दृष्टि मे रहते है यह उपशम और क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि का स्वरूप है । किंतु सातो प्रकृतियो का सर्वथा नाश करने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि तो वीतराग है ।

वीतराग सराग च सम्यक्त्व कथितद्विधा
विराग क्षायिक तत्र सरागमपर द्वयम् ६५

(अमितगति श्रावकाचार)

अर्थात् उपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्वसराग हैं तथा क्षायिक सम्यग्दर्शन वीतराग है ।

अर्थात् असके मिथ्यात्व और अनतानुबधी राग नही है । अत वह अत्यन्त विशुद्ध वीतराग है वह या तो उसी भव से मोक्ष चला जाता है अथवा तीसरे या चौथे भव से नियम से मोक्ष प्राप्त कर लेता है । ऐसे विशुद्ध परिणाम वाले को चारित्र और स्वरूपाचरण नही

मानना शास्त्र सम्मत नही है।

धर्मध्यान चौथे से सातवें तक होता है

धर्मध्यान चौथे गुण स्थान से लेकर सातवे गुण स्थान तक होता है। तो क्या उन गुण स्थानो मे स्वरूपाचरण चारित्र नही हो सकता है ? जवकि सातिशम अप्रमत्त (सातवे गुण स्थान से) उपशम श्रेणी अथवा क्षपक श्रेणी तक आरोहण हो जाता है और क्षपक श्रेणी मे अन्तर्मुहुर्त मे केवल ज्ञान हो जाता है तव वहा स्वरूपाचरण नही हो यह वात सिद्धान्त के अनुकूल नही है।

स्वरूपाचरण और ज्ञान चेतना अविरत सम्यग्दृष्टि के भी (चौथे गुण स्थान से सातवे गुण स्थान तक भी) होती है इसका बहुत खुलासा धर्म ध्यान के प्रकरण मे तत्वानुशासन मे किया है। उन प्रमाणो को ध्यान से पढिये–

देखिये धर्म्यध्यान का स्वरूप बताते हुए पुरातन आचार्य रामसेनाचार्य रचित तत्वानुशासन शास्त्र मे स्वात्म स्वरूप की लवलीनता मे कितना खुलासा करते हैं–

विध्यासु स्व पर ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थितम्
विहायान्यदनर्थित्वात् स्वमेवावैतु पश्यतु
पूर्वं श्रुतेन सस्कार स्वात्मन्या रोपयेत्तत
तत्रैकाग्र्यं समासाद्य न किञ्चिदपि चिन्तयेत्

(तत्वानुशासन श्लोक १४३ । १४४)

इसकी हिन्दी टीका श्री प० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने बनाई है, उन्होने उक्त दौनो श्लोको का अर्थ इस प्रकार किया है–

"जो स्वावलम्बी निश्चय ध्यान करने का इच्छुक है वह स्व को और पर को यथावस्थित रूप मे जानकर तथा श्रद्धान कर और फिर पर को निरर्थक होने से छोडकर स्व को अपने आत्मा को ही जानो और देखो।

अत पहले श्रुतआगम के द्वारा अपने आत्मा मे आत्म सस्कार को आरोपित करे आगम मे आत्मा को जिस यथार्थ रूप मे वर्णित किया है उस प्रकार की भावनाओ द्वारा उसे सस्कारित करे तदनुसार उस सस्कारित स्वात्मा मे एकाग्रता तल्लीनता प्राप्त करके और कुछ भी चितवन न करे ।"

ऊपर के दोनो श्लोक और उनके अर्थ से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आत्मा के निज स्वरूप को पहले आगम से अच्छी तरह समझ लेवे और उसे दृढता से श्रद्धान कर लेवें फिर उस प्रकार की भावना एव चितन से आत्मा को सस्कारित करे पीछे उस आत्म स्वरूप मे तल्लीन बन जावे ।

इसे स्वरूपाचरण के सिवा और क्या कहा जाय ? यह स्वरूपाचरण चौथे गुण स्थान से लेकर सातवें गुण स्थान तक-धर्म ध्यान मे आचार्य ने बताया है । जो विद्वान् वीतराग अवस्था मे ही स्वरूपाचरण बताते हैं वे इस स्पष्ट प्रमाण पर सोचें ।

इसी शास्त्र मे नीचे के दो श्लोको मे प० जुगुलकिशोरजी मुखतार ने—"स्वसवित्ति द्वारा आत्म दर्शन" इन शब्दो से उनका अर्थ लिखा है । श्लोक—

उभयेस्मिन्निरुद्धेतु स्याद्विस्पष्टमतीन्द्रियम्
स्वसवेद्य हि तद्रप स्वसवित्यैव दृश्यताम् १६७
वपुषोऽप्रतिभासेपि स्वातन्त्र्येण चकासते
चेतना ज्ञानरूपेऽय स्वय दृश्यत एव हि १६८
(तत्वानुशासन)

इन दोनो श्लोको का अर्थ प० जुगुलकिशोरजी मुखतार ने इस प्रकार किया है—

"इद्रिय और मन दोनो के निरुद्ध होने पर अतीद्रिय ज्ञान विशेष रूप से स्पष्ट होता है अत अपना वह रूप जो स्वसवेदन के गोचर है उसे स्वसवेदन के द्वारा ही देखना चाहिये,,

"स्वतत्रता से चमकती हुई यह ज्ञानरूपाचेतना शरीर रूप से प्रतिभासित न होने पर भी स्वय ही दिखाई पडती है। यहा पूर्व पद्य मे उल्लिखित स्वसवित्ति को स्पष्ट करते हुए वतलाया गया है कि यह सवित्ति ज्ञान रूपा चेतना है जोकि पर की अपेक्षा न रखते हुए स्वतन्त्रता के साथ चमकती हुई स्वय ही दिखाई पडती है। शरीर रूप से उसका कोई प्रतिभास नही होता।"

इन दोनो श्लोको से यह भी भलीभाति स्पष्ट हो जाता है कि चौथे गुण स्थान से सातवे गुणस्थान तक धर्म ध्यान मे स्वसवित्ति-स्वरूपावलोकन रूप ज्ञान चेतना आत्मा मे प्रगट हो जाती है। वह इद्रिय जन्य ज्ञान नही है किंतु स्वय आत्म प्रत्यक्ष-आत्मावलोकन रूप ज्ञान चेतना है।

जो विद्वान् ज्ञान चेतना को और स्वरूपाचरण को वीतराग अवस्था (बारहवे तेरहवे गुण स्थानो मे) मे ही मानते हैं उन्हे इन पूर्वाचार्य प्रणीत आगम के प्रमाणो से अपनी समझ को बदल लेना चाहिये। ग्रन्थराज पचाध्यायी मे जो स्वरूपाचरण और ज्ञान चेतना का कथन सम्यग्दर्शन के साथ अविनाभावी रूप से किया गया है वह कथन और तत्वानुशासन ग्रन्थ का कथन सर्वथा एक रूप है।

स्वरूपाचरण का लक्षण समझने मे भूल

स्वरूपाचरण चारित्र अविरत सम्यग्दृष्टि के चौथे गुण स्थान मे नही होता है किंतु वह तेरहवें चौदहवें गुण स्थानो मे परम वीतराग अवस्था मे ही होता है। ऐसा कहने वाले विद्वान् प्रमाण भी देते है। परतु उसका अर्थ समझने मे भूल है देखिये–

"राग द्वेषाभावलक्षण परम यथाख्यातरूप स्वरूपे
चरण निश्चयचारित्र भणन्ति,, (परमात्मप्रकाश)

इसका अर्थ वे विद्वान् यह करते हैं कि "रागद्वेष के अभाव लक्षण यथाख्यात चारित्र स्वरूपाचरण चारित्र है। उन्होने और भी

लिखा है कि सज्वलन कपायोदय के अभाव मे यथाख्यात चारित्र होता है। इस यथाख्यात चारित्र को ही स्वरूपाचरण चारित्र कहा गया है,,

परतु ऊपर लिखी सस्कृत की पक्तियो के समझने मे भूल है उसी से ऐसा अर्थ किया गया है।

पक्तियो मे 'स्वरूपेचरण" लिखा है। इसी पर ध्यान देना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि राग द्वेष के अभाव मे यथाख्यात रूप निश्चय चारित्र होता है। उस चारित्र मे आत्मा अपने स्वरूप में आचरण करता है अर्थात् निश्चय चारित्र-यथाख्यात चारित्र धारी आत्मा अपने स्वरूप के अवलोकन मे, स्थिर हो जाता है। न कि यथाख्यात ही स्वरूपाचरण है। इसी मूल मे समझने की भूल से यथाख्यात चारित्र को ही स्वरूपाचरण कहा जाता है। और यथाख्यात चारित्र से नीचे के गुण स्थानो मे उस स्वरूपाचरण का निषेध किया जाता है। स्वरूपेचरण यह सप्तमी विभक्ति है और यथाख्यातम् यह प्रथमा विभक्ति है। इसलिये यथाख्यात के लक्षण को ही स्वरूपाचरण मान लेना यही भूल एव विवाद का विषय बन गया है। यथार्थ मे यहा कार्य कारण भाव है यथाख्यात चारित्र कारण है स्वरूपाचरण उसका कार्य अथवा फल है।

यथा ख्यात चारित्र मे स्वरूपाचरण उत्कृष्ट रूप मे होता है। अनेक शास्त्रो मे उत्कृष्ट कथन किया गया है। जैसे गोम्मटसार मे भार्गणाओ मे उत्कृष्ट सख्या बताई गई हैं कही जघन्य भी बताई गई है प्रकरण मे जहा परम वीतरागता है वहा उत्कृष्ट स्वरूपाचरण है। नीचे नीचे कम वीतरागता है वहा स्वरूपाचरण मध्यम एव जघन्य है।

स्वरूपाचरण व्यापक है

(इसे ध्यान से पढिये)

जिस प्रकार चारित्र के भेद है, मुनियो मे सामायिक छेदोप-

स्थापना परिहार विशुद्धि सूक्ष्मसापराय यथाख्यात ये चारित्र भेद है। उन्ही भेदो मे महाव्रत समिति गुप्ति आदि है। श्रावको मे अष्टमूल गुण अणुव्रत ग्यारह प्रतिमा ये चारित्र भेद है उस प्रकार स्वरूपाचरण कोई चारित्र भेद नही है। वह व्यापक है और सभी भेदो मे जघन्य मध्यम उत्कृष्ट रूप से पाया जाता है अर्थात क्रम क्रम से सयम एव विरागता की वृद्धि मे आत्मास्वरूप मे स्थिर हो जाता है। जितनी जितनी विशुद्धि जहा है अथवा जितता जितना चारित्र जहा है वहा उतना उतना ही स्वरूपावलोकन अथवा आत्मीयवृत्तिरूप स्वरूपाचरण होता है। चौथे गुण स्थान से लेकर चौदहवे गुण स्थान तक सर्वत्र स्वरूपाचरण है। चौथे मे अन्यन्त जघन्य अथवा अशमात्र है। आगे क्रम क्रम से सयम की विशुद्धि बढने से स्वरूपाचरण भी बढता गया है। इसलिये वह व्यापक है।

जो विद्वान् पूर्ण वीतरागता मे तेरहवें गुण स्थान मे ही स्वरूपाचरण मानते हैं उनके कथनानुसार क्षपक श्रेणी मे भी स्वरूपाचरण नही होगा। क्योकि उन गुण स्थानो मे सूक्ष्म लोभ का उदय है पूर्ण वीतरागता नही है। परतु क्षपक श्रेणी वाला महामुनि अतर्मुहूर्त मे ही केवल ज्ञान नियम से प्राप्त कर लेता है। तो क्या वहा भी स्वरूपाचरण नही होगा ? इसलिये स्वरूपाचरण का कोई नियमित गुण स्थान नही है किंतु आत्म विशुद्धि की तरतमता से चौथे से लेकर चौदहवे गुण स्थान तक सर्वत्र स्वरूपाचरण है।

परमावगाढ़ के समान

जिस प्रकार क्षायिक सम्यग्दर्शन चौथे से लेकर सातवें गुण स्थान तक नियम से परिपूर्ण हो जाता है फिर परमावगाढ सम्यक्त्व चौदहवें गुण स्थान मे क्यो बताया गया है ? इसी प्रकार क्षायिक चारित्र भी वारहवें मे परिपूर्ण हो जाता है। फिर परमावगाढ चारित्र भी चौदहवे मे क्यो माना गया है ? इसी प्रकार स्वरूप

निरीक्षण अथवा स्वरूपाचरण भी उत्तरोत्तर विशुद्धि के वढने से विशेप होता है। चौथे गुण स्थान मे अविरत सम्यग्दृष्टि के कम विशुद्धि नही है उसने दर्शन मोह को जो अनत ससार का कारण है सर्वथा नष्ट कर बहुत ही विशुद्धि प्राप्त की है। इसलिये वहा भी आत्म निरीक्षण एव स्वात्म सचरण एक देश होता ही है। मिथ्यात्व के साथ चारित्र मोहनीय की प्रधान प्रकृति अनतानुवधी को नष्ट कर वह सम्यग्दृष्टि भी निर्मोही वन चुका है।

जिन वीतराग मुनियो को अनेक वडी वडी ऋद्धिया हो जाती है जिनको अवधि और मन पर्याय ज्ञान भी हो जाता है उन महर्षियो को स्वरूपलीनता स्वरूपाचरण नही हो यह बात युक्ति एव आगम के विरुद्ध है। देखिये–

अस्ति चात्म परिच्छेदि ज्ञान सम्यग्दृगात्मन
स्व सवेदन प्रत्यक्ष शुद्ध सिद्ध पदोपमम् (पचाध्यायी)

अर्थ —सम्यग्दृष्टि का ज्ञान आत्मा का अवलोकन करने वाला है। वह आत्मा का प्रत्यक्ष सवेदन करता है वह शुद्ध है सिद्ध पद की उपमा वाला है। सम्यग्दृष्टि के विषय मे इससे अधिक महत्व की वात और क्या हो सकती है।

स्वरूपाचरण प्राप्ति का और भी प्रवल प्रमाण

दृड मोहे स्तगते पु स शुद्धस्यानुभवोभवेत्
न भवेत् विघ्नकर कश्चित् चारित्रावरणोदय (पचाध्यायी)

अर्थ — दर्शन मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने पर पुरुप का शुद्धानुभव होता है उस शुद्धात्मा के अनुभव मे कोई चारित्र मोहनीय कर्म का उदय विघ्नबाधा नही कर सकता है कितना स्पष्ट कथन है। शुद्धात्मा का अनुभव ही तो स्वरूपाचरण है। भगवान कु दकु द स्वामी और भी स्पष्ट करते हैं–

जीवादी सद्दहण सम्मत्त जिणवरेहि णिद्दिट्ठ

ववहारो णिच्चयदो अप्पाण होइ सम्मत्त चरण

अर्थात् जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यक्त्व है और आत्मा का सम्यक्त्वाचरण निश्चय सम्यक्त्व है। श्री पडित टोडरमल जी ने इसी का खुलासा लिखा है–

व्यवहार और निश्चय सम्यक्त्व

जो विद्वान यह कहते हैं कि चौथे गुण स्थान मे निश्चय सम्यक्त्व नही होता है केवल व्यवहार सम्यक्त्व ही होता है उन्हे इस गाथा पर ध्यान देना चाहिये–

जीवादी सद्दहण सम्मत्त जिणवरेंहि पण्णत
ववहारा णिच्छयदो अप्पाण हवइ सम्मत्त

पडित प्रवर टोडरमल जी ने इस गाथा का अर्थ यह लिखा है– "तत्वार्थ का श्रद्धान सो तो व्यवहार मे सम्यक्त्व है बहुरि अपना आत्म स्वरूप का अनुभव करि तिसकी श्रद्धा प्रतीति रुचि आचरण सो निश्चय ते सम्यक्त्व है सो वह सम्यक्त्व आत्मा ते जुदा वस्तु नाही है। आत्मा का ही परिणाम है सो आत्मा ही है ऐसे सम्यक्त्व अर आत्मा एक ही वस्तु है वह निश्चय का आशय जानना।"

(मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ट ३०)

चौथे गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि को निश्चय सम्यग्दृष्टि कहा गया है और उसे आत्मस्वरूप का अनुभव तथा आचरण करने वाला भी बताया गया है।

मुख्य बात – वास्तविक बात यह है कि जहा केवल तत्वो का श्रद्धान है वह तो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। क्योकि वह ज्ञान का विषय है निश्चय आत्मस्वरूप की प्राप्ति नही है। किन्तु जब आत्मा मे दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम क्षय क्षयोपशम हो जाता है तब आत्मा का निज गुण सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है। वह आत्मा का शुद्ध निज गुण है। वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। यदि आत्मा के निज

गुण की प्रगटता को भी व्यवहार कहा जाय तो फिर निश्चय सम्यक्त्व का कोई स्वरूप ही नही सिद्ध होगा। इसलिये चतुर्थ गुण स्थान से लेकर ऊपर के सभी गुण स्थानो मे निश्चय सम्यक्त्व और स्वरूपावलोकन है। यही बात पडित प्रवर टोडरमल जी ने खुलासा की है। उन्होने आत्म स्वरूप को अनुभव करने वाला सम्यग्दृष्टि है ऐसा कहा है।

यदि केवल श्रद्धान का नाम ही सम्यग्दर्शन होता तो निश्चय और व्यवहार ऐसे सम्यक्त्व के दो भेद आचार्य क्यो करते ? और यदि सम्यग्दृष्टि के चारित्र नही होता तो भगवत्कुदकुद स्वामी चारित्र के दो भेद क्यो बताते ? और यदि सम्यग्दृष्टि का चारित्र स्वरूपाचरण नही होता तो आत्मा मे रमण करने का नाम निश्चय सम्यक्त्व क्यो बताते ?

प० दौलतराम जी ने अपने पद मे यही बात कही है–

चिन्मूरति दृगधारी की मोहि रीति लगत है अटापटी
बाहर नारक कृत दुख भोगे अन्तर समरस गटागटी

यह अविरत सम्यग्दृष्टि का कथन है इस पद मे बडे महत्व की बात यह स्पष्ट की गई है कि असयत सम्यग्दृष्टि वहिरग मे तो नरक मे दुख भोग रहा है परन्तु अन्तरग मे वह समरस अर्थात आत्मरस का आनन्द ले रहा है। अर्थात् स्वस्वरूप के चितवन मे लग जाता है। अब विद्वान विचार करें कि स्वरूपाचरण और क्या है ?

सम्मतचरण सुद्धा सजम चरणस्स जइव सुपसिद्धा
णाणी अमूढदिट्ठी अचिरे पावति णिव्वाण

(षटप्रामृत)

आचार्य कुदकुद स्वामी कहते हैं कि जो सम्यक्त्वाचरण से शुद्ध है अथवा सयमाचरण से सुप्रसिद्ध हैं वे अमूढदृष्टि ज्ञानी शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करते है। इस गाथा मे सम्यक्त्वाचरण और सयमाचरण दोनो प्रकार के चारित्र की विशुद्धि बताई गई है। और भी–

भावेहि भाव सुद्ध रइय चरण पाहुण चेव

(पट् प्रामृत)

आचार्य कुदकुद स्वामी कहते है कि शुद्ध भावो से उत्पन्न हुआ चारित्र सार की भावना करो, इस गाथा की टीका मे लिखा है कि "चेव शब्दात् दर्शनाचरणच्चोद्दिशितम्" इसका अर्थ है कि च शब्द से दर्शनसार की भावना भी करो। यहा पर दर्शनाचरण और सयमाचरण की भावना से स्वरूप निरीक्षण ही प्रयोजन है। सम्यक्त्वाचरण मे दर्शन मोह रहित वीतरागता एव विशुद्धता है। सयमाचरण मे चारित्र मोह रहित वीतरागता एव विशुद्धता है। स्वरूप निरीक्षण स्वरूपाचरण दोनो मे है। किंतु सयमाचरण मे विशेष रूप से है और वह उत्तरोत्तर अधिकर है।

स्वरूपाचरण चारित्र होने मे और भी स्पष्ट प्रमाण

कर्मादान क्रियारोध स्वरूपाचरण चयत्
धर्म शुद्धोपयोग स्यात् सैष चारित्रसज्ञिक

(लाटी सहिता)

इसका अर्थ इसके टीकाकार धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर विद्वत् रत्न श्री प० लालाराम जी शास्त्री ने इस प्रकार किया है–

"कर्मो को ग्रहण करने वाली क्रियाओ का रुक जाना ही स्वरूपाचरण चारित्र है वही स्वरूपाचरण चारित्र धर्म है वही शुद्धोपयोग है और उसी को चारित्र कहते है।" पचाध्यायी ग्रन्थ का उद्धरण देते हुए उक्त धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर जी ने लाटी सहिता की टीका मे यह भी लिखा है–

"जिस प्रकार सम्यग्दर्शन के साथ सम्यज्ञान अविनाभावी है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के साथ स्वरूपाचरण चारित्र भी अविनाभावी है। चौथे गुण स्थान मे सम्यग्दर्शन के साथ स्वरूपाचरण चारित्र भी [illegible] मे प्रगट हो जाता है, इसका कारण यही है कि सम्यग्दर्शन को

घात करने वाली सात प्रकृतियाँ हैं। अनतानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ मिथ्यात्व, सम्यङमिथ्यात्व और सम्यक प्रकृति मिथ्यात्व। इन सातो मे अन्त के तीन भेद तो दर्शन मोहनीय के और आदि के चार भेद अनतानुवधी चारित्र मोहनीय के हैं। अनतानुवधी कपाय यद्यपि चारित्र मोहनीय का भेद है तथापि उसमे दो प्रकार की शक्ति है। वह सम्यग्दर्शन का भी घात करती है और सम्यक् चारित्र का भी घात करती है। अनतानुवधी कपाय का उदय दूसरे गुणस्थान तक रहता है इसीलिये चौथे गुण स्थान मे निरावाध सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट हो जाता है,,

"उपर्युक्त कथन से यह वात भी सिद्ध हो जाती हैकि जव स्वरूपाचरण चारित्र और सम्यग्ज्ञान दोनो ही सम्यग्दर्शन के साथ होने वाले है तो तीनो ही अविनाभावी है इसीलिये ग्रन्थकार ने तीनो को अविनाभावी वतलाते हुए तीनो को अखडित कहा है अत सम्यग्दर्शन का अविनाभावी स्वरूपाचरण चारित्र है।,, (लाटी सहिता)

लगभग सौ सवासौ सस्कृत शास्त्रो के टीकाकार महान् अनुभवी एव मूलग्रन्थ के अनुसार ही टीका रचने वाले प्रामाणिक विद्वान् सरस्वती दिवाकर धर्मरत्न श्रीमत्पडित लालारामजी शास्त्री ने इस लाटी सहिता चारित्रग्रन्थ की टीका की है। अत उक्त श्लोक के प्रमाण से अब किसी को यह शका करने का स्थान नही रहता है कि चतुर्थ गुण स्थान मे स्वरूपाचरण चारित्र नही होता है।

इसी वात को अनेक श्लोको द्वारा पचाध्यायी कार ने वहुत ही खुलासा किया है। पचाध्यायी का स्वाध्याय करने वाले अच्छी तरह से जानते होगे कि सम्यग्दर्शन की विशुद्धता उसके अविनाभावी स्वरूपाचरण चारित्र का ही परिणाम है।

मूल वात यह है कि स्वरूपाचरण चारित्र का ऐसा कोई लक्षण नही है कि वह वारहवे और तेरहवे गुण स्थानो मे ही हो किन्तु दर्शन

मोह और चारित्र मोह के अभाव मे जहा २ जितनी २ विशुद्धि आत्मा मे बढती जाती है वहा २ उतना २ आत्मा विशुद्ध होता हुआ अपने स्वरूप का अवलोकन करता है। जहा वीतरागता परिपूर्ण है वहा आत्मा स्व स्वरूप मे पूर्ण रूप से लीन हो जाता है। बीतरागता स्वरूपाचरण का लक्षण नही है किंतु वह उसका कारण है। अर्थात् स्वरूपाचरण उसका फल है। अत जहा जितनी वीतरागता है। 'दर्शनमोहनी चारित्र मोहनी के अभाव मे' वहा उसी अनुपात से स्वरूपा चरण होता है।

इसलिये उपशमश्रेणी क्षपक श्रेणी, अप्रमत्तध्यान तथा चौथे गुणस्थान तक जितनी बीतरागता है वहा उतनी विशुद्धि और स्वरूपा वलोकन है। सम्यग्दृष्टि भी ससार के भोगो से विरक्त एव वैराग्य की ओर झुक जाता है और स्वात्मनिरीक्षण करता है।

समयसार के निर्जरा अधिकार का १३६वाँ श्लोक भी स्वरूपा-चरण चारित्र को प्रगट करता है। वह इस प्रकार है–

सम्यग्दृष्टि र्भवति नियत ज्ञान वैराग्य शक्ति ।
स्व वस्तुत्व कलयितुमय स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या ।।
यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिद तत्वत स्व पर च ।
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतोरागयोगात् ।।

अर्थ–सम्यग्दृष्टि के नियम से ज्ञान और वैराग्य की शक्ति प्रगट हो जाती है। क्योकि यह सम्यग्दृष्टि आत्मस्वरूप को जानने के लिए अपने स्वरूप की प्राप्ति करता है और अपने से पर पदार्थ का परित्याग करता है इस प्रकार यह सम्यग्दृष्टि इस कर्ममिश्रित आत्म तत्व मे स्व को स्वरूप से जानकर और पर को पररूप से जानकर अपने स्व स्वरूप मे रमण करता है अर्थात् अपने आत्म स्वरूप मे स्थिर होजाता है और रागादिभाव रूप जो पर पदार्थ है उनसे विरक्त हो जाता है। इस प्रकार इस आगम प्रमाण के आधार से यह बात सिद्ध होती है कि

सम्यग्दृष्टि स्व स्वरूप मे रमण करता है। और स्व स्वरूप मे रमण करने का नाम ही चतुर्थ गुणस्थान मे सम्यग्दृष्टि जीव की स्वरूपाचरण चारित्र की प्राथमिक अवस्था है।

जो बात ऊपर समयसार मे कही गई है वही पचाध्यायी मे कही गई है। पचाध्यायी के प्रकरण गत चार श्लोक नीचे दिये जाते हैं उनसे ऊपर दिये गये समयसार के श्लोक से समानता स्पष्ट प्रतीत होती है देखिये—

सत्य माद्य द्वय ज्ञान परोक्ष पर सविदि
प्रत्यक्ष स्वानुभूतौ तु दृङ्मोहोपशमादित (श्लोक ४६२)
अस्ति चात्मपरिच्छेदि ज्ञान सम्यग्दृगात्मन
स्व सवेदनप्रत्यक्ष शुद्ध सिद्धास्पदोपमम् (श्लोक ४८९)
दृङ्मोहेऽस्तगते पुस शुद्धस्यानुभवो भवेत्
नभवेद्विघ्नकर कश्चित् चारित्रावरणोदय (श्लोक ६८८)
स्व सवेदन प्रत्यक्ष ज्ञान स्वानुभवद्वयम्
वैराग्य भेद विज्ञान मित्याद्यस्तीह कि वहु (श्लोक ९४१)
(पचाध्यायी)

अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान दोनो पर पदार्थ के ज्ञान करने मे परोक्ष हैं किंतु दर्शन मोहनीय के उपशमादि होने पर स्वात्मानुभूति करने मे प्रत्यक्ष हैं।

सम्यग्दृष्टि के आत्मा का ज्ञान-स्वसवेदन प्रत्यक्ष होता है वह शुद्ध है सिद्ध पद की उपमा वाला है। दर्शन मोहनीय (मिथ्यात्व कर्म) का अभाव होने पर पुरुष को शुद्ध स्वरूप का अनुभव होता है। उसमे चारित्र मोहनीय कर्म का उदय कुछ भी विघ्न वाधा नही कर सकता है।

सम्यग्दृष्टि को स्वसवेदन प्रत्यच होता है। स्वानुभव-रूप ज्ञान होता है। भेद विज्ञान रूप वैराग्य होता है। यह सब सम्य-

ग्दर्शन गुण के प्रगट होने पर होता है। अधिक क्या कहा जाय।

इन श्लोको से स्पष्ट हो जाता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र अवश्य होता है वह सब वर्णन स्वरूपाचरण चारित्र का ही द्योतक है अथवा स्वरूपाचरण का ही स्वरूप है अन्य प्रवचनादि ग्रन्थो में ही इसी प्रकार का कथन है।

आचार्य कुदकुद स्वामी के रचे हुए समयसार आदि शास्त्रो के टीकाकार तलस्पर्शी महान् विद्वान् आचार्य अमृतचद्र सूरि तत्वार्थसार शास्त्र मे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के विषय मे कितना स्पष्ट लिखते है—

पश्यति स्व स्वरूप यो जानाति च चरत्यपि
दर्शन ज्ञान चारित्र त्रय मात्मैव तन्मय श्लोक ६

(तत्वार्थ सार नवम अध्याय)

अर्थ—आत्मा अपने निज स्वरूप को देखता है इसलिये वह सम्यग्दृष्टि है आत्मा अपने निज स्वरूप को जानता है इसलिये वह सम्यग्ज्ञानी है। आत्मा स्व स्वरूप मे आचरण करता है इसलिये स्व स्वरूप-रत्नत्रय मे तन्मय रहने वाला आत्मा ही है।

इस श्लोक से यह स्पष्ट होजाता है कि सम्यग्दृष्टि अपने निज स्वरूप को देखता है और उसी स्वरूप में आचरण करता है। आचार्य अमृतचद्र सूरि ने इस प्रकरण मे कई श्लोक लिखे है उनमे व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय रूप से रत्नत्रय के दो भेद किये है जो केवल पर पदार्थों का आगमानुसार श्रद्धान करता है उन्हे श्रुत ज्ञान से जानता है और भेद बुद्धि से उन जीवादि तत्वो की उपेक्षा करता है उसे तो उन्होने व्यवहारावलवी रत्नत्रयधारी बताया है और जो अपने निज स्वरूप को देखता है उसी निज स्वरूप को अभेद रूप से जानता है और उसी निजस्वरूप मे आचरण करता है उसे निश्चयावलवी रत्नत्रयधारी बताया है महाशास्त्र तत्वार्थ सूत्र मे आचार्य उमा

स्वामी ने "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्ष मार्ग ,, इस सूत्र द्वारा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को मोक्ष मार्ग बताया है। इसी मोक्ष मार्ग के व्यवहार मोक्ष मार्ग और निश्चय मोक्षमार्ग ऐसे दो भेद हैं। यही बात आचार्य समभतद्रस्वामी ने रत्न करडे श्रावकाचार मे बताई है। श्लोक इस प्रकार है—

सद्दृष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्म धर्मश्वरा विदु
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धति

अर्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनो को सर्वज्ञ देव और गणधरादि महर्षियो ने धर्म बताया हैं और इनके विपरीत मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र को अधर्म और ससार बढाने वाला बताया है। इस कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पहले तीन गुण स्थानो तक मिथ्या दृष्टि है, चतुर्थ गुण स्थान से सम्यग्दृष्टि है। चौथे गुण स्थान मे भी रत्नत्रय प्रगट हो जाता है अत मोक्ष मार्ग चौथे गुण स्थान से चालू हो जाता है। सम्यग्दृष्टि का मोक्षमार्ग साध्य साधक दोनो रूप है अर्थात् व्यवहार निश्चयात्मक है। एक देश और सकल सयम का साधक होने से (क्रियात्मक प्रवृत्ति होने से) चौथे गुण स्थान का रत्नत्रय व्यवहार रूप है और दर्शन मोहनीय तथा अनतानुबधी चारित्र मोहनीय का अनुदय-उपशम क्षय क्षयोपशम होने से चतुर्थ गुण स्थान वर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि का सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र निश्चयात्मक भी है। क्योकि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व से उपशम श्रेणी मे सम्यग्दृष्टि जाता है और क्षायिक सम्यग्दर्शन तो चौथे गुण स्थान से लेकर चौदहवे गुण स्थान तथा मोक्ष तक सदैव आत्मा मे रहता है। इसलिये चतुर्थ गुण स्थान वाला आत्मा भी रत्नत्रयात्मक है। क्योकि गुणो के घातक कर्मो के अभाव मे आत्मीय गुणो का प्रगट होजाना ही निश्चयमोक्ष मार्ग है। आचर्य अमृतचन्द्र सूरि ने उसी सम्यग्दृष्टि को स्वरूपाचरण चारित्र धारी बताया है। इतना समझ लेना चाहिये कि स्वरूपाचरण चारित्र दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय दोनो

के अभाव मे होता है अत जितना दोनो मोहनी कर्मो का अभाव (अनुदय) होगा या क्षय होगा उतना २ स्वरूपाचरण चारित्र बढता जायगा। चौथे गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि का रत्नत्रयात्मक मोक्ष मार्ग जघन्य एव प्रारम्भिक है अत उसका स्वरूपाचरण चारित्र भी जघन्य अथवा अश रूप है। ऊपर के गुण स्थानो मे उत्तरोत्तर बढता जाता है। पूर्ण वीत राग अवस्था मे स्वरूपाचरण भी पूर्ण रूप से हो जाता है। वहा तो केवल स्वरूप मे ही लीनता है।

इतने प्रमाणो द्वारा इतना स्पष्टीकरण होने पर चौथे गुण स्थान मे स्वरूपाचरण मानने मे शका या विवाद का कोई स्थान नही रहता है। सभी परोक्ष ज्ञानी एव अल्प ज्ञानियो को गभीर और सूक्ष्म तत्वो पर आगमानुसार श्रद्धान करना ही सम्यक्त्व का चिन्ह है।

जैन दर्शनाचार्य- श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का चतुर्थ
गुण स्थान मे स्वरूपाचरण
चारित्र विधायक

चतुर्थो अध्याय समाप्त

अ पंचम अध्याय

चौथे गुण स्थान मे ज्ञान चेतना होती है
वह स्वरूपाचरण को सिद्ध करती है

एसी भी शका उठाई जाती है कि चौथे गुण स्थान मे ज्ञान चेतना होती है क्या ? इसके उत्तर मे पचाध्यायीकार ने बहुत खुलासा किया है इस सम्बन्ध मे पचाध्यायी मे ही ज्ञान चेतना के प्रकरण को ध्यान से पढने और समझ लेने से शका का समाधान अच्छी तरह हो जाता है। इसलिये यहा पर बहुत ही सक्षेप मे सार भूत उत्तर देना पर्याप्त है ।

चेतना के आचार्यो ने तीन भेद किये है। कर्मफल, चेतना कर्म चेतना और ज्ञान चेतना । इनके स्वामी क्रम से एकेन्द्री से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक, सज्ञी पचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि, तथा सम्यग्दृष्टि है । कर्मफल चेतना एकेंद्रिय से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक होती है। एकेन्द्रिय जीव अपने काय योग के द्वारा तथा द्वीन्द्रिय से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक अपने काय योग तथा वचन योग के द्वारा तथा कषाय के द्वारा जैसा भी कर्म बन्ध करते हैं तदनुसार उसका फल भोगते रहते है। सज्ञी पचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि मन से जैसा विचार करते है और वचन तथा काय योग से जैसा व्यवहार करते हैं तदनुसार कर्म बध करते है। परन्तु सम्यग्दृष्टि का ज्ञान सम्यज्ञान हो जाता है और उसका चारित्र सम्यक् चारित्र हो जाता है इसलिये उसके विचार और आचार धर्म साधक होते है।

यह ज्ञान चेतना भी स्वरूपाचारण चारित्र के समान चौथे

गुण स्थान मे होती है इसके विरुद्ध वह बीत राग अवस्था मे ही होती है ऐसा जो मानते है उन्हे यह समझना चाहिये कि जैसे सयम देश सयम से लेकर तेरहवे गुण स्थान तक क्रम से बढ जाता है वैसे ज्ञान चेतना भी क्रम से चौथे से लेकर तेरहवे तक बढती जाती है। यदि ऐसा नही माना जावे तो क्या सम्यग्दृष्टि का ज्ञान मिथ्या ज्ञान है जो उसके ज्ञान चेतना नही हो ? चौथे गुण स्थान मे दर्शन मोहनीय के अभाव मे मिथ्या राग नष्ट हो चुका है अत वह भी बीत राग है जैसा कि राजवार्तिक मे क्षायिक सम्यग्दृष्टि को बीत राग कहा गया है उसके अनन्तानुबन्धी कषाय नही रही है अत उस कषाय मे होने वाला मिथ्या राग भी नही है अत उसके ज्ञान चेतना का होना अवश्य भावी है।

अर्थाज्ज्ञान गुण सम्यक् प्राप्तावस्थानातर यदा
आत्मोपलब्धि रूप स्या दुच्यते ज्ञान चेतना
सा ज्ञान चेतना नूनमस्ति सम्यग्दृगात्मन
न स्यान् मिथ्यादृश कापि तदात्वे तद सभवात्

(पचाध्यायी)

अर्थ—सम्यग्दर्शन गुण के प्रगट हो जाने पर जब ज्ञान गुण सम्यज्ञान बन जाने से विशेप अवस्था मे पहुच जाता है तब आत्मा की उपलब्धि (स्वरूपावलोकन) होती है उसका नाम ज्ञान चेतना है। वह ज्ञान चेतना निश्चय से सम्यग्दृष्टि के होती है।

अस्ति-चैकादशागाना ज्ञान मिथ्यादृशोपि यत्
नात्मोपलब्धि रस्त्यास्ति मिथ्या कर्मोदयात् परम्

(पचाध्यायी)

अर्थ—यद्यपि मिथ्यादृष्टि के ग्यारह अगो का ज्ञान हो जाता है तो भी उसके आत्मा की उपलब्धि नही होती है मिथ्या कर्म का उदय उसे नही होने देता है।

आगे के श्लोको मे यह स्पष्ट किया गया है कि सम्यग्दृष्टि के शुद्धात्मा की उपलब्धि भी होती है और कभी २ अशुद्ध रूप की उपलब्धि भी होती है। इसका अर्थ यह है कि वीतारागता मे तो सदैव शुद्धोपलब्धि ही रहती है। किन्तु सम्यग्दृष्टि के शुद्धोपलब्धि और मिथ्यात्व कर्म के उदय होने पर अशुद्धोपलब्धि होती है।

सत्य शुद्धास्ति सम्यकत्वे सैवा शुद्धस्ति तद्विना
असत्यबध फला तत्र सैव वध फलान्यथा

(पचाध्यायी)

अर्थ—सम्यग्दर्शन के होजाने पर शुद्धोपलब्धि होती है और जहा मिथ्यादर्शन का उदय है वहा अशुद्ध है। शुद्ध उपलब्धि बध फल नही देती है और मिथ्या उपलब्धि बध फल देती है। अर्थात् सम्यग्दृष्टि के भी बध होता है। परन्तु वह वध बध नही हैं क्योकि अनत ससार वर्धक बध जो मिथ्यात्व और अनन्तानुबधी से होता था वह उसके अब सम्यग्दर्शन होने पर नही होता है। सम्यग्दृष्टि के तो ससार का अन्त निकट है और मोक्ष प्राप्ति भी अति निकट है।

चौथे गुण स्थान मे स्वानुभूति होती है। यह सम्यग्दर्शन के होने पर ही होती है। यह स्वानुभूति क्या है ? यह आत्मानुभव है। इसी का खुलासा पढिये—

वैराग्य परमोपेक्षा ज्ञान स्वानुभव स्वयम्
तद्द्वय ज्ञानिनो लक्ष्म जीवन्मुक्त स एव च श्लोक २३२
तत स्वादु यथा व्यस्त स्व मासादयति स्फुटम्
अविशिष्टमसयुक्तं नियत स्वमनन्यकम् श्लोक २३४

(पचाध्यायी)

अर्थ—यह अविरत सम्यग्यदृष्टि का स्वरूप कथन है। अविरत सम्यग्दृष्टि को ससार से उपेक्षा-उदासीन रूप वैराग्य हो जाता है। तथा अपनी आत्मा का स्वय अनुभव होता है। ये दोनो सम्य ज्ञानी के

लक्षण है वह सम्यग्दृष्टि जीवन्मुक्त बन जाता है वह अपनी आत्मा का प्रत्यक्ष स्वाद लेने लगता है वह अपने को अन्य शरीरादिक पदार्थों से रहित मानता है। उनसे सयुक्त अपने को नही मानता है किन्तु अपने को उन वाह्य पदार्थों से सर्वथा भिन्न चिन्मूर्ति मानता है। यह सब कथन अविरत सम्यग्दृष्टि का है पचाध्यायी के ३७३ श्लोक से लेकर ४०० श्लोको तक और आगे भी सब अविरत सम्यग्दृष्टि का ही कथन है।

इत्येव ज्ञात तत्वो सौ सम्यग्दृष्टि निजात्मद्रक्
वैषयिके सुखे ज्ञाने रागद्वोषौ परिज्यजेत्

अर्थ—इस प्रकार पर तत्व और आत्म तत्व को समझने वाला अविरत सम्यग्दृष्टि अपने निज स्वरूप को देखता है अर्थात् स्वानुभव एव स्वरूपावलोकन करता है। वह इद्रिय सम्बन्धी विषयो के सुख और उसी ससारी सुख सम्बन्धी इस अनिष्ट रूप ज्ञान से होने वाले राग द्वेष को छोड देता है।

अधिक लिखने की आवश्यकता नही है पचाध्यायी का स्वाध्याय मनन और चितन पूर्वक करने से अविरत सम्यग्दृष्टिका स्वरूप और ज्ञान चेतना तथा स्वरूपाचरण चारित्र का खुलासा हो जाता है। चौथे गुण स्थान से लेकर ऊपर के गुण स्थानो मे विशुद्धता बढने मे सर्वत्र दोनो का विकाश वढता जाता है और पूर्ण वीतरागता मे यह ज्ञान चेतना और स्वरूपाचरण चारित्र परम उत्कृष्ट रूप मे होते हैं। ये दोनो नीचे के गुण स्थानो मे नही होते है ऐसा निषेध कही नही पाया जाता है इसलिये पचाध्यायी के कथन मे कोई विरोध नही है। किंतु सामान्य और विशेष कथन है।

स्वानुभव आत्मा का परम आस्तिक्य गुण है

स्वात्मानुभूति मात्र स्या दास्तिको परमो गुण
भवेत्मावा पर द्रव्ये ज्ञान मात्र पर त्वत श्लोक ४६३
(पचाध्यायी)

अर्थ—आत्मा का स्वानुभव स्वरूपावलोकन होना आत्मा का परम आस्तिक्य गुण है। पर पदार्थ मे तो ज्ञान मात्र ही होता है। नीचे के श्लोक मे यह भी लिखा है—

सत्य माद्य द्वय ज्ञान परोक्ष पर सविद
प्रत्यक्ष स्वानुभूतौ तु दृड्‌मोहोपशमादित श्लोक ३६२
(पचाध्यायी)

अर्थ—आदि के मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान दोनो ज्ञान पर पदार्थ के जानने मे तो प्रत्यक्ष हैं किन्तु दर्शन मोहनीय कर्म और अनन्तानुवन्धी तथा सम्यड्‌मिथ्यात्व कर्म के उपशम, क्षय, क्षयोपशम होने से अपनी आत्मा की स्वानुभूति-स्वानुभव-स्वस्वरूपावलोकन मे दोनो ज्ञान प्रत्यक्ष है।

इन श्लोको से यह वहुत खुलासा हो जाता है कि सम्यग्दृष्टि को ज्ञान चेतना होती है और स्वरूपाचरण चारित्र भी होता है। ज्ञान चेतना और स्वरूपाचरण दोनो सम्यग्दर्शन के अविना भावी है।

प्रमेय कमल मार्तण्ड आदि न्याय शास्त्रो मे तथा वृहद्द्रव्य सग्रह मे मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान को स्वसवेदन मे प्रत्यक्ष वताया गया है।

समयसार मे कुदकुद स्वामी कहते है—

एव सम्माइट्ठी अप्पाण मुणदि जाणग सहाव
उदय कम्म विवागय मुअदि तच्च वियाणतो
(समयसार निर्जराधिकार गाथा २००)

अर्थ—इस प्रकार ऊपर कहे हुए गाथाओ के अनुसार सम्यग्दृष्टि ज्ञायक स्वभाव आत्मा को जानता है और तत्व-आत्म तत्व को जानता हुआ उदय को प्राप्त जो कर्म विपाक है उसे छोडता है।

इसकी सस्कृत टीका मे आचार्य अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं—

"एव सम्यग्दृष्टि सामान्येन विशेषेण च पर स्वभावेभ्यो भावेभ्यो सर्वेभ्योपि विविच्य टकोत्कीर्णैक ज्ञायक भावस्वभाव मात्मन स्तत्व विजानाति तथा तत्व विजानश्च स्व पर भावोपादानापोहन

निष्पाद्य स्वस्य वस्तु त्व प्रथयन कर्मोदय विपाक प्रभवान् भावान् सर्वानपि मुञ्चति ततोय नियमात् ज्ञान वैराग्य सम्पन्नो भवति"।

(समयसार सस्कृत टीका)

अथात् यह सम्यग्दृष्टि सामान्य और विशेष रूप से समस्त पर भावो से भिन्न टकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभाव जो आत्मा है उसे जानता है और अपने स्वरूप के ग्रहण और पर स्वरूप के छोडने रूप जो आत्मा का स्व स्वरूप है उसे प्रसिद्ध एव प्रगट करता हुआ कर्मोदय से होने वाले समस्त भावो को त्याग देता है इसलिये यह सम्यग्दृष्टि नियम से ज्ञान वैराग्य से सम्पन्न हो जाता है।

सम्यग्दृष्टि का यह कितना महत्वपूर्ण स्वरूप बिवेचन है। इस विवेचन से सम्यग्दृष्टि के ज्ञान चेतना और स्वरूपाचरण दोनो सिद्ध हो जाते हैं। और भी—

सवर अधिकार की गाथा १८७ मे और भी स्पष्ट कथन सम्यग्दृष्टि के विपय मे इस प्रकार है—

अप्पाण मप्पणा रु धिऊण दो पुण्णपाव जो एसु
दसण णाणम्मि ठिदो इच्छा विरुदोय अणम्मि

इस गाथा मे यह कहा गया है कि जो आत्मा पुण्य पाप मे लगा हुआ है वह अपनी आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा को पुण्य पाप के योगो से रोक कर सम्यक्दर्शन और सम्य ज्ञान मे स्थित हो जाता है और अन्य आत्मा से भिन्न पदार्थों की इच्छा छोड देता है वही आत्मा शीघ्र ही कर्मों से मुक्त हो जाता है।

सम्यग्दृष्टि की ज्ञान चेतना का समर्थन समयसार मे

समयसार के सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार मे गाथा ३१६ की सस्कृत टीका मे आचार्य अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं—

ज्ञानी हि कर्म चेतना शून्यत्वेन कर्म फल चेतना शून्यत्वेन च स्वयमकर्तृत्वादवेदयित्वाच्च न कर्म करोति न वेदयते च, किन्तु

ज्ञान चेतना मयत्वेन केवल ज्ञातृत्वात् कर्म बन्ध कर्म फलञ्च शुभ मशुभवा केवल मेव जानाति।

अर्थात् सम्य ज्ञानी आत्मा कर्म चेतना और कर्म फल चेतना से रहित है इसलिये वह कर्म चेतना का कर्त्ता और भोक्ता नही है किन्तु ज्ञान चेतना स्वरूप होने से उन कर्मफल चेतना और कर्म फल चेतना का ज्ञाता मात्र है।

इससे आगे गाथा मे यह सिद्ध किया गया है कि वास्तव मे कर्म चेतना और कर्म फल चेतना का कर्त्ता भोक्ता भी मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि तो सम्य ज्ञानी होने से ज्ञान चेतना वाला बन गया है इसलिये वह कर्म बध और कर्म फल मे उलझा हुआ नही है।

इसी मे आगे समयसार की गाथा ३८६ की सस्कृत टीका मे आचार अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं—

'वर्तमान कर्म विपाक आत्मनोऽत्यन्त भेदेनोपलभमान स्वस्मिन्नेव खलु ज्ञान स्वभावे निरन्तर चरणाच्चारित्र भवति चारित्र तु भवन् स्वस्यज्ञान मात्रस्य चेतनात् स्वयमेव ज्ञान चेतना भवतीतिभाव।

अर्थात् सम्यग्दृष्टि सम्य ज्ञानी वर्तमान कर्म विपाक को आत्मा से सर्वथा अत्यन्त भिन्न समझता हुआ अपने ज्ञान स्वभाव मे ही निरन्तर आचरण करने से (स्वरूपावलोकन करने से) चारित्र कहलाता है। चारित्र बनता हुआ अपने ज्ञान मात्र का अनुभव करने से ज्ञान चेतना वाला बन जाता है।

अस्ति चात्मपरिच्छेदि ज्ञान सम्यदृगात्मन
स्वसवेदन प्रत्यक्ष शुद्ध सिद्धपदोपमम्

(पचाध्यायी ४८६ श्लोक)

अर्थ—सम्यदृष्टि का ज्ञान अपनी आत्मा का स्वसबेदन प्रत्यक्ष करने वाला है वह शुद्ध है और सिद्ध पद की उपमा वाला है। और भी स्पष्ट कथन—

दृङ्मोहेस्त गते पुस शुद्धस्यानुभवो भवेन्
न भवेद्विघ्न कर कश्चित् चारित्रा वरणोदय
(पचाध्यायी श्लोक ६८८)

अर्थ—दर्शन मोहनीय कर्म का उपशमादि होने पर सम्यग्दृष्टि पुरुष को अपनी आत्मा का शुद्ध रूप अनुभव होता है। उस शुद्धानुभव मे चारित्र मोहनीय कर्म का उदय कुछ भी विघ्न वाधा नही कर सक्ता है। और भी खुलासा—

स्वसवेदन प्रत्यक्ष ज्ञान स्वानुभव द्वयम्
वैराग्य भेद विज्ञानभित्या द्यस्तीह कि बहु
(पचाध्यायी श्लोक ९४१)

अर्थ—स्वानुभव रूप मति, श्रुत दोनो ज्ञान अपने आत्मा का प्रत्यक्ष करते है। उसका ही यह फल है कि सम्यग्दृष्टि की आत्मा मे वैराग्य हो जाता हैऔर भेद विज्ञान होजाता है और अधिक क्या कहा जाय-

स्वरूपाचरण चारित्र सम्यग्दृष्टि के होता है इस वात का स्पष्ट कथन ऊपर के श्लोको से भली भाति सिद्ध हो जाता है। वैराग्य और भेद विज्ञान सम्यग्दृष्टि के हो जाता है यही वात भगवान कुदकुद स्वामी और आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने कही है।

भगवत्कुदकुद स्वामी कहते हैं—

सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेहिसो साहू
सम्मतपरिणदो उण खवेइदुट्ठकम्माण
(मोक्ष पाहुड गाथा १४)

अर्थ—जो सम्यदृष्टि साधु अपने आत्म द्रव्य मे रत है वह सम्यक्त्व परिणाम साधु दुष्ठ अष्ट कर्मो का क्षय करता है।

यह कथन मुनि पदधारी सम्यग्दृष्टि का है उसको स्वात्मरत अर्थात् अपने निजात्म स्वरूप मे लगा हुआ वताया गया है। अभी वह दुष्ट कर्मो का क्षय नही कर सका है आगे करेगा इसलिये वह

बीतरागी नही है फिर भी उसे स्वरूपाचरण वाला बताया गया है इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वरूपाचरण चारित्र पूर्ण बीतराग अवस्था मे ही होता हो। नीचे के गुण स्थानो मे नही होता है। इसका निराकरण (खण्डन) इस गाथा से भली भाति हो जाता है। अत स्वरूपाचरण चौथे गुण स्थान से लेकर चारित्र की क्रम २ से वृद्धि मे सर्वत्र होता है। और पूर्ण बीतरागता मे आत्मा अपने स्वरूप मे पूर्ण रूप से रत एव तन्मय हो जाता है।

निष्कर्ष—फलितार्थ

चतुर्थ गुण स्थान मे निश्चय सम्यग्दर्शन, और स्वरूपाचरण चारित्रहोता है इस सम्बन्ध मे समयसार आदि शास्त्रो मे जितना भी निश्चय सम्यग्दृष्टि का स्वरूप बताया गया है उससे उसके स्वरूपा-चरण चारित्र की सिद्धि होती है। इसलिये इस प्रकरण को हम समाप्त करते है। पूज्य त्यागी और आगम श्रद्धालु विद्वान इस प्रकरण का मनन करें और मत भेद को दूर करे। यदि पूर्वाचार्य रचित किसी शास्त्राधार से स्पष्ट रूप से मत भेद प्रतीत होता हो तो उसे प्रगट करे। आचार्य वचन ही आगम वादियो के लिये प्रमाण और हितकारी हैं।

सम्यग्दृष्टि के शुद्धोपयोग भी होता है

वृहद्द्रव्य सग्रह ग्रन्थ मे पृष्ठ १७३ निर्विचिकित्सा अग के स्वरूप निरूपण मे इस प्रकार लिखा है—

"निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहार निर्विचिकित्सा गुणस्य बलेन समस्त द्वेषादि विकल्प रूपकल्लोल माला त्यागेन निर्मलात्मानु भूति-लक्षणे निज शुद्धात्मनि व्यवस्थान निर्विचिकित्सा गुण"।

अर्थ—और निश्चय से तो इसी व्यवहार निर्विचिकित्सा गुण के बल से जो समस्त रागद्वेष (दर्शन मोहनीय सम्बन्धी) आदि विकल्प रूप तरगो का त्याग कर के निर्मल आत्मानुभव लक्षण निज शुद्ध आत्मा

मे स्थिति करना निर्विचिकित्सा गुल है"।

(हिन्दी टीका वृहद्द्रव्य सग्रह)

इसी वृहद्द्रव्य सग्रह के पृष्ठ १७७ मे प्रभावना अग लक्षण मे सस्कृत टीका यह लिखा है—

"निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहार प्रभावना गुणस्यवलेन मिथ्यात्व विषय कषाय प्रभृति समस्त विभाव परिणाम रूप पर समयाना प्रभाव हत्वा शुद्धोपयोग लक्षण स्वसबेदन ज्ञानेन बिशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाव निज शुद्धात्मन प्रकाशन मनुभवनमेव प्रभावनेति"।

अर्थ—"और निश्चय से इसी व्यवहार प्रभावना गुण के बल से मिथ्यात्व विषय कषाय आदि सम्पूर्ण विभाव परिणाम रूप पर मतो के (विभाव-पर भाव) प्रभाव को नष्ट कर के शुद्धोप योग लक्षण स्वसबेदन ज्ञान से निर्मल ज्ञान दर्शन रूप स्वभाव के धारक निज शुद्ध आत्मा का जो प्रकाशन, अनुभवन करना प्रभावना है"।

(वृहद्द्रव्य सग्रह हिन्दी टीका)

इस उपर्युक्त कथन से दो बाते सिद्ध होती हैं। एक तो यह है कि चतुर्थ गुणवर्ती सम्यग्दृष्टि के उपयोग को भी शुद्धोपयोग कहा गया है। और उस शुद्धोपयोग द्वारा स्वरूपावलोकन रूप स्वरूपाचरण भी बताया गया है। यह सब कथन सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुण स्थानवर्ती का है। क्योकि सस्कृत मे स्पष्ट लिखा है कि—

"मिथ्यात्व बिषय कषाय" इसमे चारित्र मोहनीय का उल्लेख नही है। आगे इसी पक्ति मे यह भी लिखा है कि— "विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव" यहा चारित्र का उल्लेख भी नही है। और यह प्रकरण भी अविरत सम्यग्दृष्टि का है।

रत्न करड श्रावका चार मे भी आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने "सम्यग्दर्शन शुद्धा" इस वाक्य से सम्यग्दर्शन धारक को शुद्ध बताया है। इसी श्लोक की हिन्दी टीका मे प० सदामुख जी ने लिखा है—

"जिन के शुद्ध सम्यग्दर्शन है किन्तु अव्रती है वे भी नरक गति और तिर्यं च गति मे नही जाते है" ।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने अविरत सम्यग्दृष्टि का ही ऊपर के श्लोक मे वणन किया है। उन्होने सम्य ज्ञान और सम्यक् चारित्र का वर्णन आगे किया है इसी वात को प० सदासुख जी ने लिखा है। इस सब कथन से यह सिद्ध है कि चतुर्थ गुण स्थान मे अविरत सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र और शुद्धोपयोग भी होता है। यहा पर यह विचार है कि दर्शन मोहनीय के अभाव मे शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया, ज्ञान भी सम्यज्ञान हो गया । आत्मावलोकन मे सम्य ज्ञान का उपयोग भी शुद्ध है । अत शुद्धोपयोग चौथे मे है । परन्तु सदैव स्थायी नही है शुभोपयोग भी है इसलिये सयम से होने वाला शुद्धोपयोग वहा नही है ।

विशेप खुलासा यह है कि शास्त्रो मे शुद्धोपयोग शुल्क ध्यान मे (आठवें गुण स्थान से) वताया गया है इस कथन मे किसी को कोई शका या विरोध नही है परन्तु नीचे के गुण स्थानो मे दशवें से चौथे गुण स्थानो मे भी शुद्ध सम्यग्दर्शन और शुद्धोपयोग पाया जाता है ऐसा भी शास्त्रो का कथन है। इन दोनौं कथनौ पर कोई २ विद्वान विरोध प्रगट करते हुए यह कहते हैं कि शुद्धोपयोग तो आठवे से ही होता है। उनके दृष्टिकोण से उनका कहना भी ठीक है किंतु नीचे के गुण स्थानो मे शुद्धोपयोग और शुभोप योग भी होता है। शुभोपयोग तो चौथे से दशवे तक अवश्य होता है पर शुद्धोपयोग कमी२ होता है। शुद्धोपयोग चारित्र मोहनीय के क्षयोपशम उपशमादि की अपेक्षा से तो होता ही है, और दर्शन मोहनीय के अभाव मे भी होता है जैसा कि वृहद्द्रव्य सग्रह के उद्धरणो से सिद्ध है । दूसरी वात यह भी है कि आठवें से जो शुद्धोपयोग होता है । नीचे शुभोपयोग और आशिक शुद्धोपयोग भी होता है। अथवा आठवे गुण स्थान से तो शुद्धोपयोग का उत्कृष्ट कोटिका कथन है जो पूर्ण वीतरागता मे

पूर्ण होता है। नीचे के गुण स्थानो मे जैसे २ चारित्र मोहनीय का अभाव होता है वैसे २ शुद्धोपयोग होता है। चौथे मे दर्शन मोहनीय के अभाव मे जघन्य एव आशिक शुद्धोपयोग तथा मुख्य रूप से शुभोपयोग होता है। परन्तु शास्त्रो के कथन मे विरोध नही है किन्तु अपेक्षा अथवा विवक्षा दृष्टि के भेद से भेद है। शास्त्रो के मनन से हमने शास्त्राधार से ऐसा अभिमत प्रगट किया है। विशेपज्ञ विद्वान् इस कथन पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर दोनो प्रकार के कथनो पर समन्वय अपेक्षा दृष्टि से करे। शास्त्रो के कथन बहुत सूक्ष्म, बहुत गभीर और रहस्य पूर्ण है। और वे हम सरीखे स्वल्प ज्ञानियो के अत्यन्त परोक्ष है। इसलिये अपने दृष्टिकोण से शास्त्रो मे विरोध अथवा किसी को आर्ष और किसी को अनार्ष कहने का हमे अधिकार नही है। क्योकि हम स्वल्पज्ञानी है।

दशवें गुण तकस्थान तथा शुभोपयोग ही ऐसा नियम नही है

कोई विद्वान धवल शास्श का प्रमाण देकर यह कहते है कि दशवे गुण स्थान तक कषाय का उदय रहता है अत वहा तक शुभोपयोग ही रहता है शुद्धोप योग तो ग्यारहवे से प्रारम्भ होता है ? परन्तु ऐसा नियम नही है। शुभोपयोग की मर्यादा दशवे गुण स्थान तक है यह ठीक है किन्तु वहा तक शुभोपयोग ही हो ऐसा समझना शास्श सम्मत नही है। क्योकि, आठवे गुण स्थान से जहा क्षपक श्रेणी का प्रारम्भ होता है वहा शुल्क ध्यान का भी प्रारम्भ हो जाता है। तब वहाँ शुद्धोप योग नही हो यह कैसे माना जा सक्ता है ? अत नीचे के गुण स्थानो मे शुभोपयोग और शुद्धोपयोग दोनो ही मानना शास्त्र सम्मत है।

सिद्धाँत मर्मज्ञ पूज्य त्यागियो एवं अनुभवी विद्वानो का अभिमत

स्वरूपाचरण चारित्र चतुर्थ गुण स्थान वर्ती निश्चय सम्यग्दृष्टि

के जघन्य रूप से होता है इस विषय मे सिद्धान्त मर्मज्ञ पूज्य त्यागियो और अनुभवी विशिष्ट विद्वानो का अभिमत नीचे लिखे अनुसार है—

(१) परम पूज्य आचार्य सुधर्मसागर जी महाराज ने चारित्र चूडामणि आचार्य शान्ति सागर सघस्थ सभी मुनिराजो को सस्कृत का अध्ययन करा कर उन्हे विद्वान बनाया तथा धर्म ध्यान प्रदीप सुधर्म श्रावकाचार आदि सस्कृत ग्रन्थो की रचना की है। उन्होने सुधर्म श्रावकाचार शास्त्र मे सम्यग्दर्शन के स्वरूप निरूपण मे कई श्लोक लिखे हैं उनमे आत्मानुभूति का वर्णन है जैसे—

शुद्ध ज्ञायकचिद्भावो स्व के येनानुभूयते
सम्यक्त्व तन्मत शुद्ध स्व स्वरूपानु लोकनम् (श्लोक ५६)

इस ग्रन्थ की टीका धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर श्री प० लालाराम जी शास्त्री ने की है। ऊपर के श्लोक का अर्थ उन्होंने यह लिखा है—

'जिस आत्म गुण के द्वारा अपने ही आत्मा मे शुद्ध ज्ञायक स्वरूप चैतन्य मय परिणामो का अनुभव होता है उसको शुद्ध सम्यग्दर्शन कहते हैं। अथवा अपने आत्म स्वरूप का अवलोकन करना भी शुद्ध सम्यग्दर्शन कहलाता है" स्पष्ट कथन है। इसी का नाम जघन्य रूप मे स्वरूपाचरण है।

(२) धर्म रत्न सरस्वती दिवाकर श्री प० लालाराम जी शास्त्री ने करीब ८०/६० सस्कृत शास्त्रो की टीकायें बनाई हैं। उन्होने उन टीकाओ मे निश्चय सम्यग्दृष्टि के आशिक रूप से स्वरूपाचरण का उल्लेख किया है।

(३) श्री प० जयचन्द जी जयपुर वालो ने सर्वार्थ सिद्धि अष्ठ पाहुड आदि शास्त्रो की टीकायें बनाई हैं। वे आज से १२५ वर्ष पहले हुए है। उनकी प्रशस्ति मे उन्हें श्री प० टोडरमल जी के समकक्ष लिखा है। उन्होने अष्ट पाहुड शास्त्र की अपनी टीका मे

स्पष्ट लिखा हे—

'जो वाह्य लिग सयुक्त हैं अरअभ्यन्तर कहिये भाव लिंग रहित हे सो स्वरूपाचरण चारित्र से भ्रष्ट भया मोक्ष मार्ग का नाश करने वाला है"।

(अष्ट पाहुड (मोक्ष पाहुड) गाथा ६१)

दर्शन पाहुड के छठे पृष्ठ मे उन्होने लिखा है—

"तहा अन्तरग सम्यग्दर्शन है सो तो जीव का भाव है और निश्चयकरि उपाधि से रहित शुद्ध जीव का साक्षात् अनुभव होता है" यही तो स्वरूपाचरण हे ।

(४) श्री प० सदासुख जी जयपुर वालो ने रत्न करड श्रवि-काचार की विस्तृत हिन्दी टीका लिखी है उन्होने रत्न करड श्राव-काचार के इकतालीसवे श्लोक की टीका मे वाक्य लिखे है—

"ऐसे दर्शन मोहनीय के अभाव मे सत्यार्थ श्रद्धान, सत्यार्थज्ञान, प्रगट होय है । अर अनन्तानुवन्धी के अभाव मे स्वरूपाचरण चारित्र सम्यग्दृष्टि के प्रगट होय है । यद्यपि अप्रत्याख्यान के उदय ते देश चारित्र नाही भया है अर प्रत्याख्यानावरण के उदय ते सकलचारित्र नाही प्रगट भया है तो हू सम्यग्दृष्टि के देहादिक पर द्रव्य तथा राग द्वेप आदिक कर्म जनित पर भाव इनमे दृढ भेद विज्ञान ऐसा भया हे" आदि ।

(रत्न करड श्रावकाचार हिन्दी टीका पृष्ठ ६४)

अविरत सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र का सम्दाव प्राचीन विद्वान श्री प० सदासुख जी ने कितना स्पष्ट लिखा है—

(५) स्व प गोपालदासजी बरैया जिन्होने अनेक सिद्धात ग्रन्थो का मनन अनुभव एव अध्यापन किया है स्वरूपाचरण चारित्र चतुर्थ गुण स्थान मे वताते हैं उन्होने जैन सिद्धात प्रवेशिका-सिद्धात का लक्षण ग्रन्थ बनाया है उसमे उन्होने चारित्र के चार भेद लिखे है—

स्वरूपाचरण चारित्र का चौथे गुण स्थान से प्रारम्भ बताया है । देश चारित्र पाचवें मे सकल चारित्र छठे से दशवे तक और यथाख्यात ग्यारहवें से बताया है।

ऊपर के महान् विद्वानो के समय मे स्वरूपाचरण का कोई विवाद भी नही था। परन्तु शस्त्रो के मनन से उन्होने लिखा है।

(६) श्री प० ब्र सुरेन्द्रनाथजी ईसरी वालो ने चौथे गुण स्थान मे सहेतक स्वरूपाचरण बताया है। ये अहर्निश स्वाध्यायशील विद्वान् है।

(७) श्री प ब्र हुकमचन्दजी हस्तिनापुर वालो ने भी स्वरूपाचरण चौथे गुण स्थान मे सम्यग्दर्शन का अविनाभावी बताया है। ये भी अहर्निश स्वाध्यायशील विद्वान् हैं।

(८) परम पूज्य आचार्य महावीर कीर्ति जी ने सम्यक्त्वाचरण का उल्लेख करते हुए सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण बताया है।

(९) परम पूज्य आचार्य देश भूषण महाराज ने स्वरूपाचरण का जघन्य रूप चौथे गुण स्थान मे बताया है। परम पूज्य आचार्य विमलसागर जी भी सम्यग्दर्शन का अविनाभावी स्वरूपाचरण बताते है।

(१०) परम पूज्य आचार्य नेमीसागर जी वोरीवली चौथे गुण स्थान मे स्वरूपाचरण बताते है। -

(११) श्री प० प्रवर टोडरमल जी ने लिखा है—

"समयसार विखे एकत्वे नियमतस्य इत्यादि कलशा लिखा है तिस विखे ऐसा कहा है कि जो इस आत्मा का पर द्रव्य ते भिन्न अवलोकन सो ही नियम ते सम्यग्दर्शन है"।

(मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ट ४६०)

यहा आत्मा के अवलोकन का अर्थ स्वरूपावलोकन अथवा स्वरूपाचरण ही है।

(१२) श्री मत्पडित प्रवर टोडरमल जी जयपुर ने गोमट्टसार, लब्धिकार, क्षपणासार आदि सिद्धात ग्रन्थो की टीकाएे वनाई है उन की विद्वता एव शास्त्रीय मनन वहुत अच्छा और ऊचा था इस बात को भी विद्वान् मानते है। वे भी स्वरूपाचरण चारित्र को चतुर्थ गुल स्थान मे मानते थे। उन्होने मोक्ष मार्ग प्रकाशक के चौथे अधि-कार मे मिथ्यादर्शन, निथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का (जैन ग्रन्थ रत्नाकर वम्वई द्वारा प्रकाशित मे) पृष्ठ १०५ मे लेकर पृष्ठ १२६ तक लिखा है। मिथ्या चारित्र का बर्णन करते पृष्ठ १२९ मे लिखा है।

'वहुरि इन राग द्वेषनि ही के विशेष क्रोधमान माया लोभ हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री वेद, पुरुप वेद नपु सक वेद रूप कपाय भाव है ते सर्व इस मिथ्या चारित्र के भेद जानने। इनका वर्णन पूर्वे किया ही है वहुरि इस मिथ्या चारित्र विखे 'स्व-रूपाचरण रूप' चारित्र का अभाव है ताते याका नाम चारित्र भी कहिये। बहुरि यहा परिणाम मिटै नाही अथवा बिरक्त नाही ताते याही का नाम असयम कहिये है वा अविरत कहिये है"।

(मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ट १२९)

यह मिथ्या चारित्र का वर्णन तीसरे गुण स्थान तक का है इसीलिये अचारित्र अथवा असयम अथवा अविरत ऐसा नाम उन्होने लिखा है। इससे स्पष्ट है कि श्री प० टोडरमल जी चौथे गुण स्थान मे सम्यक चारित्र और स्वरूपाचरण चारित्र बताते हैं।

(१३) स्वरूपाचरण के सम्बन्ध मे आचार्य शातिसागर जी का अभिमत—

चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य आचार्य शातिसागर जी महाराज का जीवन चरित्र श्री प० सुमेरचन्द जी दिवाकर न्यायतीर्थ शास्त्री ने लिखा है उसमे एक स्थल पर उनके ये वाक्य है—

"आचार्य श्री शातिसागर जी महाराज ने कहा कि सम्यक्त्व

और चारित्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है"। तब एक ही की प्रशसा क्यो की जाती है सम्यक्त्व के अभाव मे भी सासादन गुण स्थान वर्ती जीव नरक गति मे क्यो नही जाता इसका कारण यह यह है कि उसके पास कुछ चारिश है। चारित्र चक्रवर्ती ग्रन्थ के लेखक श्री प० सुमेर-चन्द जी दिवाकर ने उसी ग्रन्थ मे यह लिखा है कि—

"यहा आचार्य श्री की दृष्टि यह है कि सम्यक्त्व के होने पर अनन्तानुवन्धी नामक चारित्र मोहनीय के अभाव मे स्वरूपाचरण चारित्र होता है। अत "चारित्र सम्यक्त्व का साथी है"।

(चारित्र चक्रवर्ती)

वर्तमान मुनि सृष्टि के दीक्षा गुरु आचार्य शिरो मणि, आचार्य शातिसागर जी, महाराज धवल आदि सिद्धात शास्त्रो के पूर्ण अनुभवी थे वे भी चौथे गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि के सम्यक चारित्र और स्व-रूपाचरण मानते थे जिसका समर्थन श्री दिवाकर जी ने किया है।

(१४) परम पूज्य मुनिराज समन्तभद्र महाराज सम्यक्त्वाचरण का उल्लेख करते हुए उसी का अपर नाम स्वरूपाचरण वताते हैं।

(१५) परम पूज्य मुनिराज वृषभसागर जी महाराज (आचार्य शिवसागर जी सघस्थ) अविरत सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण का सम्दाव अविना भावी एव ज्ञान चेतना भी बताते हैं।

(१६) परम पूज्य मुनिराज निर्वाण सागर जी चौथे गुण स्थान मे स्वरूपाचरण आशिक रूप मे वताते है।

(१७) श्री ब्र प० विहारीलाल जी शास्त्री (आचार्य महावीर कीर्ति महाराज सघस्थ) भी चतुर्थ गुण स्थान मे स्वरूपाचरण का होना आवश्य भावी वताते हैं।

(१८) न्यायाचार्य श्री प० माणिकचन्द्र जी चौथे गुण स्थान मे स्वरूपाचरण का सम्दाव सम्यग्दर्शन के साथ आवश्यक वताते है।

स्वरूपाचरण पर पूज्य क्षुल्लक श्री सूरिसिंह का ग्रन्थ

पूज्य श्री चल्लक ब्र० सूरिसिंह जी पहले छात्रावस्था मे मोरेना महाविद्यालय मे पढे थे। उन्होने शास्त्री न्याय तीर्थ तक विद्वत्तापूर्ण अध्ययन और उत्तम अनुभव प्राप्त किया था। उन्हे पढाते हुए हमको उनकी गहरी गवेपणा से वहुत प्रसन्नता होती थी। वे दक्षिण प्रात के निवासी थे। पढने के वाद उन्होने दक्षिण मे जाकर वाल ब्रह्मचारी अवस्था मे क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण करली, फलटण की विद्वन्मण्डली ने आपको सिद्धात रत्नाकर पद से विभूपित किया था। पूज्य श्री क्षुल्लक सूरिसिह जी ने आज से ३४ वर्प पहले एक 'सम्यक्त्वादर्श' नामक सस्कृत ग्रन्थ की रचना की है। उस ग्रन्थ मे लिखा है—

सा चातिशय सम्पन्ना श्रुति माहात्म्य भावना
तथा स्वरूपताचार भवेद्भव बिनाशकम् पृष्ठ ४५
सोह मित्यात्त सस्कारो विशुद्धात्मानु भूतिक
सर्व द्वन्द्वविनिर्मुक्त स्वात्म भावोहि सौख्यद पृष्ठ ३६
(सम्यक्त्वादर्श)

अर्थ—मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धि कषाय के शात हो जाने से (इसके पूर्व के श्लोक द्वारा कथित) आत्मा मे श्रुत ज्ञान जनित माहात्म्य भावना अतिशय रूप धारण करती हुई स्वरूपाचरण चारित्र को प्रगट कर देती है। जो ससार को नष्ट कर देती है। उस आत्मा मे सोह, ऐसा सस्कार उत्पन्न हो जाता है वह विशुद्ध आत्मानुभूति रूप सस्कार सर्व द्वन्द्व-विकल्पो से रहित एव आत्मीय सुख देने वाला स्वत्मानुभव रूप है। और भी—

सम्यक्त्वस्य स्वरूप च विशुद्धात्मानु भूतिकम्
सम्यक्त्वे स्वानुभूतौ हि सम व्याप्ति प्रजायते पृष्ठ ४०
(सम्यक्त्वादर्श)

अर्थ—विशुद्ध आत्मानुभवरूप सम्यग्दर्शन का स्वरूप और सम्यग्दर्शन के साथ होने वाली स्वानुभूति इन दोनो की सम व्याप्ति है ।

समव्याप्ति का यह अर्थ है कि सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण ये दोनो अविनाभावी है । अर्थात् सम्यग्दर्शन के साथ स्वरूपाचरण चारित्र भी नियम से साथ ही हाता है ।

सम्यक्त्व, ज्ञान चेतना, स्वरूपाचरण तीनो एक समय में

सम्यक्त्व स्वानुभूतिश्च समता ज्ञान चेतना
स्वरूपाचरण चेति सह काले भवन्ति वै पृष्ठ १७६
(सम्यक्त्वादर्श)

अर्थ — जिस समय आत्मा मे सम्यग्दर्शन प्रकट होता है उसी समय स्वानुभूति ज्ञान चेतना और स्वरूपाचरण ये तीनो निश्चय से एक काल मे ही होते हैं । ग्रन्थाकार ने "वै" पद दिया है इसका स्पष्ट यही है कि सम्यग्दर्शन के प्रगट होते ही उसी समय ज्ञान चेतना और स्वरूपाचरण साथ ही नियम से प्रगट हो जाते हैं उस समय सम्यग्दृष्टि समताभाव (प्रशम सवेगादि) को धारण कर लेता है ।

जिन्होने क्षुल्लक पद मे रहते हुए जीवन भर सिद्धान्त ग्रन्थो का मनन एव चिंतन किया है और कई सस्कृत ग्रन्थो की रचना की है वे स्वरूपाचरण और ज्ञान चेतना का सद्भाव चतुर्थ गुण स्थान मे बहुत स्पष्ट रूप से लिख रहे हैं ।

इन उपर्युक्त विद्वानो एव पूज्य त्यागियो का अभिमत उनके रचे हुए शास्त्रो से, उनसे समक्ष मे हुई चर्चा से, और पत्राचार से प्राप्त हुआ है ।

निश्चय सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा का स्वय सवेदन करता है हम लोगो को तो वह शास्त्रानुसार विचारमात्र का विषय है । जैसे घी चखने वाले से कोई पूछता है कि घी का स्वाद कैसा है । चखने वाला उत्तर देता है कि घी मीठा है । पूछने वाला कहता है कि घी

पेडा सरीखा मीठा है। चखने वाला कहता है नही। फिर प्रश्न होता है क्या गुड या दाख जैसा मीठा है। उत्तर नही। तो फिर कैसा मीठा है ? इस प्रश्न के उत्तर मे यह कहा जाता है कि चखकर देखलो तभी घी के मीठेपन का परिचय एव स्वाद मालूम हो जायगा।

ठीक यही वात सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण की है यह विवाद का विषय नही है किन्तु जो शास्त्र सम्मत है उसे मानना चाहिये। निश्चय सम्यग्दशन होने पर स्वरूपावलोकन स्वय अनुभव का विषय है। फिर अन्तिम वात यह है कि जिनको जैसा जचे वैसा वे माने। परन्तु सिद्धान्त एव आगम का अनुशरण एव आदेश ही सवो के लिये हितकारी है।

जैन दर्शनाचार्य- श्री म   नलाल शास्त्री तिलक

विरचित इस ग्रन्थ का ज्ञान चेतना शुद्धोपयोग तथा परमपूज्य
आचार्यो, मुनिराजो एव विद्वानो द्वारा समर्थित
स्वरूपाचरण चारित्र का निरूपक

अ ॰ ॰ ॰ां अं ॰

श्रावक धर्म, मुनि धर्म, स्त्रियों द्वारा अभिषेक विधान, पूजन प्रकरण, प्रतिष्ठा प्रकरण तथा यज्ञोपवीत और आध्यात्म विषय निरूपण

सबसे जघन्य श्रेणी का जो श्रावक है वह पाक्षिक श्रावक होता है उसके लिए अष्टमूल गुणो का धारण करना आवश्यक है यह तो ऊपर लिखा जाचुका है। साथ ही उसका कर्तव्य धर्म यह बताया गया है कि--

देव पूजा गुरु पास्ति स्वाध्याय सयमस्तप
दानञ्चेति गृहस्थाना षट् कर्माणि दिने दिने

अर्थ — गृहस्थ श्रावक का कर्तव्य धर्म यह है कि वह प्रति दिन जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता रहे। मुनियो की उपासना अर्थात् मुनियो की पूजा भी करता रहे। स्वाध्याय करता रहे। यथा शक्ति सयम का पालन करता रहे, यथा शक्ति तप भी करता रहे और मुनि जन आदि पात्रो को दान देता रहे। ये सव कर्तव्य गृहस्थ श्रावक को प्रतिदिन करना आवश्यक है।

इन छह कर्तव्यो का खुलासा यह है कि देव पूजा का आशय शास्त्रानुसार यह है कि श्रावक अपने घर से शुद्ध अष्ट द्रव्य लेजाकर भगवान की पूजा करे। जो केवल भगवान के दर्शन ही करता है उसे भी कम से कम एक द्रव्य- चाहे अक्षत चाहे फल, कोई भी द्रव्य भगवान के चरणो मे चढाकर ही भगवान के दर्शन करना चाहिये। खाली-रीते हाथो से दर्शन करने का निषेध है। जब एक राजा के सामने रुपया या मोहर (गिन्नी) आदि भेंट कर उससे मिलते हैं तब तीन लोक के स्वामी भगवान के दर्शन अष्ट द्रव्य मे से कोई द्रव्य चढाकर ही करना चाहिये। यही उनकी बिनय और भक्ति है। पूजा के पहिले भगवान का अभिषेक करना चाहिये। यदि अभिषेक पहले हो चुका है तो भी दुबारा अभिषेक अन्य व्यक्ति कर सकता है वह सामुदायिक नही है किन्तु व्यक्तिगत है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। एक बार या दो बार का भी नियम नही है। जब भी जो पूजन करे अभिषेक कर सकता है। अभिषेक पूर्वक पूजन का बहुत अधिक पुण्य फल है। अभिषेक के बिना पूजन का भी पुण्य फल है। और पूजन के बिना केवल दर्शन का भी पुण्य फल है। किन्तु अभिषेक पूर्वक अष्ट द्रव्य से पूजन का अधिक फल है।

नग्न दिगम्बर साधुओ की पूजा भी अष्ट द्रव्य से प्रति दिन करना चाहिये। जहा मुनि महाराज नही है वहा उनकी परोक्ष पूजा की जाती है। जहा उनका विहार हो रहा हो वहा जाकर उनकी पूजा करना चाहिये और उत्तम पात्र दान देकर उत्तम पुण्य फल प्राप्त करना चाहिये।

चारो अनुयोगी शास्त्रो का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये। उनमे गृहस्थ के लिए प्रथमानुयोग और और चरणानुयोग के शास्त्रो का स्वाध्याय अधिक उपयोगी है। प्रथमानुयोगी शास्त्रो मे मोक्ष प्राप्त और मोक्षगामी पुरुषो के जीवन चरित्र हैं उन्हे पढने से और सुनने से आत्मा पर हितकारक एव धर्म धारण करने की उत्कट[illegible]ता

उत्पन्न हो जाती है। चरणानुयोगी शास्त्रो के स्वाध्याय से यह ज्ञान हो जाता है कि गृहस्थ को प्रारम्भ से कौन कौन क्रिया पालन करना चाहिये, कौन२ व्रत पालन करना चाहिये। गृहस्थ धर्म का आचार कहा तक है आदि बाते चरणानुयोग से विदित होती है। करणानुयोगी शास्त्रो से लोक अलोक का स्वरूप, लोक रचना का विस्तार, असख्यात द्वीप समुद्र आदि का परिज्ञान होता है। अमरीका, अफ्रीका, जापान, रूस, इग्लैण्ड, फ्रास जर्मन आदि सभी विदेश भरत क्षेत्र के आर्य खड मे ही है। द्रव्यानुयोगी शास्त्रो से द्रव्य गुण पर्याय, षट द्रव्य, उनका धर्म, आत्मा का स्वरूप आदि का बोध होता है। सर्वज्ञ प्रतिपादित एव गणधर श्रुत केवली आचार्य प्रत्याचार्यो द्वारा रचित शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिये। उन प्राकृत सस्कृत शास्त्रो की जो हिंदी मराठी, गुजराती भाषा मे बनाई हुई टीकायें यदि मूल ग्रन्थ के पूर्ण रूप से अनुकूल है वे भी आर्ष हैं। क्योकि वीतराग महर्षियो के बचनो के अनुकूल है। इसीलिये वे प्रमाण हैं। किन्तु जो टीकाये शास्त्रो के प्रतिकूल है टीकाकार ने अपने स्वतन्त्र विचार टीका मे भर दिये हैं वे टीकाये आर्ष नही है और प्रमाण नही है।

आज कल दैनिक समाचार पत्र प्रात काल घर घर मे लिये जाते हैं उनको प्रदिदिन लोग पढते हैं। उन पत्रो से देश विदेश के समाचार, घटनायें, व्यापारिक एव औद्योगिक बातो का परिचय मिलता है परन्तु उनसे आत्मा के हित की कोई बात नही मिलती है अत समाचार पत्रो का पढना स्वाध्याय नही है। आर्ष ग्रन्थो का पढना ही स्वाध्याय है।

गृहस्थ का यह भी कर्तव्य धर्म है कि वह हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पापो का एक देश त्याग करें, इन्द्रिय विषयो मे आसक्त न होकर उनसे बिरक्त होने का प्रयत्न करें। जीवो के रक्षण मे, सदैव सावधान रहे। अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करे। इसी प्रकार एकाशन, उपवास रसो का त्याग, ब्रह्मचर्य पालन, जपन, सामायिक

आदि तप का पालन भी यथाशक्ति करे। यह सब गृहस्थ का कर्तव्य धर्म है।

नैष्ठिक श्रावक एक देश सयमी कहा जाता है। वह पहली प्रतिमा से लेकर दशमी प्रतिमा तक क्रम से प्रतिमाओ मे नियत व्रतो का अनिवार्य पालन करता है। आगे की प्रतिमा धारण करने वाले को उसके पहले की सभी प्रतिमाओ का पालन करना परमावश्यक है दशमी प्रतिमा तक श्रावक घर मे रह सकता है परन्तु वह गृह कार्य व्यापारादिक तथा विवाह आदि कार्यों मे अपनी सम्मति नही देता है। वह वानप्रस्थ (गृह कार्यो से विरक्त केवल धर्म साधन मे अनुरक्त) अवस्था वाला बन जाता है। उससे आगे ग्यारहवी प्रतिमा मे वह श्रावकोत्तम कहलाता है। उस समय वह घर से निकल कर मुनियो के चरण सान्निध्य मे क्षुल्लक पद अथवा ऐलक पद की दीक्षा लेता है। फिर वह घर से सर्वथा सम्बन्ध हटाकर मुनियो के पास ही रहता है और वह मुनि का लघुनन्दन त्यागी बन जाता है।

क्षुल्लक पद मे एक लगोटी तथा एक खण्ड वस्त्र रखने का विधान है। और अपने शिर के केश (बाल) छुरा कैंची से बनवा सकता है। अभ्यास के लिए एकान्त मे केश लु चन कर सकता है। और बैठ कर एक छोटे पात्र मे दाता के घर पर भोजन करता है। क्षुल्लक के लिए भी अर्घ्य देने का विधान हैं।

ऐलक का पद उससे बडा है। वह केवल लगोटी रखता है। बठकर या खडे होकर हाथ मे दिया हुआ ही आहार लेता है। हाथो से केश लु चन करता है। मुनि के समान उसका पाद प्रक्षालन अर्घ्य दान होता है।

यही चर्या स्त्री की है। वह क्षुल्लिका और आर्यिका बन जाती है। आर्यिका पद ऐलक से भी ऊ चा है। यद्यपि ऐलक एक लगोटी मात्र परिग्रह रखता है। आर्यिका १२ हाथ की साडी रखती है फिर भी ऐलक पहले उसे वदना करता है आर्यिका पीछे उसकी प्रतिवदना

करनी है। इसका कारण यह है कि स्त्रियो मे प्राकृतिक एव स्वाभाविक लज्जा गुण रहता है। अत आर्यिका वस्त्र छोडने मे असमर्थ है फिर भी वह उपचार से मुनि तुल्य मानी जाती है। अत पाद प्रक्षालन केशलु चन आदि क्रिया मे मुनि के समान वह करती है।

स्त्रियां भी अभिषेक करने की अधिकारिणी हैं

स्त्रिया भगवान का अभिषेक कर सकती हैं या नही ? इस विषय पर समाज मे बहुत मतभेद एव विवाद है आधा भाग समाज का स्त्रियो द्वारा अभिषेक का समर्थक है और आधा भाग उसका निषेधक है। यह समर्थन और निपेध शास्त्राधार से है ऐसा भी नही है किन्तु घरानो की परम्परा और सस्कारो से विधान और निषेध किया जाता है। जो पक्ष स्त्रियो द्वारा अभिषेक होने का निषेध करता है उस पक्ष का यह कहना है कि स्त्रिया सदैव अशुद्ध रहती हैं इसलिये वे अभिषेक करने की पात्र नही है। इतना ही नही किन्तु वह निषेध करने वाला पक्ष यह भी कहता है कि जहा जहा जो स्त्रिया अभिषेक करती हैं वह धर्म विरुद्ध कार्य है। ऐसा समझकर वह अभिषेक करने वाली स्त्रियो का गहरा विरोध और उस परम्परा को— स्त्रियो द्वारा भगवान के अभिषेक करने की प्रथा को नितान्त अनुचित समझ कर बुरी दृष्टि और घृणा की दृष्टि से देखता है। इसीलिये हम यहा पर इस विषय का खुलासा करना आवश्यक समझते हैं। स्त्रियाँ अभिषेक करें या नही करे। अथवा जहा जैसी मान्यता है उस विषय मे हम हस्तक्षेप नही करना चाहते है। परन्तु जहा जो स्त्रिया अभिषेक करती है वे धर्म विरुद्ध अथवा आगम विरुद्ध कार्य करती है ऐसी धारणा और मान्यता जो रखते हैं उसका समाधान करना हम आवश्यक समझते हैं। इस सम्बन्ध मे अपने अभिप्राय या विचारो को स्वतन्त्र रूप से कोई पक्ष पकड कर कुछ भी कहना हम आगम विरुद्ध मानते है।

हम तो यह स्पष्ट कह देना उचित समझते हैं कि स्त्रियां

आगमानुसार भगवान का अभिषेक कर सकती हैं या नही ? अथवा वे अभिषेक करने की पात्र है या नही ? या वे सदैव अशुद्ध ही रहती हैं क्या ? इस सम्बन्ध मे आगम का क्या विधान है ? और सदैव से चतुर्थ काल से स्त्रिया अभिषेक करती आरही हैं इसी का खुलासा हम करते हैं फिर कोई करो या मत करो या जहा जैसी मान्यता है वैसा करे इस विषय मे हम कुछ भी नही कहना चाहते हैं।

अधिकार का समाधान

अधिकार के सम्बन्ध मे शास्त्रो (पूर्वाचार्यों) का विधान यह है कि तीन वर्ण– (ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य) वाले मनुष्य मुनिदान, भगवान का अभिषेक करने के पात्र है। ये ही तीनो बर्ण वाले मनुष्य दीक्षा ग्रहण करने के पात्र है जैसा कि– "दीक्षायोग्यास्त्रयो वर्णा" यह भगवज्जिनसेनाचार्य का वाक्य है। इन तीनो वर्णो से भिन्न शूद्र वर्ण वाले मनुष्य न तो अभिषेक और मुनिदान के अधिकारी हैं और न वे दीक्षा के अधिकारी है। शूदो मे भी स्पृश्य और अस्पृश्य ऐसे दो भेद हैं। जैन धर्म धारण करने का जोवमात्र को अधिकार है। परन्तु अस्पृश्य शूद्र जैन धर्म धारण कर लेने पर भी जिन मन्दिर के भीतर नही जासकते हैं। वे मन्दिर के बाहर रहकर ही भगवान के दर्शन करते हैं। जैसे उच्च वर्ण की धर्मनिष्ठ रजस्वला स्त्री अशुद्धि के कारण तीन चार दिन तक जिन मन्दिर मे नहो जाती हैं उसी प्रकार अशुद्ध पिंड, अशुद्ध पेशा, अशुद्ध प्रवृत्ति मे सना हुआ अस्पृश्य जिन मन्दिर के भीतर प्रवेश करने का पात्र नही है। परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने एक महतर को जैन बनाया था। वह रात्रि मे भोजन नही करता था औप मन्दिर के बाहर बैठकर ढप बजाकर भगवान की स्तुति करता था। यह हमने दक्षिण मे प्रत्यक्ष देखा था यह तो अधिकार की बात है परन्तु ऐसे मनुष्यो से भी घृणा नही करके प्रेम और दयाभाव से उन्हे वस्त्र भोजन आदि देकर उसकी सहायता करनी चाहिये।

प्रकरणगत आगम यह है कि जो व्यक्ति भगवान का अभिषेक करने का अधिकारी है वही मुनिदान देने एव दीक्षा लेने का अधिकारी है। स्त्रिया मुनिदान देती हैं, दीक्षा भी ग्रहण करती है अत वे भगवान का अभिषेक करने की भी अधिकारिणी हैं।

अभिषेक करने का पात्र

जो अष्ट मूल गुण धारी पाक्षिक श्रावक है वह भगवान का अभिषेक साधिकार करता है। वर्तमान मे व्यवहार सम्यग्दृष्टि पाक्षिक श्रावक भगवान का अभिषेक निर्विवाद रूप से अभिषेक करते हैं। तो क्या कारण है कि पाक्षिक श्राविका अभिषेक नही कर सके। स्त्रिया तो मुनि तुल्य आर्यिका पूज्य पद भी ग्रहण करती है और वर्तमान मे अनेक आर्यिकाऐं हमारे सौभाग्य से सर्वत्र सघो के साथ विहार कर रही है। इतना सर्वोपरि महान पूज्य पद प्राप्त करने वाली स्त्रिया भगवान का अभिषेक करने की पात्र नही हैं ऐसा समझना शास्त्र विरुद्ध है।

अशुद्धता का समाधान

यह तर्क भी मिथ्या एव आगम विरुद्ध है कि स्त्रिया सदैव अशुद्ध रहती हैं। यह तर्क प्रत्यक्ष वाधित भी है। परम विशुद्ध आहार ग्रहण करने वाले मुनि गण स्त्रियो द्वारा बनाया हुआ और उनके हाथो से दिया गया आहार लेते है। आज भी लेते हैं और चतुर्थ काल मे भी लेते थे। वे जिन मन्दिरो मे पूजन करती हैं और शास्त्रो का स्वाध्याय भी करती है ऐसी अवस्था मे उन्हे सदैव अशुद्ध बताना प्रत्यक्ष वाधित है।

विवेकपूर्ण शुद्धता

स्त्रिया सदैव भगवान का अभिषेक और मुनिदान नही कर सकती है। उनमे भगवद्भक्ति के लिए विवेक एव शुद्धता भी आवश्यक है। इस शका का स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

स्त्री पर्याय मे उत्तम सहनन नही होता है और स्वाभाविकी लज्जा के कारण वह सवस्त्र ही रह सकती है इसलिये वह स्त्री पर्याय से मोक्ष जाने की अधिकारिणी नही है। इसी प्रकार प्रति माह उसमे मासिक धर्म से होने वाली अशुद्धि के कारण वह अस्पृश्यसम अशुद्ध भी बन जाती है। इसीलिये अशुद्ध अवस्था मे वह मुनि दान और अभिषेक कर नही सकती हैं। साथ ही जिन मन्दिर मे जाने का भी उसे अधिकार नही है। जब पाचवे दिन शुद्ध हो जाती है तभी वह मुनिदान और अभिषेक कर सकती है।

जिन स्त्रियो को असमय मे मासिक धर्म होता है और कभी भी अशुद्धता आसकती है उन्हे मुनिदान और अभिषेक करने का सर्वथा निषेध है। विवेक की सर्वत्र आवश्यकता है। विवेक पूर्वक अशुद्धता की सभावना मे भी अभिषेक और मुनिदान उन्हे नही करना चाहिये अन्यथा पुण्य कमाने के स्थान मे भारी पाप बध होगा।

समय पर मासिक धर्म वाली स्वस्थ एव निरोग स्त्रियो को भी मासिक धर्म होने के दो चार दिन पहले ही मुनि दान और अभिषेक नही करना चाहिये। एक बात यह भी है कि प्राय स्त्रिया प्रति दिन शिर से स्नान नही करती हैं किन्तु गले से स्नान करती हैं ऐसी स्त्रिया मुनिदान और प्रभिषेक करने की पात्र नही हैं। अत मुनि दान और भगवान का अभिषेक वे ही स्त्रिया कर सकती है जो शिर से स्नान करती है। सिद्धान्त यह है कि वस्त्र शुद्धि शरीर शुद्धि और स्वस्थ निरोग अवस्था मे ही स्त्रिया भगवान का अभिषेक और मुनि दान की पात्र हैं। परन्तु विवेक पूर्वक शुद्ध अवस्था वाली स्त्रिया अभिषेक नही करे। अथवा स्त्री पर्याय मे अभिषेक नही करना चाहिये ऐसी जिनकी धारणा है वह आगम विरुद्ध है और स्त्रियो के धर्म साधन मे बाधक है साथ ही जो स्त्रिया अभिषेक करती हैं उन्हे धर्म विरुद्ध बताना है।

पुरुष स्त्रियो का समानाधिकार

गृहस्थ जीवन मे पति पत्नी का धार्मिक प्रवृत्ति मे शास्त्रो मे समान अधिकार वताया गया है। पच कल्याणक प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा सिद्धचक्र विधान, आदि धार्मिक कार्यो मे पति पत्नी दोनो दम्पती ककण वधवाकर एक साथ अभिषेक पूजन करते हैं, अभिषेक करते हैं रथ मे साथ बैठते हैं। वस्त्र भी पीले पहनते हैं।

स्त्रियो को अभिषेक करने के अनेक प्रमाण

स्त्रियो को अभिषेक करने के पूर्वाचार्यो ने अनेक प्रमाण वताये है। पुराण शास्त्रो और कथा ग्रन्थो मे व्रत विधानो मे सर्वत्र स्त्रियो द्वारा अभिपेक एव पचामृताभिषेक करने का विधान पाया जाता है। कुछ प्रमाण यहा दिये जाते है—(सुगध दशमी कथा ग्रन्थ से उद्धृत)

भद्र भाद्र पदे मासे शुल्केस्मिन् पचमी दिने ।
उपोष्यते यथाशक्ति क्रियत्ते कुसुमाञ्जलि ॥ ५६ लोक
तथा षष्टम्या च सप्तम्या अष्टम्या नवमी दिने
जिनाना मग्रतो भूयो दशम्या जिनवेश्मनि ६० श्लोक
उपवास समाध्यय विधिरेष विधीयत्ते ।
चतुर्विशतितीर्थेषा स्नपन प्रणीयते ॥ ६१ श्लोक

इन श्लोको की नीचे हिन्दी टीका छपी है उसमे अर्थ यह छपा है– मुनिराज बोले– उत्तम भाद्र पद मास के शुक्ल पक्ष की पचमी के के दिन उपवास करना चाहिये और भगवान को कुसुमाञ्जलि चढाना चाहिये उसी प्रकार मन्दिर में षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नौमी फिर दशमी को भी भगवान के आगे कुसुमाञ्जलि चढाना चाहिये। दशवी को पुन उपवास धारण करके निम्न विधि से व्रत पालन करना चाहिये। उस दिन चौवीसौ भगवान का अभिषेक करके दश पूजाये, दश स्तुतिया पढना चाहिये दश वार जाप देना चाहिये।

सुगन्ध दसवी व्रत दश वर्ष तक पालन करके अन्त मे उद्यापन

करना चाहिये । उस अवसर पर शान्ति विधान आदि करना चाहिये यथा–

पूर्णेथ दशवे वर्षे तदुद्यापनमाचरेत् ।
शान्तिक वाऽभिषेकम्वा महान्त विधिवात् सृजेत् ॥ ९६

अर्थ – दशवे वर्ष मे व्रत पूर्ण होने पर उद्यापन करना चाहिये उसमे शान्ति विधान भगवान का महान् अभिषेक विधिवत् करना चाहिये । (सुगन्ध दशमी कथा)

यह सब वर्णन बहुत विस्तार से सुगन्ध दशवी कथा मे लिखा गया है।यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञान पीठ वनारस से प्रकाशित है । ११)रु० इस ग्रन्थ का मूल्य है । यह ग्रन्थ प्राकृत सस्कृत भाषाओ मे डेढ हजार वर्ष पहले महात् आचार्य श्रुत सागर आदि पूर्वाचार्यो ने रचा है । ग्रन्थ प्रारम्भ मे लिखा है कि राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर से सुगन्ध दशमी व्रत की कथा पूछी उत्तर मे गणधर देव ने उस व्रत का विधान फल आदि सव वताया ।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि पुरातन काल मे पूर्वाचार्यों ने तथा गणधर देव ने स्त्रियो द्वारा अभिषेक करने का विधान वताया है । इतना महान प्रमाण मिलने पर स्त्रियो द्वारा अभिषेक का निषेध करना पूर्वाचार्यो, गणधर देव और शास्त्रो का विरोध एव तिरस्कार करता है ।

और भी प्रमाण पूर्वाचार्यों के पढिये

उत्तर पुराण के रचयिता भगवद्गुण भद्राचार्य कृत
जिनदत्त चरित्र सर्ग १

गृहीत गन्ध पुष्पादि प्रार्चना सपरिच्छदा ।
अथैकदा जगामैषा प्रातरेव जिनालयम् ॥५५॥
त्रि षरीत्य तत्त स्तुत्वा जिनाश्च चतुराशया ।
सस्नाप्य पूजयित्वा च प्रयाता यति ससदि ॥५६॥

अर्थ– एक दिन की बात है सेठानी जी वजसा स्नान आदि से शुद्ध होकर दास दासियो के साथ सवेरे ही जिन मन्दिर मे भगवान जिनेन्द्र देव के दर्शन के लिये गई। वहा पहुच कर उसने पहिले तो जिनदेव की तीन प्रदक्षिणा दी और बाद स्तुति पूर्वक भगवान का विंबाभिषेक किया, पूजन की और फिर वह मुनियो की सभा मे गई।

यह जिनदत्त चरित्र भगवद्गुणभद्राचार्य द्वारा बनाया गया है। भगवद्गुणभद्राचार्य हर एक विषयो मे कितना अगाध पाडित्य रखते थे और महान् ग्रन्थो के रचने मे उनकी कितनी असाधारण क्षमता थी यह बात तो केवल इसी से जानी जासकती है कि अनेको शिष्यो के रहते हुए भी महापुराण को पूर्ण करने का श्रेय केवल उनको मिला।

भगवद् गुणभद्राचार्य के वर्तमान मे आदि पुराण से अवशिष्ट भाग के अलावा उत्तरपुराण, आत्मानुशासन और जिनदत्त चरित्र ये तीन ग्र थ मिलते हैं।

बृहन्नेमिचद्र कृत श्रीपाल चरित्र पृष्ठ न० ६

अथैकदा सुता सा च सुधी मदन सुन्दरी।
कृत्वा पचामृतै स्नान जिनाना सुख कोटिदम्॥

अर्थ– इसके अनन्तर एक दिन गुणवती वह मैना सुन्दरी करोडो सुखो के देने वाले जिनेन्द्र भगवान का पचामृताभिषेक पूर्वक अभिषेक करके–

आराधना कथा कोप तीसरा भाए पृष्ठ न० ४२१

तदा वृषभ सेना च प्राप्य राज्ञी पद महत्।
दिव्या भोगान्प्रभुजाना पूर्व पुण्य प्रसादत॥
पूजयती जगत्पूज्यान् जिनान् स्वर्गापवर्गदान्।
दिव्यै रप्ट महाद्रव्यै स्नपनादिभिरुज्वलै॥३९॥

अर्थ– औषधदान मे वृषभसेना प्रसिद्ध हो चुकी है। उसमे लिखा है पूर्व पुण्य के प्रभाव से वृषभसेना ने महारानी के पद को प्राप्त

किया तथा स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले जिनेन्द्र भगवान की अभिषेक पूर्वक अष्ट द्रव्यो से पूजन करती हुई।

(जिनसेनाचार्य कृत हरिवश पुराण सर्ग)

इत्युक्तो नोदयद्वेगात्सारथि रथ मापस ।
जिन वेश्म तमारथाप्य तौ प्रविष्टौ प्रदक्षिणा ॥२०॥
क्षीरेक्षु रस धारौघै घृत दध्युदकादिभि ।
अभिषिच्य जिनेन्द्रार्चा मर्चिता नृसुरासुरै ॥११॥

हरिवश पुराण के भाषा टीकाकार श्री प० गजाधरलाल जी न्यायतीर्थ है। उन्होने उक्त श्लोको का अनुवाद इस तरह से किया है।

अर्थ– गन्धर्व सेना के ऐसे वचन सुनते ही सारथी ने रथ हाक दिया और मन्दिर के पास मे जाकर खडा किया। रथ से उतर कर कुमार और गन्धर्व सेना ने जिनालय मे प्रवेश कर भगवान की तीन प्रदक्षिणा दी, तथा दूध, ईख का रस, घी, दही और जल से भगवान का अभिषेक किया।

(आचार्य सकलकीर्ति कृत शातिनाथ पुराण सर्ग)

यह वर्णन विजयार्ध पर्वत पर स्थित अकृत्रिम जिनालय का है। जिसमे बताया गया है कि वहा पर देवगण देवाँगनाये विद्याधर और विद्याधरिया आदि सब मिलाकर महान समारोह के साथ जिनेन्द्र पूजन के लिए आते हैं। इसी प्रकरण मे विद्याधरियो के जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक करने का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। हम ग्रन्थ की पक्तियो को ज्यो की त्यो रख देते है–

उनमें से पूर्वकूट के ऊपर भगवान अरहत देव का अकृत्रिम जिनालय है जो कि अनेक तरह के रत्नो से जडा हुआ है और अत्यन्त सुन्दर है। वहा पर अनेक विद्याधर प्रतिदिन विमानो मे बैठकर जय२ शब्द करते हुए भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा करने के लिए आते हैं ४१

इसी प्रकार गीत गाती हुई और नृत्य करती हुई विद्याधरिया भी उस जिनालय मे भगवान की पूजा करने के लिये आती हैं और

कितनी ही भगवान की पूजा करती हैं और अपने आनन्द के अत्यन्त रस मे मग्न हुई कितनी ही विद्याधरियां बाजे बजाती हैं।४३। कितनी ही विद्याधरिया बडे उत्सव के साथ भगवान जिनेन्द्र देव का अभिषेक करती है।

पद्मपुराण पर्व ६६

अभिषेकैं जिनेन्द्राणा मत्युदारैश्च पूजनै ।
दानैरिच्छाभि पूरैश्च क्रियता मशुभेरणम् ॥१६॥
एवमुक्ता जगौ सीता देव्य साधुसमीरितम् ।
दान पूजाऽभिषेकश्च तपश्चाशुभ सूदनम् ॥१६॥

अर्थ– यहाँ सीता से कहा गया है कि हे देवी अशुभ कर्म को दूर करने के लिए जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक तथा पूजन करो और दान दो। इस प्रकार उनके कहने पर सीता ने उसे स्वीकार किया।

(भगवज्जिनसेनाचार्य कृत आदि पुराण पर्व ४३)

तत्प्रतीष्याभिषेकांते महापूजा प्रकुर्वती ।
महास्तुतिभिरर्थ्याभिस्त्रुवती भक्तितोऽर्हत ॥१७४॥

ददती पात्र दानानि मानयती महामुनीनित्यादि आदि पुराण के भाषा टीकाकार श्री प० दौलतरामजी ने उपर्युक्त श्लोको का अनुवाद इस तरह से किया है।

वह नाना प्रकार मणिमई अनेक जिन प्रतिमा करावें और तिनकी पूजा के अर्थि अनेक मणिमई हेममई उपकरण करावै। अर वह सुलोचना अनेक जिन मन्दिर बणाय जिन प्रतिमा अभिषेक करि महापूजा करै अर बारम्बार अर्थयुक्त स्तुति करि अर्हंतदेव की स्तुति करै। अर निरन्तर पात्रदान करें महामुनिन की अति स्तुति करै।

(आचार्य वीरनन्दी कृत चन्द्रप्रभु, महाकाव्य सर्ग ३)

तस्मिन् विधाय महती मुपवास पूर्वां,
पूजा जगद्विजयिनो जिनपुंगवस्य ।

स्नान समीहित निमित्त मथस्तदीय'
विबस्य स प्रविदधे सहितोऽग्रदेव्या ॥६१॥

अर्थ– उस पर्व के दिन राजा ने व्रत धारण पूर्वक जगद्विजयी जिनेन्द्र की भारी पूजा की। और फिर अपनी कामना पूर्ण होने की अभिलाषा से रानी सहित जिन बिम्ब का अभिषेक किया।

(मडलाचार्य श्री धर्मचन्द्र जी विरचित गौतम चरित्र सर्ग ३)

श्री वीरनाथ बिंबस्य स्नपन क्रियते मुदा-
इक्षु-सुघृत-सद्दुग्ध-दधि-वारिभृतैर्घटै ।१६।
तत पूजा प्रकर्तव्या वीरस्य सलिलादिभि ।
हृद्वाक्काय स्थिरी कृत्य दुष्कृतनाशन हेतवे ॥१७॥

अर्थ– यहा पर मुनिराज तीन कन्याओ को उपदेश देते हैं कि हे पुत्रियो पापो का नाश करने के लिए प्रथम ही श्री वर्द्धमान स्वामी का प्रतिबिम्ब स्थापन कर इक्षु, रस, घृत, दूध, दही और जल से भरे हुए कु भो से अभिषेक करना चाहिये।

तदनन्तर मन, बचन काय को स्थिर कर जल चन्दन आदि आठ द्रव्यो से भगवान वर्द्धमान स्वामी का पूजन करना चाहिये। इन तीनो कन्याओ मे से एक कन्या का जीव ही अन्त मे गौतम गणधर की महान् पदवी को प्राप्त करता है।

(आचार्य सकल भूषण कृत षट्कर्मोपदेश रत्नमाला)

इतीम निश्चय कृत्वा दिनाना सप्तक सती ।
श्री जिन प्रतिबिंबाना स्नपन सा तदाऽकरोत् ॥
चदना गुरु कर्पू र सुगधैश्च बिलेपनै ।
सा राज्ञी विदधे प्रीत्या जिनेन्द्राणा त्रिसध्यकम् ॥

अर्थ– उस सती रानी ने ऐसा निश्चय कर सात दिन तक तीनो समय भगवान का अभिषेक किया और चन्दन अगुरु कपूर आदि सुगन्धित द्रव्यो से भगवान की पूजन की।

आराधना कथाकोष पृष्ठ ४०२ रात्रि भोजन त्याग की कथा मे लिखा है।

ततस्तयो जिनेन्द्राणा महास्नपन पूर्वकम् ।
कल्याण दायिनी पूजा पात्रदान सुखप्रदम् ॥१॥
कुर्वतो सुखत कैश्चि मासैर्जात सुतोत्तम

अर्थ– इसके अनन्तर सेठ और सेठानी द्वारा भगवान का अभिषेक पूर्वक पूजन करते हुए तथा पात्र दानादि शुभ कार्य करते हुए समय व्यतीत हुआ। और कुछ महिनो बाद सेठानी धनमित्रा ने पुत्र प्रसव किया।

जिनवाणी सग्रह मे दश लक्षण व्रत कथा

कन्या बोली किह विध करे, किस दिन तें यह व्रत हग करे ।
तब गुरु बोले वचन रसाल, भादव मास कह्यो सुखमाल ॥
शुकल पचमी दिन सो लेय, पचामृत अभिषेक करेय ।
पूजार्चन कीजे शुभ सही, जिन चौबीस तणी सुखमही ॥

यहा चार कन्याओ को मुनिराज ने उपवास के दिन अभिषेक पूजन करने का उपदेश दिया है तदनुसार कन्याओ ने अभिषेक किया है।

(सुगन्ध दशमी व्रत की कथा मे)

ऐसे बचन सुने मुनि जबै, तब बोले पुत्री सुन अबै ।
भादो शुक्ल पक्ष जब होय, दशमी दिन आराधो सौय ॥
पचामृत की धारा देव, मन मे राखो श्री जिनदेव ।
शीतल जिनकी पूजा करो, मिथ्या मोह दूर परिहरो ॥

यहा पर भी मुनिराज ने उपदेश दिया है कि हे पुत्री भाद्रपद शुक्ला दशमी के दिन उपवास करो तथा जिनेन्द्र भगवान का अभिषक पूजन करो जिससे अशुभ कर्मो का नाश होवे।

(व्रत कथा कोप)

शुक्ल श्रावण मासस्य सप्तमी दिवसेऽर्हताम् ।
स्नपन पूजन कृत्वा भक्त्याष्ट विधमूर्जितम् ॥

अर्थ– मुनिराज ने कन्या को व्रत की विधि बतलाई कि हे पुत्री श्रावण शुक्ला सप्तमी को उपवास करना चाहिये। उसी दिन भगवान का अभिषेक कर अष्ट द्रव्यो से पूजन करना चाहिये।

उपर्युक्त प्रमाणो से सिद्ध होता है कि स्त्रियो को अभिषेक करने का पूर्ण अधिकार है। अभिषेक पूजन का ही एक अग है। इसके बिना पूजन अगहीन पूजा के नाम से पुकारी जाती है। इसलिये स्त्री हो या पुरुष पूजन अभिषेक पूर्वक ही करना चाहिये। फिर भी जो लोग केवल अपनी मनोकल्पना से स्त्रियो मे अशुद्धता का दोष लगाकर उन्हे अभिपेक करने से रोकते है वे वास्तव मे आचार्यो के आदेश की अवहेलना करते हैं और अशुभ कर्म का बध करते है स्त्रिया अगर चौबीस घन्टे ही अशुद्ध रहती तो साक्षात् तीर्थंकर भगवान महावीर ने चदना के हाथ से आहार नही लिया होता। जो स्त्री तीर्थंकरो को पैदा कर सकती है उन्हे मुनि अवस्था मे दान दे सकती हैं। एव जो उनकी नवधा भक्ति चरण प्रक्षालन कर सकती है। आर्यिका का महान पद प्राप्त कर सकती है। वह स्त्री उनकी प्रतिमा का स्पर्श न कर सके यह कैसी बात है। शास्त्रो मे ऐसे एक नही अनेको प्रमाण मिलते हैं। जहा पर स्त्रियो ने स्वय अपने हाथो से प्रतिमा को स्थापन कर पूजन किया। उदाहरण के लिए पद्मपुराण सर्ग १७ को खोलकर देखें। जहा पर अजना और उसकी सखी बसतमाका दोनो गुफा के अन्दर मुनि सुव्रतनाथ की प्रतिमा स्थापन कर पूजा भक्ति करती थी।

मुनिसुव्रतनाथस्य विस्यस्य प्रतियातना,
अर्चयन्त्यौ सुख प्राप्त्यै स्वमोदै कुसुमैरल ।

अर्थ– उस गुफा मे मुनि सुव्रतनाथ की प्रतिमा स्थापन कर वे दोनो सुगन्धित पुष्पो से सुख की प्राप्ति के लिए जिनेन्द्र भगवान का पूजन करती हुई।

(इसी तरह इसी सर्ग मे एक जगह और लिखा है)

प्रतिमा देव देवाना प्रतीके सद्मनस्तया ।
स्थापयित्वार्चिताभक्त्या स्तुति मगल दक्त्रया ॥१६७॥

अर्थ– वह लक्ष्मीमती रानी अपने महल मे जिनेन्द्र की प्रतिमा स्थापन कर पूजन किया करती थी ।

कु द कु दाचार्य कृत षट् पाहुड सस्कृत टीका पेज ३३४

याबज्ज्येष्ठा जिनप्रतिमा गृहीत्वा गच्छति तावत्तत्र न कोऽपि दृष्ट । ज्येष्ठा तु लज्जिता "अह वृहद् भगिन्या बचिता" इति वैराग्येण चैत्यालये स्थिताया आर्यिकाया पाद मूले दीक्षा जग्राह ।

भावार्थ– ज्यो ही ज्येष्टा जिनेन्द्र की प्रतिमा को लेकर वहा जाती है तो उसे वहा पर कोई दिखाई नही देता है । वह अपने मन मे लज्जित हो कर कि मैं अपनी वहिन चेलनी के द्वारा ठगी गई हूँ । ऐसा सोचकर चैत्यालय मे स्थित आर्यिका के पादमूल मे दीक्षा धारण करली ।

श्री स्वर्गीय प० भूधरदास जी कृत चरचा समाधान पृष्ठ ६४

स्त्री को पूजा करने का अधिकार है कि नही ? किस कथा पुराण मे स्त्री को पूजा का निषेध आया यहा पूजा करने का प्रसग तो कई जगह आया है ।

यहा कोई कहै स्त्री पूजा करे, यह तो सुनी पर अभिषेक न करे ताका उत्तर पूजा तो अभिषेक बिना होती नही यह नियम है । ऊपरि मैनासुन्दरी अभिषेक न कीना तो गधोदक कहा से लाई । तथा स्त्री के स्पर्श का कुछ ऐसा दोष होता तो स्त्री का किया तथा स्त्री के हाथ सो आहार साधु काहे को लेते । तिसतैं उत्तम पवित्रता गुणवती स्त्रीनि को पूजा का, अभिषेक का निषेध नाही ।

(सुमेरु पर्वत पर भगवान के जन्माभिषेक के समय इन्द्राणी तथा देवागनायें भी भगवान का अभिषेक करती हैं)

पद्म पुराण पर्व ३ आदिनाथ भगवान का जन्मोत्सव-

इन्द्राणी प्रमुखा देव्य सद्‌गधै रवलेपनै ।
चक्रु उद्धर्तन भक्तया करै पल्लव कोमलै ॥१८॥
महीध्र मिव त नाथ घटै र्जल धरैरिव-
अभिषिच्य समारब्धा-

अर्थ-इन्द्राणी है प्रमुख जिनमे ऐसी देवागनाओ ने अपने पल्लव के समान कोमल हाथो से भगवान के शरीर पर सुगधित चन्दन का लेपन किया, तथा महागिरी के समान जिनेन्द्र का मेघ के समान कलशो से अभिषेक करके

हरिवशपुराण सर्ग ८ ऋषभजन्मोत्सव-

अत्यत सुकुमारस्य जिनस्य सुर योषित ।
शच्याद्या पल्लवस्पर्श सुकुमार करास्तत ॥१७२॥
दिव्यामोद समाकृष्ट षट्‌पदौघा नुलेपनै ।
उद्वर्तयन्त्य स्ता प्रापु शिशुस्पर्श सुख नव ॥१७३॥
ततो गधोदकै कु भै रभिषिच्यन् जगत्प्रभु ।
पयोधर भरानम्रा स्ता वर्षा इव भूभृत ॥१७४॥

अर्थ-अत्यन्त सुकुमार प्रभुका शरीर इन्द्राणी आदि देवागना पल्लव हू ते अधिक जो कोमल कर तिनकरि अगोछती भई अर दिव्य सुगध जापर भ्रमर गु जार करै हैं ताका लेपन करती भई वहुरि गधोदक के कलशनि करि भगवान का अभिषेक करती भई ।

हरिवशपुराण पर्व ३८ नेमिनाथ जन्मोत्सव-

तत सु पति स्त्रिय जिन मुपेत्य शच्यादय,
सुगधितनु पूर्वकै मृदुकरा समुद्धर्ततम् ।
प्रचक्रु रभिषेचन शुभपयोभिरुच्चै र्घटै,
पयोधर भरै निजै रिव सम समावर्जितै ॥५४॥

अर्थ-अथानतर शची आदि सुरागना भगवान के तनका स्पर्श करती भई अर सुगध जलकर अभिषेक किया मानो वह कलश इन्द्राणी के

कुच कुभ समान सुन्दर है एक साथ सब इन्द्राणी ने जिनेन्द्र का अभिषेक किया।

आदिपुराण-आदि जिन जन्मोत्सव–

गधै सुगधिभि सार्द्रै रिंद्राणी गात्र मीशितु ।
अवलिं पच लिंपद्भि रिवामोदै स्त्रिविष्टपम् ॥

अर्थ–इन्द्राणी प्रभू के शरीरनै जल सहित सुगधित गध करि लेपन करती भई सो मानू सुगधकरि तीन जगतनै लेपन करती ही प्रभू के सर्वागमे लेपन कियो।

स्त्रियो द्वारा अभिषेक करने के विधान मे अनेक पूर्वाचार्यों के प्रमाण ऊपर दिये गये हैं। और भी शास्त्रो मे प्रमाण हैं। किंतु स्त्रियो को पूजन अभिषेक करने का निषेध पूर्वाचार्यो ने किसी शास्त्र मे नही बताया है। इतना आवश्यक है कि शुद्ध अवस्था मे ही स्त्रिया मुनिदान और अभिषेक एव शास्त्रो का स्वाध्याय कर सकती हैं।

चाहे कही पर स्त्रिया अभिषेक नही करती हैं, या उन्हे नही करने दिया जाता है, इस सबंध मे हमको कुछ कहना नही है जहा जैसी प्रवृत्ति हो सो करें परतु इस विषय को विवाद कोटि मे नही लाना चाहिये। स्त्रियो द्वारा अभिषेक का निषेध नही करना चाहिये। पूर्वाचार्यो के वचनो पर श्रद्धान करना प्रत्येक धर्मात्मा का प्रथम कर्त्तव्य है। इस सबध मे हमने प्रत्यक्ष, युक्ति, हेतु, आगम का ही दिग्दर्शन किया है।

अभिषेक और पूजन प्रकरण मे जहा तहा भिन्न २ मान्यता भिन्न आम्नाय और प्रवृत्ति पाई जाती है। यह आम्नाय और प्रवृत्ति भेद कही २ पर कषाय पूर्ण उग्र रूप धारण कर लेता है इसलिये पूजन और अभिषेक के सबध मे थोड़ासा खुलासा कर देना भी आवश्यक समझा गया है।

पचामृताभिषेक

पचामृताभिषेक का आचार्य प्रणीत शास्त्रो मे अष्ट द्रव्य पूजन के समान विधान है। उसे महाभिषेक के नाम से भी कहा जाता है। दक्षिण मे यह पद्धति सर्वत्र प्रचलित है। प्रत्युत पूजन से महाभिषेक का महत्व अधिक माना जाता है। इसका प्रमाण श्रवण वेला गोला (जैन विद्री) के महामनोज्ञ चित्ताकर्षक दिव्य तेज अलौकिक अतिशय युक्त भगवान वाहुवलि हैं जिनका सर्वाग महाभिषेक दूध, दही, घृत इक्षुरस, सर्वौषधि इनसे भरे हुए विशाल कलसो से किया जाता है। जिसे देखने के लिए सभी प्रान्तो के नर नारी एव मुनि गण आते है। वर्तमान समय के आचार्य शिरोमणि चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य श्री १०८ श्री आचार्य शान्तिसागर महाराज समाधि के समय मे भी प्रति दिन कु थलगिरि सिद्ध क्षेत्र पर पचामृताभिषेक देखते थे।

पंचामृताभिषेक का विधान सभी शास्त्रो मे है निषेध किसी शास्त्र मे नहीं है

प्रमाण पढ़िये

श्री जिनसेनाचार्य कृत हरिवश पुराण मे लिखा है-

क्षीरेक्षुरसधारौ घैघृत दध्युदकादिभि
अभिपिच्य जिनेन्द्रार्चामर्चिता नृसुरासुरै
(सर्ग २२ श्लोक २१)

अर्थ- दूध, ईख का रस, घी, दही, जल से भगवान का अभिषेक करके मनुष्य और सुर असुरो से पूजित जिनेन्द्र भगवान की पूजा करनी चाहिये।

रविषेणाचार्य कृत पद्मपुराण मे लिखा है-

अभिषेक जिनेन्द्राणा विधाय क्षीरधारया
विमाने क्षीरधवले जायते परमद्युति १६६

दधि कुंभैजिनेंद्राणा य करोत्यभिषेचनम्
कान्ति द्युति प्रभावाढ्यो विमानेष स जायते

अर्थ– जो मनुष्य दूध की धारा से भगवान का अभिषेक करता है वह दूध के समान धवल कान्ति वाला विमानवासी देव होता है। इसी प्रकार जो दही के घडो से भगवान का अभिषेक करता है वह कान्ति दीप्ति वाला विमानवासी देव होता है।

आचार्य वसुनन्दि कृत श्रावकाचार मे लिखा है–

इक्खु रस सप्पि दहि खीर गध जल पुण्ण विविहि कलसेहिं
णिसि जायरण च सगयिणाड्याहि कायव्व ४५४

अर्थ– ईख का रस, घी, दही, दूध, गन्ध, जल से भरे हुए अनेक कलसो से भगवान का अभिषेक करना चाहिये और रात्रि मे जागरण सगीत नाटक आदि भी करना चाहिये।

आचार्य सोमदेव ने यशस्तिलक महाकाव्य मे लिखा है–

पयो दधि क्षीर घृतादिपूर्णा फलाग्र पुष्पस्तव काचिधाना
घटावली दाम निवद्ध कण्ठा सुवर्णकारै लिखिता हि रेजु । ३५
अष्ठोत्तरा शीतजलै प्रपूर्णा सहस्त्र मात्रा कलशा विशाला.
पद्मोत्पलोत्फुल्लपिधान वक्त्रा जिनेन्द्र विम्ब स्नपतैक आर्या।

२६ सर्ग २३

अर्थ– जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के लिए दूध, दही, घी, जल आदि से भरे कलश जिन पर फल पुष्पमाला लगी हुई है एक हजार आठ कलशो से जिनके मुख कमलो से ढके हुए हैं सजाये गये।

आचार्य सकल कीर्ति कृत श्रीपाल चरित्र मे लिखा है–

कृत्वा पचामृतैर्नित्य अभिषेक जिनेशिनाम् ।
ये भव्या पूचयन्त्युच्चै स्ते पूज्यन्ते सुरादिभि·

अर्थ– जो भव्य भगवान का पचामृताभिषेक प्रति दिन करते है वे देवो द्वारा पूजे जाते हैं।

प्रमाण अनेक है। कहा तक दिये जॉय।

एक महाशास्त्र जिसका नाम- अभिषेक पाठ सग्रह है। जयपुर के प्रमुख जौहरी श्री बनजीलाल ठोलिया दि० जैन ग्रन्थमाला समिति की ओर से छपा है उसके ३६१ पृष्ठ हैं। इस अभिषेक पाठ मे भिन्न २ आचार्यो के बनाये गए भिन्न भिन्न पन्द्रह अभिषेक पाठ है। सभी पाठ अपूर्व मनोहारी हैं। ये पाठ सस्कृत मे रचे गये हैं और पचमी शताब्दि से लेकर सोलहवी शताब्दि तक के है। जिन आचार्यो ने ये अभिषेक पाठ रचे है वे सभी मूल सघ के प्रसिद्ध महाविद्वान आचार्य हैं। जिन आचार्यों ने ये पाठ रचे है उनके नाम इस प्रकार हैं-

१-आचार्य पूज्य पाद स्वामी जिन्होने सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थ रचे है। २-आचार्य गुण भद्र ३-आचार्य सोमदेव सूरि ४-आचार्य अभयनदि सूरि ५-आचार्य इन्द्रनदि ६-आचार्य सकल कीर्ति ७-भट्टारक देव शुभचन्द्र ८-पडित प्रवर आशाधर जी ६-महाकवि गजाकुश १०-अयघाय कवि ११-कवि नेमिचन्द आदि

उपर्युक्त सभी आचार्यो और महा विद्वानो ने महामन्त्रो के साथ दूध, दही, घी इक्षुरस, सर्वौषधि इन पाचो से पचामृताभिषेक से भगवान का अभिषेक और पूजन का विधान लिखा है जो बहुत महत्वपूर्ण है। यहा पर केवल आचार्य पूज्यपाद स्वामीकृत पचामृताभिषेक का एक पद्य लिख देना पर्याप्त है एतै रिक्षुरसैश्च दुग्ध सलिलैरक्षीर सिध्रम्दवैरेभिश्चत रसैश्च नूनममृतै सक्रान्त नामान्तरैं।

प्राज्यश्रीजिनराजमज्जनविधि प्राप्तोपयोगार्चित स्तोत्रै श्रोत्र रसायन त्रिजगता सम्पद्यता मद्दच- ओ ह्री श्री क्ली ऐ अर्हं व म ह स त प व व म म ह ह स स त त प प झ झ भवी क्ष्वी ह सस्त्रैलोक्य स्वामिन इक्षु रसाभिषेक करोमि नमोर्हते स्वाहा।

इसी प्रकार सभी रसो के भिन्न भिन्न श्लोक हैं भिन्न २ मत्र है। यह विधि विधान बडे ठाठ वाट से दक्षिण प्रान्त मे किया जाता है।

भट्टारक महोदय पीत वस्त्र आदि से सस्कारित होकर पचामृता-भिषेक कराते हैं और घर घर मे वहा चैत्यालय भी प्राय होते हैं। अत सद्ग्रहस्थ भी पचामृताभिषेक प्रति दिन करते हैं। उत्तरप्रदेश मे अनेक स्थानो मे पचामृताभिषेक होता है। अनेक स्थानो मे केवल जलाभिषेक होता है।

पचामृताभिपेक का विधान तो सर्वाचार्य सम्मत है। निषेध किसी आचार्य प्रणीत शास्त्र मे नही हैं। इसलिये जहा जहा केवल जलाभिषेक किया जाता है वह भी पुण्यवर्धक है किंतु शुद्ध दूध दही घी आदि से पचामृताभिषेक करने का महान पुण्य वर्धक कार्य विशेप विशेप महत्वपूर्ण कार्य है। इसलिये पचामृताभिषेक का निषेध करना तो पूर्वाचार्यो के वचनो का लोप करना है जिस प्रकार अशुद्ध पदार्थों से अभिपेक करना दोषप्रद है उसी प्रकार मुनियो के ग्रहण करने योग्य शुद्ध पदार्थों से अभिषेक करने का निपेध करना दोषप्रद है।

आगम प्रमाण ही श्रद्धा एव सम्यग्दर्शन के चिन्ह हैं।

पच मगल पाठ

पच मगल पाठ पडित रूपचन्द जी ने बनाया है। इस हिन्दी पाठ मे भगवान तीर्थंकर के गर्भ जन्म दीक्षा केवल ज्ञान और मोक्ष इन पच कल्याणको का बहुत सुन्दर और भक्ति पूर्ण स्वरूप निरूपण उन्होने किया है। वह अभिषेक पाठ नही है। किन्तु पाचो कल्याणको का विवेचन है। अभिषेक पाठ भिन्न है। परन्तु करीब दो सौ ढाई सौ वर्षों से अभिपेक पाठ से अभिषेक होना तो छूट गया किन्तु इस प० रूपचन्द जी कृत पच कल्याणक पाठ से अभिषेक होना प्रचलित हो गया है।

अभिषेक किसका होता है ?

अभिपेक भगवान अर्हत का होता है। प्रतिष्ठा पाठ और मन्त्रो द्वारा सूरिमत्र आदि से मूर्ति मे अर्हत पद की स्थापना की जाती है।

अर्हंत भगवान के रत्नत्रय आदि गुणो का आरोप किया जाता है। जिससे उस मूर्ति मे प्रतिष्ठा होने पर अर्हंत पद का साक्षात् स्वरूप आजाता है। आदिनाथ चन्द्र प्रभु शान्तिनाथ पार्श्वनाथ महावीरस्वामी आदि चौवीस तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग समवशरण मे विराजमान थे। वे ही ये है ऐसा श्रद्धान करके ही जो मूर्ति की पूजा करते हैं वे ही सम्यग्दृष्टि है। जो यह समझते है कि भगवान तो मोक्ष चले गये यह मूर्ति तो उनका स्मरण कराती है, वे सच्चे श्रद्धानी नही है। मिथ्या दृष्टि है। क्योकि मूर्ति को भगवान नही समझने से मूर्ति मे पूज्य बुद्धि तथा भक्ति नहीं हो सकती है। फिर पूजन और अभिषेक मे भी प्रगाढ भक्ति और तन्मग्नता नही हो सकती है। सिद्धान्त तो यह है कि भगवान की मूर्ति को साक्षात् भगवान माना जाय, ये ही आदिनाथ हैं ये ही महावीर स्वामी है ऐशी दृढ बुद्धि उनकी मूर्ति मे ही होनी चाहिये। समवसरण मे भी तो भगवान का शरीर ही दीखता है उनके सर्वज्ञता, वीतरागता सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान आदि गुणो का दर्शन तो नही होता है। इसी प्रकार मूर्ति भी भगवान का शरीर है। उसी वीत-राग जिन मुद्रा मे दृढ भक्ति श्रद्धा पूर्ण होना सम्यग्दर्शन को प्रगट होने मे समर्थ है। यही बात भजन मे कही गई है।

"प्यारी लागे म्हाने जिन छवि थारी, परम निराकुल पद

दरसावत वर विरागता कारी।" आदि

मूर्ति मे मन्त्रो द्वारा भगवान के गुणो का आरोप भी कल्पना नही है किन्तु वास्तविक है। मन्त्रो मे बडी शक्तिया है। यह प्रत्यक्ष है कि सर्प का विष दूर करने वाला मन्त्र, सर्प के विष को तुरन्त दूर कर देता है। इसी प्रकार विच्छू विष आदि व्याधियो को दूर करने वाले मत्र उन व्याधियो को दूर कर देते है यह सब जानते हैं। जब मिथ्या मन्त्रो मे इतनी शक्ति अनुभव सिद्ध है तब वीतराग महर्षियो के आग-मोक्त मन्त्रो से भगवान की प्रतिमा मे उनके गुणो का स्थापन जिन

भक्त श्रद्धालु पुरुषो को सम्यग्दर्शन आदि गुणो से विभूषित करदें तो यह सहज वात है ।

रावण ने वहुरूपिणी विद्या मन्त्रो से ही सिद्ध की थी। विद्या-धर मन्त्रो के द्वारा अनेक वडे वडे कार्य साधते हैं। देवगण मन्त्रो से नगर, फौज, अग्नि का जल आदि कर देते हैं। श्री समतभद्र स्वामी ने भक्ति और श्रद्धा से भगवान की स्तुति की उसके कारण भगवान चन्द्रप्रभ की रत्नमयी मूर्ति प्रगट हुई। उसके दर्शन कर शिवकोटि राजा जो जैन धर्म का कट्टर विरोधी था दि० जैन मुनि वन गया। यह महान् फल जिन मूर्ति के दर्शन से ही उसे मिला।

फोटो पूज्य नहीं है

आजकल कुछ लोग ऐसे भी हैं जो जिन मन्दिर मे जाकर भगवान के दर्शन नही करते हैं अपने घर मे भगवान का चित्र (फोटो) ट्रागकर उसी चित्र का दर्शन कर लेते हैं। परन्तु यह प्रमाद तो है ही साथ मे अज्ञान भी है। कारण फोटो पूज्य नही है वह केवल स्मारक है। वह प्रतिष्ठित नही है। उसकी प्रतिष्ठा भी नही हो सकती है' वह कागज पर बना हुआ अस्थिर एव भग होने वाला है। प्रतिष्ठा धातु पाषाण और रत्नो की मूर्ति की होती है। फोटो मे अप्रतिष्ठित होने से आकर्षण नही है। उसमे परिणाम लग नही सकते। इसलिये फोटो का दशन नही करना चाहिये, वह अज्ञान है। परिणामो की उज्वलता के लिए मन्दिर मे जाकर जिनेन्द्र भगवान के दर्शन पूजन अभिषेक करना चाहिये। फोटो का अभिषेक न तो किया जाता है और न हो सकता है कागज गल कर फट जायगा।

अभिषेक अर्हंत का ही होता है

अभिपेक तीर्थंकर भगवान का अर्हंत सर्वज्ञ अवस्था का ही होता है। यह वात पचामृताभिपेक पाठ से ही सिद्ध होती है। जैसा कि द्रव्यै रनल्प घन सार चतु समाद्यैरामोदवासित समस्त दिगन्तरालै

मिश्रीकृतेन पयसा जिन पुगवाना त्रैलोक्य पावन मह स्नपन करोमि ।

(अभिषेक पाठ)

पचामृताभिषेक पाठ के अन्त मे शान्ति धारा दी जाती है उसके प्रारम्भ मे निम्न वाक्य है–

ओनम अर्हते भगवते श्रीमते पार्श्व तीर्थकराय द्वादशगण वेष्टिताय शुल्क ध्यान पवित्राय स्वयभुवे सिद्धाय बुद्धाय परमात्मने परम सुखाय त्रैलोक्यमहीव्याप्ताय अनन्त ससार चक्र परिमर्दनाय अनन्त दर्शन अनन्त वीर्याय आदि ।

इस शान्ति मन्त्र मे सभी वाक्य सर्वज्ञ वीतराग अर्हत भगवान के ही सूचक है । जैसे अर्हत भगवान, शुल्क ध्यान पवित्र, परमात्मा अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य धारक आदि ।

इससे सिद्ध है कि अभिषेक अर्हत का ही होता है । परन्तु प० रूपचन्द जी कृत पच मगल पाठ बोलकर "सहस अठोतर कलसा प्रभू जी के सिर ढुरे" यह कहते ही जल कलसो से अभिषेक किया जाता है यह भगवान के जन्म समय का अभिषेक है । यह भी पूर्ण भक्ति का सूचक है । यह द्वितीय जन्म समय का मगल पाठ है । इसका हम निषेध नही करते हैं किन्तु यह पच मगल पाठ भगवान के पाचो कल्याणको का वर्णन एव स्वरूप निरूपण है अभिषेक पाठ नही है । कई विद्वान भी ऐसा समझते और कहते है कि अभिषेक जन्म समय का ही होता है । भगवान को जन्म समय का ही मानकर ही अभिषेक किया जाता है । ऐसा समझने वाले विद्वान यह हेतु उपस्थित करते हैं कि अर्हत भगवान समवसरण मे विराजमान रहते हैं उनका अभिषेक नही होता है इसलिये उनकी प्रतिमा का भी अभिषेक नही होना चाहिये उनका यह तर्क मात्र है । यदि पूजन के पहिले भगवान का अभिषेक जन्म समय का ही माना जाय तो यह भी विचारना पडेगा कि भगवान की प्रतिमा जिसका अभिषेक किया जाता है वह जन्म समय की है या केवल ज्ञानी वीतराग की है ? वह प्रतिष्ठित मूर्ति

समवसरणस्थ केवली अर्हंत भगवान की ही है। यही आगम है ऐसा नही समझना चाहिये कि अभिषेक करते समय तो उस प्रतिमा को जन्म कल्याणक के समय की मानली जाय और पूजन करते समय उसे केवल ज्ञान कल्याणक की मानली जाय। यह तो मनमानी शास्त्र विरुद्ध बात है। केवल ज्ञान कल्याणक द्वारा अनन्त दर्शन अनन्तज्ञान अनन्तसुख, अनन्तवीर्य आदि गुणो से आरोपित प्रतिष्ठित मूर्ति को जन्म समय की किस आधार पर और प्रमाण से माना जा सकता है। और वैसा मानने से वह छद्मस्थ अल्प ज्ञानी और सपरिग्रह गृहस्था-वस्था की मूर्ति माननी पडेगी परन्तु ऐसा मानना आगम विरुद्ध है। अभिषेक के समय मे जिनेन्द्र सर्वज्ञ वीतराग की भक्ति ही की जाती है। मन्दिरो मे दर्शन पूजन अभिषेक अर्हंत परमेष्ठी सर्वज्ञ वीतराग भगवान का ही किया जाता है। इसलिये अभिषेक, अभिषेक पाठ द्वारा ही होना वास्तविक है।

अर्हंत का अभिषेक नही फिर अर्हंत मूर्ति का क्यो ?

कुछ विद्वानो का जो यह तर्क है कि समवसरणस्थ अर्हंत भगवान का अभिषेक नही होता है तो उनकी प्रतिमा का अभिषेक भी नही होना चाहिये। ऐसा तर्क आगम के विरुद्ध है। आगम मे नौ देवता माने गये है वे इस प्रकार हैं-

अरहत सिद्ध साहू तिदय जिणवेण धम्म पडिमा हू
जिण णिलया इदि एदे णव देवा दिंतु मे वोहिं

अर्थ—अर्हंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय, साधु, ये तीन साधु जिन वचन (जिनवाणी) जिन धर्म, जिन प्रतिमा, जिन मदिर, ये नव देवता हैं। इससे यह समझलेना चाहिये, कि अर्हंत देवता भिन्न हैं और उनकी-प्रतिमा देवता अलग है आगमानुसार साक्षात् अर्हंत भगवान का अभिषेक नही होता है किंतु उनकी अर्हंत प्रतिमा देवता का अभिषेक होता है।

कोई कोई विद्वान यह भी मानते है कि प्रतिमा का अभिषेक

इसलिये किया जाता है कि प्रतिमा पर धूलि आदि नही जमने पावे वह स्वच्छ बनी रहे। परन्तु ऐसा समझकर अभिषेक करना निष्फल ही केवल नही है किंतु अज्ञान भी है। धूलि दूर कर स्वच्छता बनी रहे ऐसा दृष्टिकोण भक्ति का द्योतक नही है। और न पुण्यवर्धक है और न सम्यग्दर्शन को प्रगट कर सकता है। भगवान का अभिषेक बडी श्रद्धा भक्ति से मोक्षफल प्राप्ति के लिये किया जाता है। अभिषेक पाठ के प्रारम्भ मे कहा जाता है–

दूरावनम्र सुरनाथ किरीट कोटि सलग्न रत्नच्छवि
धूसरांघ्रि प्रस्वेद ताप मल मुक्त मपि प्रकृष्टै भक्तया
जलै जिन पतिं बहुधाभिसिंचे। (अभिषेक पाठ)

इस श्लोक मे भगवान को पसीना, ताप मल से रहित बताया गया है। हिन्दी मे रचे हुए पद्य मे कहा गया है–

सुमतो सहज पवित्र यही निश्चय भयो, तुम पवित्रता हेतु नही मज्जनठयो। मैं मलीन रागादिक मल तै है रह्यो महामलिन तन मे बसु विधि वश दुख सह्यो बीतो अनतो काल यह मेरी अशुचितानागई, तिस अशुचित्ता हर एक तुम ही भरहु वाच्छाचित्तठई,, (जलाभिषेक पाठ)

इस पद्य द्वारा अभिषेक का उद्देश्य और फल दोनो बातो का भाव पूर्ण स्पष्टी करण किया गया है।

तेरापंथ बीसपंथ दोनो नाम तो कल्पित है किंतु उन पंथवाले दोनो ही धर्म परायण है

पूर्वाचार्यों द्वारा रचित किसी भी शास्त्र मे तेरापथ बीसपथ का उल्लेख नही है। दो ढाई सौ वर्ष से ऐसा भेद और खीच तान चल पडी है। दक्षिण मे सर्वत्र पचामृताभिषेक ही होता है। और वहा तेरह बीसपथ का कोई नाम ही नही जानता है आगमानुसार जो महाभिषेक और फल पूजन आदि पद्धति है। वही पद्धति आज तक

प्रचलित है। उत्तर मे तेरह बीस पथ भेद होने का कारण यह प्रतीत होता है कि पचामृताभिषेक मे अधिक आरम्भ और अधिक समय तथा अधिक पदार्थो का सग्रह आदि की कठिनाई का अनुभव कर कुछ सज्जनो ने केवल जलाभिषेक चालू कर दिया। खीच तान मे यहा तक परस्पर कहने लगे कि- हे भगवन् तेरापथ ही हमारा है दूसरे पक्ष वाले कहने लगे कि हे भगवन् बीसो विस्वा पथ हमारा है। इस खीच तान मे तेरापथ बीसपथ ऐसे दो भेद पड गये। ये दोनो भेद कषाय के ही फल हैं।

शास्त्राधार यह है कि भगवान का अभिषेक दूध, दही आदि ऐसे शुद्ध द्रव्यो से ही करना चाहिये जिनको मुनिराज आहार मे लेते हैं। इसी प्रकार पके फलो को मुनि भी आहार मे लेते हैं। ऐसे फलो को भगवान के चरणो मे चढाने मे सभी शास्त्रो मे-विधान है। कच्चे फल हरितकाय होते हैं। पके फल अचित्त होते हैं।

नारिंग पूग कदली फल नारिकेलैः सोह यजे वरफलैवरं सिद्ध चक्रम् (श्री पद्म नदी आचार्य कृत सिद्ध पूजन) इसमे नारगी, सुपारी, केला नारियल आदि फलो का उल्लेख है। हिंदी पूजनो मे भी सर्वत्र पके फलो को चढाने का विधान है देखिये-

नारगी, बादाम, सुकेला, ऐला, दाडिम, फल, सहकारि.

(शान्तिनाथ पूजा)

इसी प्रकार सभी सस्कृत और हिंदी पूजनो मे फलो के चढ़ानें का उल्लेख है।

पुष्पो के चढाने का भी सस्कृत और हिंदी पूजनो मे सर्वत्र विधान है देखिये-

नित्य स्वदेह परिमाणमनादिसज्ञ द्रव्यानपेक्षममृत मरणाद्यतीतं, मदार कुद कमलादि वनस्पतीनां पुष्पैर्यजे शुभतमैवर सिद्ध चक्रम्,,

(आचार्य पद्मनदीकृत सिद्ध पूजा

इस सस्कृत पद्य मे मदार पुष्प कु दपुष्प कमल आदि पुष्पो से पूजन करने का विधान है। इस श्लोक मे वनस्पती के पुष्पो का नाम लिया गया है।

हिन्दी पद्यो मे भी सर्वत्र पुष्पो के चढाने का उल्लेख है देखिये

केवडा, गुलाव और केतकी चुनाइये
धारि चरण के समीप काम को नसाइये
(पार्श्वनाथ पूजा)

और भी—कमल केतकी जुही चमेली श्री गुलाव लेआवो इन सभी पूजनो मे पुष्प चढाने का विधान है। अव प्रश्न यह है कि पुष्पो मे त्रस जीव होते है वे पुष्प कैसे चढाये जाय ?

उत्तर मे यह समझना चाहिये कि जैसे चावलो मे त्रस जीव हो जाते है तो उन्हे अच्छी तरह सोधकर ही विवेकी पुरुष चढाते हैं उसी प्रकार पुष्पो को भी अच्छी तरह सोधकर चढाना चाहिये। जिन पुष्पो मे अधिक त्रस जीव होते हैं। अथवा जिन पुष्पो से त्रस जीवो का निकालना कठिन है उन्हे नही चढाना चाहिये। विवेक की सर्वत्र आवश्यकता है। यदि पुष्पो के चढाने का विधान नही होता तो सभी सस्कृत पूजनो मे पूर्वाचार्यो ने उनका उल्लेख किया है सो वे नही करते। सभी हिंदी पूजनो मे पुष्पो को चढाने का विधान है। विवेकी पुरुष सोध वीन करके शुद्ध द्रव्य ही भगवान के चरणो मे चढाते है।

जो पुरुष केवल जल से ही अभिषेक करते हैं और फल पुष्प नही चढाते हैं। चावलो के रगे हुए पीले पुष्प और लोग वादाम आदि फल ही चढाते हैं तो वे भी भगवद्भक्ति से महान् पुण्य सचय करते हैं। जो पचामृताभिषेक करते हैं। और ताजे २ केला, सतरा, अनार, आम चढाते हैं वे भी महान् पुण्य सचय करते हैं।

भगवान के चरणो मे केसर चंदन लगाने का विधान है

कोई२ विद्वान् कहते है कि भगवान के चरणो मे केसर या

चदन नही लगाना चाहिये। उसके लगाने से प्रतिमा सराग हो जाती है। और परिग्रह सहित हो जाती है परन्तु ऐसी कल्पना और समझ शास्त्र सम्मत नही है और युक्ति सगत भी नही है। ऐसी ऐसी बाते ही तेरह बीस पथ के नाम से परस्पर मे विरोध और खीच तान का कारण बन जाती हैं। इसलिये इस सबध मे थोडासा खुलासा कर देना हम आवश्यक समझते हैं।

पहली बात तो यह है कि सरागता और परिग्रहता स्वरूप दो प्रकार से होता है, यातो भगवान सरागी हो और इच्छा पूर्वक केसर चदन को लगवाना चाहे या उसके लगाये जाने पर आनद माने परन्तु यह असभव बात है भगवान तो परम वीतराग हैं उनमे तो रागद्वेष एव इच्छा आदि का लेश भी नही है इसलिये चाहे कोई उनके चरणो मे चदन लगावे अथवा कोई नही लगावे उससे उनका कोई सबध नही है। इसी प्रकार उनके इच्छा नही रहने से केसर चदन लगाने से भी वह उनका परिग्रह नही माना जा सकता है। यदि चदन लगाने से सरागता और परिग्रहता भगवान मे आती हो तो फिर भगवान का जल से अभिषेक कराने मे और उनको छन्ना से पोछने मे भी सरागता और परिग्रहता आजायेगी। इसलिये भगवान का अभिषेक और उन्हे पोछने का विधान भी नही करना चाहिये। भगवान को विराजमान करते समय श्री वर्ण एव स्वस्तिक भी नही बनाना चाहिये जो कि उनकी विनय का चिन्ह है।

दूसरी बात यह है कि चदन चर्चन भगवान के केवल चरणो ही लगाने का विधान है। उनके समस्त शरीर पर लगाने का विधान नही है जिससे प्रतिमा मे श्रगार प्रतीत होने से सरागता दीखे। हा महाभिषेक (पचामृताभिषेक) के समय भगवान पर चदन का अव-लेपन किया जाता है जैसाकि विधान है—

सशुद्ध शुध्या परिहार शुध्या कर्पूर समिश्रित चदनेन
जिनस्य देवासुर पूजितस्य विलेपन चारु करोमि भक्त्या

यह बिलेपन पचाम्रताभिषेक के मध्य की क्रिया है जैसा कि आचार्य पूज्यपाद आचार्य सोमदेव आदि सभी आचार्यो ने "अभिषेक पाठ" शास्त्र मे लिखा है और पचकल्याणक विधायकसभी प्रतिष्ठा पाठो मे लिखा है।

अभिषेक के वाद चन्दन चर्चन केवल भगवान के चरणो मे ही करने का विधान है। ऐसा विधान होने का हेतु यह है– लोक मे सम्मान एव पूजा सत्कार दो चीजो से ही मुख्य रूप से माना जाता है एक चन्दन के तिलक से दूसरे पुष्प माला पहिनाने से। भगवान की भक्ति भी इन्ही दो चीजो से की जाती है परन्तु भेद इतना है कि गृहस्थो मे परस्पर मे बराबरी का व्यवहार होता है वे तिलक लगाकर और पुष्पमाला पहनाकर आदर सम्मान करते है। भगवान तीन लोक के स्वामी है अत उनके मस्तक पर तिलक और गले मे माला पहनाने का विधान नही है उनके चरणो मे ही चन्दन और पुष्प क्षेपण किया जाता है।

यह चन्दन और पुष्पो का चरणो मे रखना जिनेन्द्र भक्त पुजारी की पूर्ण श्रद्धा और भक्ति का ही सूचक है। भगवान को रागी और परिग्रही बनाने की उसकी हार्दिक भावना ही नही है। वह तो शास्त्राधार से यह दृढ श्रद्धान रखता है कि भगवान परम वीतराग सर्वज्ञ है।

एक बात यह भी है कि भगवान के चरणो मे चन्दन और पुष्पो के रहने से यह बोध भी हो जाता है कि भगवान का अभिषेक और पूजा हो चुकी है। साथ ही भगवान मे भक्त जनो का भक्ति पूर्ण विशेष धर्मानुराग भी चन्दन पुष्पो से वढ जाता है।

चन्दन चर्चन के प्रमाण

चन्दण सुगन्धलेओ जिणवर चरणेसु जो कुडइ भविओ
लहइ तणु विक्किरिय सहाव सुगन्धय अमल

(आचार्य देवसेन कृत भाव सग्रह) पृ० १०३ श्लोक ४७१

अर्थ- जो भव्य पुरुप जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलो पर मुगन्धित चन्दन का लेप करता है वह सुगन्धित वैक्रियक शरीर प्राप्त करता है। महान् आचार्य का कितना स्पष्ट कथन है।

जिनेन्द्र भगवान के चरणो मे चन्दन का लेप करने के सभी पूजा विधायक शास्त्रो से प्रमाण है कुछ प्रमाण दिये जाते हैं-

कर्पूर जोगक लवग त्रुटि प्रयगु ककोल पूर्वक करवित चदनोधै
दूर स्फुर त्यरि मलैर्जिनभर्तु रारात् विद्राणमदैरपि चर्चयेध्रिम्

(प्रतिष्ठा सार)

अर्थात् कपूर लोग ककोल आदि मिले हुए चन्दन से भगवान के चरणो को मैं चर्चता हूँ। और भी प्रमाण-

सग्दन्ध सार घन सार विलेपनैश्च गधागचालिकुल जात
तरु प्रकाण्डै उद्यापनाय जिन पाद सरोज युग्म मुक्ता
वलीव्रत परस्य यजेत भक्त्या

(मुक्तावली पूजा)

अर्थात् मुक्तावली व्रत के उद्यापन के समय भगवान के चरण कमलो को चन्दन से लिपन करना चाहिये। और भी प्रमाण-

काश्मीर कृष्णागरु गधसार कर्पूर पौरस्त्यविलेपनेन
निसर्ग सौरम्यगुणोल्वणानाँ सचर्चास्यध्रियुग जिनानाम्

(आशाधर कृत जिनयज्ञ कल्प)

अर्थात् स्वभाव से ही अत्यन्त सुगन्धित ऐसे भगवान के चरण कमलो को केसर कपूर चन्दन आदि द्रव्यो से विलेपन करता हूँ। और भी प्रमाण-

जो जिण चन्दन चच्चइए

(योगद्रिदेव कृत प्राकृत श्रावकाचार)

अर्थात् जो भगवान का चन्दन से चर्चन करता है। और भी प्रमाण—

समृद्ध भक्त्या परया विशुद्धया कर्पूर सम्मिश्रित चदनेन
जिनस्य देवासुर पूजितस्य सुलेपन चारु करोमि मुक्त्यै

(पूजासार)

अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के लिए देवो से पूज्य भगवान को वडी भक्ति और विशुद्धि के साथ कर्पूर से मिले हुए चन्दन से विलेपन करता हूँ। और भी प्रमाण–

कु कुमेन कर्पूरेण चन्दनेन सुगन्धिना
श्री जिनेन्द्र पदाम्भोज विलेपेह सुभावत

अर्थात् भगवान के चरण कमलो को कु कुम कपूर चन्दन आदि से लेपन करता हूँ।

इसी प्रकार शान्ति चक्र, ऋषि मण्डल, पच कल्याण, कर्मदहन षोडशकारण, दश लक्षण, रत्नत्रय सार्ध द्वयद्वीप, इन्द्रध्वज, पचमेरु, नन्दीश्वर पूजा आदि अनेक पूजा पाठो मे भगवान के चरणो मे चन्दन चर्चन चन्दन विलेपन का विधान है। और भी प्रमाणो को यदि दिया जाय तो ग्रन्थ का विस्तार होगा।

हिन्दी पूजनो मे भगवान के चरणो मे चन्दन चर्चने का उल्लेख है चौवीस भगवान की पूजन मे स्पष्ट लिखा है–

गोसीर कपूर मिलाय केसर सगघिसो
जिन चरणन देत चढाय भव आताप हरो

अर्थात् केसर कपूर मिलाकर चन्दन घिस कर भगवान के चरणो मे चढ़ाता हूँ जिससे मेरा ससार का आताय दूर हो जाय।

भगवान के चरणो मे चंदन लगाने और फूल चढ़ाने का तीर्थंकरो का उपदेश

भगवान के चरणो मे चदन लगाने और फूल चढाने का तीर्थंकरो ने उपदेश दिया है। *प्रमाण पढ़िये–*

"चउवीसवितित्थयरा सपज्जा छज्जीव तजहा-तरुवर छिदण छिदावणिद पादण पादावण तद्दहण दहवणादि वावारेण छज्जीव विराहग हेउणा विणा जिणभवण करण करावण णाहाणुववत्तीदो ण्हवणोवलेपण समज्जण छुहावण फुल्लारोवण धूवदहणादि वावरेंहि जीव विराधणा पूजा करणाणुवत्तीदो च.,

(जय धवला पृष्ठ १०० भाग १)

इसकी हिन्दी टीका मे यह अर्थ लिखा है

'शका-वृक्षका काटना और कटवाना, ईंट का गिराना और गिरवाना, उनको पकाना और पकवाना, आदि छहकाय के जीवो की विराधना के कारण भूत व्यापार के विना जिन भवन का निर्माण करना और करवाना नही वन सकता है। तथा अभिषेक करना अवलेप करना समार्जन करना चदन लगाना, फूल चढाना, और धूप जलाना आदि जीव वध के अविनाभावी व्यापारो के विना पूजा करना नही वन सकता है। इस प्रकार छह काय के जीवो की विराधना के कारण भूत श्रावक धर्म का उपदेश करने वाले होने से चौवीसो ही तीर्थकर सावद्य अर्थात् सदोष है,,

समाधान

"जइवि एव मुपदिसेंहि तित्थमरा तो विणतेसिं कम्मवधो अत्थि तत्थ मिच्छतासजम कसायपच्चयाभावेण वैभाविक वज्जाससे कम्माण वधाभावादो णच तित्थयर मण वयण काय वुत्तीयो इच्छा पुव्वियाओ जेण तेसिं वधो होज्ज किंदु दिणयर कप्प रुक्खाण पवत्तिओव्ववयि ससियाओ,,

(जय धवला पृष्ठ १०२ भाग १)

इसी की हिन्दी मुद्रितटीकामे यह अर्थ लिखा है—

"यद्यपि तीर्थंकर जिनालय वनवाने और पूजा आदि करने का उपदेश देते हैं तो भी उनके कर्म वध नही होता है क्योकि जिनदेव के तेरहवें गुण स्थान मे कर्म वध के कारण भूत मिथ्यात्व, असयम और

कषाय का अभाव होजाने से वेदनीय कर्म को छोडकर शेप समस्त कर्मो का बध नही होता है। तीर्थंकर के मन वचन काय की प्रवृत्तिया इच्छा पूर्वक नही होती है। जिससे उनके नवीन कर्म का बन्ध नही होता है। जिस प्रकार सूर्य और कल्पवृक्षो की प्रवृत्तिया स्वाभाविक होती है। उसी प्रकार उनकी भी मन वचन और काय की प्रवृत्तिया स्वाभाविक अर्थात् विना इच्छा के समझना चाहिये,,

(जय धवला हिंदी टीका)

इस सिद्धान्तशास्त्र जय धवला के प्रमाण से यह भली भाति सिद्ध है कि जिन मन्दिर बनवाने और जिनेन्द्र भगवान की पूजा जो भगवान का अभिषेक करना, भगवान के शरीर पर चदन केसर का लेपन करना, भगवान का समार्जन करना, भगवान के चरणो मे चदन लगाना और भगवान के चरणो पर फूल चढाना आदि का उपदेश चौवीस तीर्थंकरो ने दिया है। आचार्य शिरोमणि वीरसेन स्वामी ने जय धवला मे शका समाधान पूर्वक भगवान के अभिषेक, और उनके चरणो मे चदन लगाने तथा चरणो मे पुष्प चढाने का स्पष्ट उल्लेख किया है। अब जो कोई विद्वान् अथवा श्रावक भगवान के अभिषेक करने का और उनके चरणो मे चदन और पुष्प चढाने का विरोध करते है उन्हे सव से महान् शास्त्र सिद्धान्त शास्त्र जय धवला के प्रमाण को देखकर उस निराधार मिथ्या विरोध को छोडकर आगम पर श्रद्धा करना चाहिये। इससे वढकर और कौनसा प्रमाण हो सकता है।

यहा यह शका हो सकती है कि गृहस्थ श्रावको को तो पूजा अभिपेक चदन चर्चन और फूल चढाने आदि मे आरभी हिंसा होती है ? इसका समाधान आचार्य समतभद्र स्वामी ने वहुत उत्तम किया है—

पूज्य जिन त्वार्चय तो जनस्य सावद्यलेशो वहुपुण्यराशि

दोषाय नाल कणिका विषस्य न दूपिका शीतशिवाम्बुराशौ
(वृहत्स्वयपूस्तोत्र)

अर्थ– आचार्य समतभद्र स्वामी भगवान की स्तुति मे कहते है कि जो श्रावक जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है उस पूजा विधि मे अष्ट द्रव्यो द्वारा होने वाले आरम्भ मे जो हिंसा (आरभ जनित स्थावर जीवो की हिंसा) होनी है उसमे पाप तो लेश मात्र लगता है किन्तु जिनेन्द्र पूजा से होने वाला पुण्य महान होता है। जैसे ठण्डे और मीठे प्रिय जल से भरे हुए समुद्र मे एक कणी विप की डालदी जाय तो वह उस मीठे जल से भरे हुए समुद्र मे कोई असर नही डाल सकती है।

अर्थात् भगवान की पूजा का आरम्भ सरसो बराबर तो दोप उत्पन्न करता है किंतु सुमेरु पवत के बराबर महान् सुख जनक पुण्य का सचय करता है।

आश्चर्य तो इस वात का है कि बहुत से लोग अपने सासारिक इद्रिय जन्य सुख के लिए तो फूलो को तोडकर या तुडवाकर फूलमाला पहनते हैं। चन्दनादि द्रव्यो से अपना उबटना करते हैं। भरे घडो से स्नान करते है। उस पापारभ को तो करते हैं जिससे अशुभास्रव होता है परन्तु पूजादि धर्मारम्भ का निषेध करते है जिससे अशुभास्रव रुक जाता है और शुभास्रव होता है।

तीसरी मुख्य वात यह है कि जव उपर्युक्त पूजा अभिषेक चदन पुष्प क्षेपण, जिन मन्दिर निर्माण और मुनिदान आदि धर्मारभ का विधान तीर्थंकरो ने अपनी दिव्य ध्वनि द्वारा वताया है तो उसका पूर्ण श्रद्धान करना चाहिये, यही सम्यग्दृष्टि का लक्षण है।

तेरह बीस दोनो मे धर्म भेद नहीं है

तेरह पथ वालो और वीस पथ वालो दोनो मे किसी प्रकार का किंचित्मात्र भी धर्म भेद नही है। देव शास्त्र गुरु के दोनो परम भक्त और परम श्रद्धालु हैं। वतमान मुनिराजो मे दोनो की पूर्ण श्रद्धा

है। सर्वत्र कथित और पूर्वाचार्यो द्वारा प्रतिपादित तत्वो पर दोनो का अटल श्रद्धान है। दोनो ही धर्मात्मा है। केवल पूजन प्रकरण मे विवेक अविवेक एव शुद्धता अशुद्धता का अपना दृष्टिकोण बनाकर थोडासा मतभेद पड गया है। फिर भी अष्ठ द्रव्यो से पूजन करते समय सस्कृत पद्य और हिन्दी पद्य दोनो ही एक वोलते है फल पुष्पो के नाम भी लेते हैं केवल सामग्री मे भेद है। इसलिये कषाय से उत्पन्न कल्पित नाम तेरा बीस हटाकर यदि आगम पथ अथवा आगम मार्ग एक ही नाम रहे तो परस्पर की भेद बुद्धि दूर हो जाय भले ही सामग्री का भेद वना रहे। यदि तेरह पथ बीस पथ नाम ही बने रहे तो भी परस्पर मे एक दूसरे का विरोध नही करना चाहिये दोनो ही पक्ष अपने अपने आम्नाये से पूजन अभिषेक करे दोनो ही भक्ति श्रद्धा से भगवान की पूजा करते हैं। परस्पर प्रेम से उपासना करे। जिन मन्दिरो मे भी नाम भेद हटा दिया जाय तो और भी सरल मार्ग वन जाता है। पूजा मे सामग्री भेद बना रहे। किंतु भगनान तो दोनो के आराध्य देव है। अब समय चाहता है कि दोनो पक्षो को विना आपसी विरोध के अपनी२ आम्नाय से सभी मन्दिरो मे भगवान की भक्ति भाव से पूजा करना चाहिये। तेरा पथी मन्दिर और बीस पथी मन्दिर ऐसे नाम हटाकर दि० जैन मन्दिर यही नाम रखना चाहिये। दोनो मन्दिरो मे सवो के आराध्य देव भगवान तो एक ही है।

पूजन के अंग और समर्पित सामग्री की शुद्धता

पूजन के सम्वन्ध मे कुछ सज्जनो का यह भी मन्तव्य है कि जव जिनेन्द्र भगवान वेदी मे विराजमान है तो उनका आव्हान आदि क्यो किया जाता है? इसका समाधान दो शब्दो मे कह देना पर्याप्त है। शास्त्र रचियता आचार्यो ने पूजन के पाच अ ग वताये है आह्वानन प्रतिष्ठापन सन्निधी करण, पूजन विसर्जन ये पाच अ ग है। अभिषेक पूर्वक पूजन की जाती है अत चतु कोण कलश स्थापन आदि सात

अग भी बताये है। भगवान वेदी मे विराजमान है परन्तु पूजा करने वाला भगवान को अपने हृदय कमल पर विराजमान करने की भक्ति-पूर्ण भावना से प्रेरित होकर भगवान को अपने पवित्र हृदय मे विराज-मान करता है। यह दृढ श्रद्धा पूर्ण भक्ति का चिन्ह है। इसी के लिए वह भगवान का आव्हान करता है। उसी भाव से प्रक्रिया करता हुआ, वह पूजक आव्हानन, प्रतिष्ठापन और सन्निधीकरण मन्त्रोच्चारण पूवक करता है। परन्तु अनेक सज्जन जिस ठौना मे पुष्प क्षेपण करते है वे यह समझते हैं कि भगवान इन ठौने मे क्षेपण किये गये पुष्पो मे विराजमान हो गये हैं। इसी धारणा से वे उन पुष्पो को धूपदान की अग्नि मे जलाते हैं। यह मिथ्या धारणा है शास्त्र सम्मत नही है। ठौणा के पुष्पो मे भगवान नही बुलाये जाते हैं किन्तु भगवान का आव्हान अपने हृदय मे करने की प्रक्रिया का सूचक पुष्पो का क्षेपण है भगवान के चरण सान्निध्य मे हम पूजन कर रहे है इसकी त्रिवार सूचना ही मन्त्रो द्वारा पुष्पो से की जाती है। यद्यपि अतदाकार स्थापना का भी विधान है परन्तु पचम काल मे उसका निषेध है। अत ठौना मे जो क्षेपण किये जाते है वे विधिविधान की सूचना है उनमे भगवान की स्थापना नही है अत उन्हे जलाना व्यर्थ ही केवल नही हैं किन्तु शास्त्र विरुद्ध मिथ्या धारणा है। थाल मे चढी हुई सामग्री और ठौना के पुष्प समान हैं। उन पुष्पो को चढी हुई सामग्री मे ही डाल देना चाहिये। यदि उन पुष्पो मे भगवान की स्थापना मानकर उन्हे अग्नि मे डाला जाता है। तब तो घोर अविनय ठहरेगा अत शास्त्र विधान से ही पूजन करना हितकर है।

कुछ सज्जन भगवान के चरणो मे चढाई हुई सामग्री को अशुद्ध समझते है। यदि चढी हुई सामग्री से हाथ छू जाय तो तुरन्त हाथ को धोते है। यह बहुत ही नासमझी की बात है। जो सामग्री भगवान की पूजा के लिए तैयार की जाती है वह तो शुद्ध है किन्तु वह सामग्री जब भगवान के चरणो मे चढादी जाती है तब वह और

भी शुद्ध एव परम शुद्ध हो जाती है उसे अशुद्ध समझना भूल है। उस चढाई हुई सामग्री को पूजन करने के बाद शिर से लगाकर अपने को पवित्र बनाना चाहिये।

मूल बात यह है कि चढाई हुई सामग्री निर्माल्य कही जाती है निर्मलस्य भाव नैर्मल्यम् अर्थात् वह निमल है अति पवित्र है इसी का का नाम निर्माल्य पड गया है उस सामग्री का उपयोग या ग्रहण करने का अधिकार किसी श्रावक को नही है। पूजक तो चढा चुका उसका द्रव्य वह नही रहा। भगवान तो वीतराग है। उनका सम्बन्ध तो उस द्रव्य से हो ही नही सकता है। पुजारी ने अपनी भक्ति से अपने जन्म मरण को दूर करने एव मोक्ष प्राप्ति के लिए चढाई है। उस चढी हुई सामग्री को मन्दिर के प्रागण मे बनाये गये कूट (चबूतरा जैसा) पर रख देना चाहिये उसे पक्षी खा सकते है या कोई अजैन भिक्षुक ले जासकता है। इसी प्रकार जो द्रव्य(रुपया पैसा नोट आभरण छत्र चवर आदि) मन्दिर के भण्डार मे चढाया जाता है। वह देव द्रव्य कहा जाता है। उसे अपने लिए लेने वाला श्रावक पाप का सचय कर दुर्गति को प्राप्त करता है। देव द्रव्य को ग्रहण करने वाले का सर्वनाश हो जाता है। ऐसा आगम है।

प्रतिमा मे अतिशय पना

जिन प्रतिमाओ मे विशेप अतिशय पाया जाता है उनमे अधिक आकर्षण एव अधिक उपयोग लगता है। परिणामो मे अधिक विशुद्धि भी होती है। श्री महावीर जी आदि अनेक क्षेत्रो मे अतिशय वती मूर्तिया हैं। यह अतिशय प्रतिष्ठा, विधि की पूर्ण सपन्नता, मन्त्रो का विधिवत् पूर्ण प्रयोग प्रतिष्ठाचार्य की पूर्ण जानकारी और व्रत पालन पूर्वक विशिष्ट विशुद्धता आदि प्रतिमा मे अतिशय प्राप्त होने के कारण हैं। प्रतिष्ठाचार्य की निस्पृहता और निर्लोभ वृत्ति भी विधिवत् आगमानुकूल कार्य मे साधक है।

प्रतिष्ठाचार्य का वहुत सम्मान करना यथोचित भेंट भी करना यह प्रतिष्ठाकारक धनी का कर्तव्य है। परन्तु प्रतिष्ठाचार्य का कर्तव्य है कि प्रतिष्ठा जैसे परम पावन श्रद्धास्प्रद, धर्म कार्य मे अधिक चाहना की भावना नही रक्खे, निरपेक्ष शुद्ध भावो से इस महान कार्य को वे करें।

नितान्त अनुचित बात

आज कल अधिकतर यह देखा जाता है कि गर्भ और जन्म कल्याणको मे तीर्थंकर भगवान के माता पिता प्रतिष्ठाकारक गृहस्थ पति पत्नी को बना दिया जाता है। यह शास्त्र विरुद्ध नितान्त अनुचित बात है। कहा तो परम शुद्ध तीर्थंकर भगवान जिनके जन्म होते ही चारो गतियो के जीवो को अन्तर्मुहूर्त समय तक सुख और शान्ति मिल जाती है और कहा आजकल के साधारण गृहस्थ भगवान के माता पिता बन जाय ? यह तो तीर्थंकर भगवान का घोर अविनय और दोषपूर्ण आरोप बन जाता है। प्रतिष्ठा पाठो मे माता पिता की स्थापना घट या मजूसा आदि मे करने का विधान है। उसी के अनुसार विधि होना चाहिये।

भगवान के माता पिता निकट समय मे मोक्ष जाते हैं आज कल के गृहस्थो को माता पिता बनाना भगवान का घोर अविनय और घोर अपमान है

जिन पवित्रात्मा महान् पुण्यशाली माता पिता ने भगवान का जन्म दिया है। जिन पिता को भगवान आदर की दृष्टि से देखते है और जिस माता की कुक्षि मे भगवान का अवतरण हुआ है वे भगवान के माता पिता अति निकट काल मे मोक्ष जाते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि इन्द्र भी जिनको नमस्कार करता है ऐसे माता पिता दूसरे कोई नही हो सकते हैं। आज कल के साधारण गृहस्थ भगवान के माता पिता कहे जावें यह तो भगवान का घोर अपमान है और महान दोष है।

मन्त्रो द्वारा सकल्प करके भगवान के माता पिता की स्थापना की जाती है। वह स्थापना साधारण ग्रहस्थ मे करना और उन साधारण गृहस्थो को भगवान के माता पिता मानना यह निद्य बात है प्रतिष्ठाचार्यो को चाहिये यह पृथा कभी नही करावे। और प्रतिष्ठाकारक गृहस्थो को चाहिये कि वे भगवान के माता पिता कदापि नही बने, अन्यथा वे भगवान के घोर अविनय करने वाले बन जायेगे।

आचार्य मानतु ग स्वामी ने भक्तामर स्तोत्र की रचना करते समय भगवान आदिनाथ की स्तुति मे कहा है–

स्त्रीणा शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतम् तदुपम जननी प्रसूता
सर्वादिशो दधति भानि सहस्ररस्मिम्
प्राच्येव दिग जनयति स्फुर दशु जालमु

अर्थ– सैकडो स्त्रिया सैकडो पुत्रो को जन्म देती हैं किन्तु भगवान जैसा जगत्पूज्य पुत्र को जन्म देने वाली माता और कोई नही हो सकती है। जैसे समस्त दिशाये नक्षत्रो को धारण करती हैं किन्तु सूर्य को जन्म देने वाली एक पूर्व दिशा ही है। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान के माता पिता और कोई नही हो सकते है। साधारण गृहस्थ उस महा पुण्यशाली पद के सर्वथा पात्र नही हैं।

इसीलिये प्रतिष्ठा पाठो मे गर्भ जन्म कल्याणको के समय भगवान के माता पिता की स्थापना मत्रो के सकल्प से घट अथवा मजूसा आदि मे करने का ही विधान है। आगम विरुद्ध स्थापना दोषाधायक होने के साथ प्रतिष्ठाचार्य एव प्रतिष्ठाकारक दोनो के लिए अहितकर है।

भगवान के लिये उद्दिष्ट आहार भी निषिद्ध है

आजकल यह भी देखा जाता है कि दीक्षाकल्याणक के समय तीर्थंकर भगवान के लिये जहा आहार तैयार किया जाता है वहा उस

आहार का सकल्पित एव उद्दिष्ट रूप बन जाता है। भगवान के लिये आहार की बोली बुलबाई जाती है। जो गृहस्थ अधिक रुपये बोलता है उसी के यहा भगवान का आहार कराया जाता है। जब सामान्य मुनि भी किसी व्यक्ति के घर मे आहार का सकल्प कर आहार नही लेते है वह उद्दिष्ट हो जाता है। वेतो वृत्ति परिसख्यान पूर्वक जहा भी शुद्ध भोजन की योगाई मिल जाती है वहा आहार ग्रहण करते हैं। तब तीर्थंकर भगवान अधिक बोली द्वारा निर्णीत सकल्पित घर मे आहार कैसे कर सकते हैं? कभी नही करेगे। इसलिये भगवान के आहार की बोली बुलवाना शास्त्र विरुद्ध है। इतना-द्रव्य का लोभ या लाभ भी नितात अनुचित एव त्याज्य है। आगम विरुद्ध भी है।

आचार्य शान्ति सागर जी ने निषेध कर दिया था

गजपथ सिद्ध क्षेत्र पर जब पचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी तब उस क्षेत्र पर विराजमान कराने के लिये-अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इन पाच परमेष्ठियो की दो-दो फुट की ऊची पाच प्रतिमाएं आचार्य सुधर्म सागरजी की आज्ञा से हमने अपनी ओर मे बनवाकर जयपुर से लेजाकर गजपथ मे उनकी प्रतिष्ठा कराई थी उस समय अनेक बोलिया प्रत्येक कार्य की बोली गई थी। भगवान के आहारकी भी बोली बोलीगई हमने उसका सभा मच पर शास्त्राधार से विरोध किया विवाद बढा वही पर आचार्य शाति सागर महाराज का सघ विराजमान था, निर्णयार्थ प्रतिष्ठाचार्य सहित महाराज के पास गये महाराज ने कहा कि आहार की बोली बोलने से भगवान के आहार का घर पहले से ही निश्चित होजायगा उसी घर मे जाने से उद्दिष्ट दोप लगेगा। अत आहार की बोली नही बोली जाय तब वह बोली नही कीगई।

पतिष्ठाचार्यो का कर्तव्य है वे आगम विरुद्ध कोई क्रिया नही ैर कोई गृहस्थ मंदिर की आय के लिये या अपनी प्रतिष्ठा

के लिये आगम विरुद्ध कोई क्रिया कराना चाहे तो उसे रोक देवे। प्रतिष्ठाचार्यो का ही अधिकार एव उत्तर दायित्व है। कि वे प्रतिष्ठा जैसे रत्नत्रय वर्धक महान् कार्य आगम के अनुसार ही करावे।

पचकत्याणठाणव सजाद मज्झलोयस्मि
मण वयण काय सुद्धी सव्वे सिरसा णमस्सामि
(निर्वाण काण्ड)

जनेऊ धारण किये बिना जिन पूजन मुनिदान करने का अधिकार नहीं है

यज्ञोप वीत (जनेऊ) का धारण करना परमावश्यक है

यज्ञोपवीत, जनेऊ, ब्रह्मसूत्र, ब्रह्म चिन्ह रत्नत्रय ये सब नाम पर्यायवाची हैं सबो का एक ही अर्थ है। पाक्षिक श्रावक से लेकर नैष्ठिक श्रावक (प्रतिमाधारी) तक जनेऊ सबो को पहनना चाहिये। जनेऊ रत्नत्रय का वाह्य चिन्ह है। और उत्तम वर्ण का सूचक चिन्ह है सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ये तीनो आत्मा के गुण हैं उन्ही की प्राप्ति के लिये अथवा उन्ही के पालक का यह जनेऊ वाह्य चिन्ह है। बिना जनेऊ के सस्कार हीनएव शूद्रवत् उत्तमवर्णबाला भी प्रतीत तहीहोता है इतना ही नही किंतु पूर्वाचार्यों के वचनो का पालने वाला नही है। सस्कार हीन होने से रत्नत्रय भी प्रगट नही होता है। जंसे व्रताचरण की वाह्य क्रिया का पालन किये बिना आत्मा मे शुद्धि एव चारित्र की प्राप्ति नही होती है।

जनेऊ के धारण किये बिना जिन पूजा ओर मुनिदान देने का किसी को अधिकार नही है। ऐसी शास्त्रो की आज्ञा है। मुनिराज भी उसी के हाथो का आहार लेते हैं जिसके शरीर पर यज्ञोपवीत है।

जनेऊ पहिनने मे विरोध किसी को नही है

दिगम्बर जैन समाज मे चाहे वीस पथ वाले हो चाहे तेरह

पथ वाले हो, जनेऊ पहनने मे किसी को विरोध नही है, दोनो पक्ष वाले जनेऊ पहनते हैं, जनेऊ धारण करके ही जिन पूजन और मुनि दान देते हैं। परन्तु प्रमादवश कोई जनेऊ नही पहनते है। कोई ऐसे भी है जो जनेऊ पहिनने का इसलिये विरोध करते हैं कि यह जनेऊ पहनना ब्राह्मणो की प्रथा है जैनियो की नही है। ऐसा विरोध समाज नही करता है किन्तु कोई २ समालोचक कुतर्की विद्वान ही करते है। वे स्वय भ्रमशील है। आगम एव मुनियो पर श्रद्धा नही रखते है। और समाज को भी शास्त्राज्ञा से विचलित करना चाहते है।

ऐसे कतिपय इनेगिने विद्वान यहा तक कहते हैं कि भगवान तो परम वीतराग है उनकी पूजा भी वीतराग भाव से होना चाहिये। भगवान की पूजा मे आठ द्रव्यो के आडम्बर की क्या आवश्यकता है ? यह प्रथा तो वैष्णवो की देखादेखी चल पडी है। विना सामग्री के रीते हाथ जोडकर भगवान के दर्शन कर चले आना चाहिये। ऐसे लोगो की धर्म क्रिया विहीन मनोवृत्ति से कुछ भोले लोग वहक भी सकते है परन्तु धार्मिक आगम श्रद्धालु समाज ऐसी आगम विरुद्ध वातो पर कोई ध्यान नही देता है।

जो भी पूजा, पाठ, जनेऊ आदि सव वैष्णवो से आगया है तो फिर जैनियो का कुछ नही है, मन्दिर मठ आदि भी उन्ही से लिया गया है तो मन्दिर पूजन आदि सब धार्मिक क्रियाओ को छुडाकर भगवान का स्मरण घर मे ही कर लेना चाहिये। ऐसे विद्वान यह वता सकते है कि जनेऊ द्रव्य पूजा आदि वैष्णवो से लिया गया ऐसा पूर्वाचार्यो द्वारा रचित किसी शास्त्र मे वता सकते है क्या ? या मनमानी निराधार कहते है। यह वात इतिहास सिद्ध है कि सबसे प्राचीन देव मूर्ति जैनियो की है। अत जैनो से ही वैष्णवो ने देव पूजा ग्रहण को। और जनेऊ सस्कार भी अनादि सिद्ध है।

आचार्य शान्तिसागर महाराज का उत्तर मे विहार क्यो हुआ

परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महाराज को दक्षिण से उत्तर मे विहार कराने के लिए जब बम्बई से सेठ पूनम चन्द घासीलाल जी जौहरी को साथमे लेकर हमारे बडे सहोदर भाई श्री० प० नन्दनलाल जी शास्त्री (परमपूज्य आचार्य सुधर्म सागर महाराज) उनके पास गये थे तब यही निवेदन आचार्य महाराज से किया था कि उत्तर मे अनेक जैन लोग जनेऊ नही पहनते हैं, खान पान भी बाजार का करते है आपका उधर विहार होने से उन सबो का एव समाज का कल्याण होगा। परिणाम यह हुआ कि आचार्य महाराज का उत्तर मे विहार हुआ और विशेषकर उन्होने दो बातो की प्रतिज्ञा दिलाई। एक जनेऊ धारण करो और शूद्र के हाथ का जल ग्रहण मत करो। इन दोनो बातो से लोगो के सस्कारो मे बहुत परि- वर्तन हो गया। खानपान मे भी शुद्धता आगई और जिनके जनेऊ नही था उन्होने जनेऊ धारण कर लिया। विवाह के समान यज्ञोपवीत भी एक प्रधान सस्कार है।

जनेऊ तीर्थंकर भी धारण करते थे

कठे हारलतां विभ्रन् कटि सूत्र कटीतटे
व्रह्म सूत्रोपवीताङ्ग सगागौ घमिवाद्रिराट्

(आदि पुराण पत्र ५८०)

भगवज्जिनसेनाचार्य ने आदि तीर्थकर भगवान ऋषभदेव का वर्णन करते हुए लिखा है कि भगवान जब गृहस्थ थे तब उनके कण्ठ मे हार था कटि मे करधौनी थी, और उनके शरीर पर ब्रह्मसूत्र जनेऊ था।

जब जनेऊ भगवान आदिनाथ पहनते थे तब यह प्रथा वैष्णवो से आई है ऐसा समझना महा भूल भरा है।

और भी प्रमाण

द्विर्जातोहि द्विजन्मेष्ट क्रियातो गर्भतश्चय
क्रियामत्र विहीनस्तु केवल नामधारक

(आदि पुराण पत्र १३४८)

मोक्ष प्राप्ति का अधिकार द्विजन्मा को ही है। एक गर्भ से जन्म माना जाता है दूसरा क्रिया से जन्म माना जाता है। गर्भ से जन्म तो सभी का होता है परन्तु यज्ञोपवीत आदि क्रियात्मक सस्कार उच्च वर्ण वालो का ही होता है। जो क्रिया, मत्र से रहित है वे नाम मात्र के जैन हैं।

जनेऊ के विषय मे महत्वपूर्ण कथन

स्वायभुवान्मुखाज्जाता स्ततो देव द्विजा वयम्
व्रतचिन्ह च सूत्र च पवित्र सूत्र दर्शितम्
शरीर जन्म सस्कार जन्म चेति द्विधा मतम्

(आदि पुराण)

भगवान आदिनाथ के समय मे जिन्होने यज्ञोपवीत धारण किया था वे कहने लगे कि—

भगवान-स्वयभू आदिनाथ के मुख से सुनकर हम लोगो ने व्रत चिन्ह-यह जनेऊ धारण किया है। यह पवित्र है। शरीर से जन्म लेना तो सभी को होता है किंतु यह जनेऊ सस्कार से जन्म कहलाता है। आज हम लोग देवो के समान द्विज वन गये हैं।

जाति सैव कुल तच्च सोस्मियोहिप्राक्तन
तथापि देवतात्मानमात्मान मन्मते भवान्

(आदिपुराण)

हमारी वही पवित्र जाति है। वही पवित्र कुल है और वही मै हू जो पहले था। तो भी आज जनेऊ धारण करने से मैं देवता के समान माना जाता हू।

जनेऊ धारण करने का फल

वाल्य एव ततोऽभ्यस्येत् द्विजन्मोपासिकी श्रुतिम्
स तथा प्राप्त सस्कार स्वपरोत्तारको भवेत्
(आदि पुराण)

अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करने वाला बालक अवस्था से ही उपासकाचार सूत्रानुसार सस्कार सहित धार्मिक क्रियाओ को करता हुआ अपना और दूसरो का तारक वन जाता है। अर्थात् परपरा मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

इस सम्बन्ध मे अधिक लिखना अनावश्यक है। यह निर्विवाद सर्व मान्य शास्त्र सम्मत विषय है। सस्कारो के विषय मे भगवज्जिन सेनाचार्य, गुणभद्राचार्य, योगीद्राचार्य, इन्द्रनन्द्याचार्य पूज्यपादाचार्य आदि पूर्वाचार्यों ने विधान बताया है।

आदि पुराण का स्वाध्याय करने से यह भी विदित होगा कि भरत चक्रवर्ती ने भगवान ऋषभदेव के समवसरण मे जाकर भगवान के सामने यह कहा था कि भगवन् मैंने श्रावको को व्रत चिन्ह स्वरूप जनेऊ धारण कराकर द्विजन्मा बनाया है।

ऊपर के श्लोको से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वर्ण, जाति, कुल शुद्धि अनादि काल से चली आई है। भगवान ऋषभदेव ने अपने अवधि ज्ञान से प्रत्यक्ष देखकर विदेह क्षेत्र मे जैसी वर्ण जाति कुल शुद्धि की परिपाटी थी उसी का विधान भरत क्षेत्र मे चालू किया था, जैसा कि वर्ण जाति की अनादि सिद्धता मे आदि पुराण का प्रमाण दिया जा चुका है।

चारो अनुयोगी शास्त्र अध्यात्म हैं।
चारो से स्वात्म सिद्धि होती है

अध्यात्म विषय आत्मा की साधना का मुख्य विषय है अध्यात्म के समझने मे आजकल कोई कोई विद्वान् भी भ्रमशील वन गये हैं।

अथवा अध्यात्म के नाम पर भ्रमपूर्ण मिथ्या प्रचार भी ऐसा किया जारहा है जिससे सम्यग्ज्ञान और चारित्र का पालन तो दूर रहा किंतु दि० जैन धर्म के अनुयायिओ से वे छुडाये जारहे हैं। ऐसी दशा मे सम्यग्दर्शन का तो मूल मे ही अभाव है। ऐसे विद्वान् और उनका एक गठन (मिशन) अध्यात्म का अर्थ यह समझता है कि आत्मा का ही विषय जिस शास्त्र मे हो वही अध्यात्मशास्त्र है ऐसा समझकर अन्य सभी अनुयोगो के सभी शास्त्रो को छोडकर केवल समयसार को ही वे लोग अध्यात्म बताते हैं। समयसार का ही शास्त्रसभा मे और अपनी गोष्टी एव अपने मिशन मे वाचन करते हैं। अन्य सभी शास्त्रो को वे केवल अनुपयोगी ही नही कहते हैं किंतु उन्हे अप्रमाणिक भी ठहराते हैं। समयसार को वाचकर उसका भाव भी विपरीत ग्रहण करते कराते हैं। चारित्र का तो निषेध करते ही हैं साथ मे अपने को परमात्मा समझते हैं ।और ससारी सभी जीवो को चाहे किसी गति मे क्यो नही हो शुद्ध मानते हैं उनका यह स्पष्ट प्रचार है कि आत्मा द्रव्य है वह सदैव शुद्ध है, पर्याय मे अशुद्धता आती है। कर्मो का आत्मा से कोई सबध नही हैं वे जड हैं मूर्तिक हैं, आत्मा चेतन है अमूर्तिक है। मूर्तिक और अमूर्तिक का सबध कभी नही होता है। इस प्रकार की समझ से ये नवीन विचार धारा वाले मिशन और उनके प्रयोजन साधक विद्वान् समाज को दिशा भूल करना चाहते है इतना ही नही किंतु अगाग ज्ञानी धरषेण भूतवलि पुष्पदत, कु दकु दाचार्य, समतभद्र जिन सेनाचार्य अकलक देव आदि पूर्वाचार्यो के रचे हुए शास्त्रो के कथन का लोप करना चाहते हैं।

अध्यात्म का स्पष्टीकरण तथा उसका स्वरूप भेद

अध्याय का स्वरूप कई प्रकार का है। एक तो यह है कि आत्मा मे आत्मा के द्वारा आत्मा का ध्यान करना अर्थात् आत्मा मे तन्मय होकर लीन होजाना यह अध्यात्म का स्वरूप योगी पुरुषो मे पाया जाता है। जैसा कि प० दौलतरामजी ने छहढाला मे कहा है–

जहं ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प वचभेदन जहा ध्यान कौन ध्येय कौन ध्याता कौन ऐसा भिन्न भिन्न विकल्प और वचन भेद जिस आत्मा मे नही होता है वह आत्मा अध्यात्मा है।

दूसरा अध्यात्म वह है कि जो अन्य पदार्थो को छोवकर केवल आत्मा के चितवन मे ही अपना उपयोग लगाता हैं वह भी अध्यात्म विषय है।

तीसरा अध्यात्म वह है कि आत्मा के स्वरूप साधक जो शास्त्र है उनका स्वाध्याय करना यह अध्यात्म है। पहला भेद मूल साध्य है दूसरा उसका साधक है तीसरा वाह्य साधक है। वर्तमान मे तीसरे पर ही विचार करना है। जो लोग केवल समयसार को ही अध्यात्म कहते है इसमे आत्मा के शुद्ध स्वरूप का मुख्य रूप से कथन है। परतु उसमे भी केवल शुद्धात्मा का ही कथन नही है। उसमे निश्चय नय के विवेचन के साथ व्यवहार नय का भी कथन है जिसकी व्याख्या आचार्य अमृतचद्र सूरि ने साध्य साधक रूप से की है अर्थात् व्यवहार को साधक और निश्चय को साध्य बताया है। व्यवहार मुनिपद है उसके बिना निश्चय प्राप्ति असभव है। इसी प्रकार जीव के विभाव भावो का निमित्त कर्म है और कर्मो के आने का निमित्त ससारी जीव है यह सब विषय समयसार मे बताया गया है।

जिस प्रकार अध्यात्म का कथन करने वाला समय सार द्रव्या-नुयोग शास्त्र है उसी प्रकार आत्मा को सासारिक वासनाओ से हटाने वाला असदाचार रूप पाप प्रवृत्ति को रोकने वाला और अभक्ष्य भक्षण, रात्रि भक्षण हिंसादि पापमूलक खोटी क्रियाओ का त्याग कराने वाला चरणानुयोग शास्त्र है। चरणानुयोग शास्त्र के स्वाध्याय से पाक्षिका-चार नैष्ठिकाचार साधकाचार का परिज्ञान एव प्रतिज्ञा रूप त्याग परिणति होती है। उससे ससार से विरक्ति होती है ऐसा निवृत्ति रूप परिणाम अध्यात्म का मूल साधक है। विना चारित्र धारण किये आत्मा की साधना अशक्य है इसलिये चरणानु योगीशास्त्र

रत्नकरडश्रावकाचार, सागारधर्मामृत चारित्रसार अनगारधर्मामृत मूलाचार भगवती आराधना षटप्राभृत अष्ट पाहुड आदि चरणानु-योगो शास्त्रो का स्वाध्याय परमावश्यक है। ये सभी शास्त्र अध्यात्मक है। इनके स्वाध्याय के बिना अध्यात्म की सिद्धि नही हो सकी है। अथवा यो कहना चाहिये कि चारित्र धारण करना ही अध्यात्म है और वह चारित्र धारण—चारित्र स्वरूप विधायक शास्त्रो से ही होता है। वे शास्त्र भी अत्यात्म शास्त्र है।

प्रथमानुयोग भी अध्यात्म है

प्रथमानुयोग के शास्त्र भी अध्यात्म है त्रेसठ शलाका के पुरुषो का और मोक्षगामी सभी पुरुषो का जीवन चरित्र पढने से आत्मा मे तुरन्त गहरी जागृति होती है। कितने पुरुषो ने कैसे कैसे कार्य किये है किन किन पुरुषो का किन २ निमित्तो से उद्धार एव कल्याण हुआ है किन२ के परिणाम किन २ कारणो से ससार से विरक्त हुए हैं। भवो का वर्णन बाचने और सुनने से आत्मा मे जागृति और स्वात्म साधन की ओर तीव्र भावना और लगन हो जाती है। प्रथमानुयोग मे पुण्य पुरुपो और पूतात्माओ का जीवन चरित्र पढने मे मन भी लगता है। उपयोग विषयाभिलाषाओ से हटता है इसलिए प्रथमानुयोग के कथा-नकशास्त्र अध्यात्म है उनके स्वाध्याय से आत्मा की ओर परिणति नियम से वदलती है। अत प्रथमानुयोग के शास्त्रो का स्वाध्याय आत्मा के हित के लिए सवसे प्रथम उपयोगी एव आवश्यक है। वे शास्त्र भी अध्यात्म शास्त्र हैं।

करणानुयोगी शास्त्र भी अध्यात्म हैं

करणानुयोगी शास्त्रो मे तीनो लोको का स्वरूप कहा गया है। जवू द्वीप मध्य मे है वह एक लाख योजन का है एक योजन दो हजार कोस अथवा चार हजार मील का होता है। यह बडा योजन होता है अकृत्रिम वस्तुओ का माप सर्वस्त्र वडे योजन से ही लिया जाता है।

कृत्रिम वस्तुओ का माप छोटे योजनो से लिया जाता है छोटा योजन चार कोस अथवा आठ मील का होता है। जैसे इद्र ने तीर्थं करके जन्म कल्याणक मे भगवान को सुमेर पर्वत पर ले जाने के लिये हाथी तयार किया वह हाथी कृत्रिम योजन का तैयार किया। जबू द्वीप से दूने-दूने विस्तार—वृत्ताकार असख्याते द्वीप समुद्र हैं। कहाँ नरक है कहा स्वर्ग है कहा सर्वार्थ सिद्धि विमान हैं। कहा सिद्ध लोक है। यह सब परिज्ञान करणानु योगी शास्त्रो के स्वाध्याय से होता है। यदि शास्त्राधार से इस अकृत्रिम लोक रचना, त्रसनाद्री, राजू परिज्ञान स्थावर और निगोद स्थान आदि का परिज्ञान नही किया जाय अथवा उनका शास्त्रोक्त श्रद्धान नही किया जाय तो सम्यग्दर्शन हो नही हो सकता है। जो अध्यात्म का मूल गुण है। आज कल विदेशी आविष्कारक भौतिक खोज करने वाले विद्वानो ने पृथ्वी का परिमाण अत्यन्त छोटा मान लिया है कि पूरा भारत क्षेत्र भी उस माप मे नही आता है। फिर नरक स्वर्ग एव असख्यात द्वीप समुद्रो का सद्भाव तो उनकी समझ से सर्वथा बाहर है। इसलिये लोक स्वरूप की श्रद्धा करणानुयोगी शास्त्रो से ही होती है। और शास्त्रोक्त श्रद्धान ही व्यवहार एव निश्चय सम्यक्त्व का साधक है अत करणानु योग भी अध्यात्म है। शास्त्रो मे बीज सम्यक्त्व आदि दश भेद सम्यक्त्व की उत्पत्ति के बताये गये हैं। करणानु योग मे त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति त्रिलोक प्रज्ञप्ति आदि शास्त्र गर्भित है। तत्त्वार्थ सूत्र आदि शास्त्र करणानुयोग चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग वाले हैं।

द्रव्यानुयोग भी अध्यात्म है

द्रव्यानुयोगी शास्त्रो के स्वाध्याय से छह द्रव्य, द्रव्यगुण पर्याय, कर्म सिद्धान्त, जीव स्वरूप निश्चयनय व्यवहारनय, प्रमाण, निक्षेप, चतुगति, 'जीव समास, आदि का परिज्ञान होता है। बहिरात्मा, अत-रात्मा परमात्मा आदि बोध द्रव्यानुयोगी शास्त्रो से ही होता है। अत द्रव्यानयोग भी अध्यात्म है जीव के उत्थान और मुक्ति के सहायक

चारो अनुयोग है अत चारो ही अध्यात्म हैं। जो लोग केवल समय स्तर को ही अध्यात्म समझते है वे वडी भूल करते हैं इतना ही नही किन्तु निश्चय ऐकाती अथवा निश्चयाभासी बन जाते हैं और शेष तीनो अनुयोगो को अनुपयोगी समझते है द्रव्यानुयोग मे द्रव्यसग्रह, वृहद्रव्य-सग्रह, सर्वार्थ सिद्धि राजवार्तिक श्लोकवार्तिक अष्ट सहस्री, प्रमेय कमल मार्त्तंड गोम्मटसार लब्धिसार क्षपणासार, जयधवल, महाधवल आदि शास्त्र गर्भित है। वैसे इनमे चारो अनुयोगो का विषय विवेचन भी आजता है। परन्तु मुख्य कथन द्रव्यो का एव जीव तत्व का ही है।

प्रथम प्रथमानुयोग और चरणानुयोग

अध्यात्म की प्राप्ति एव साधना के लिये गृहस्थो को सबसे प्रथम प्रथमानुयोग शास्त्रो का—पौराणिक कथाओ का स्वाध्याय ही अत्युप-योगी है। तथा चरणानुयोग शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिये। समयसार धवलादि सिद्धान्त शास्त्र मुनियो के लिये ही अधिक उपयोगी है क्योकि जो चारित्र का पालन महाव्रत रूप मे पालन करते हैं जिनका ध्येय केवल स्वात्म साधन ही है। वे ही सिद्धान्त शास्त्रो के पढने और उनसे वास्तविक एव यथार्थ लाभ लेने के अधिकारी हैं।

प्रथम चरण करण द्रव्य नम.

जैन दर्शनाचार्य- श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक

विरचित इस ग्रन्थ का श्रावक धर्म, स्त्रियो द्वारा अभिषेक विधान, तथा पूजन प्रकरण और यज्ञोपवीत एव अध्यात्म विषय का निरूपक

छठा अध्याय समाप्त

अ ' ाा 'ां अध्य

वर्तमान मुनियों में हीन संहनन

होने से उत्कृष्ट तपश्चरण संभव नहीं है

किन्तु

उनकी चर्या और भावलिंग चतुर्थकाल के

मुनियो के क्ष है ।

वर्तमान मे मुनियो का विहार समाज के कल्याण का ही साधक है उनका ससार विरक्त निष्पृह एव निष्कषाय जीवन स्व-पर हित मे लगा हुआ है । शास्त्रो से अनभिज्ञ कुछ लोग यह समझते हैं कि मुनि पचम काल मे नही होते हैं, चतुर्थ काल मे ही होते हैं । इसलिये आजकल के मुनि मुनि नही हैं । इस मिथ्या धारणा से वर्तमान मुनि राजो मे उनकी श्रद्धा नही है । नवीन पथ प्रसारक लोग यह कहते है कि वर्तमान मुनि द्रव्यलिंगी है उनमे सम्यग्दर्शन नही हैं सभी मिथ्यादृष्टि हैं । ऐसे विचार वाले लोग अपना और दूसरो का अहित तो करही रहे हैं साथ मे खोटे कर्मो का बध भी कर रहें हैं । मुनियो के सवध मे शास्त्र क्या कहते हैं सो समझ लेना चाहिये ।

भगवद्कुद कुदाचार्य, सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्यनेमीचद्र आचार्य सोमदेव आदि आचार्यो ने स्वरचित शास्त्रो मे यह स्पष्ट लिखा है कि

पचमकाल के अन्त तक भावलिगी (सम्यग्द्रष्टि और सम्यक्चारित्र-धारी मुनि होगे।) आर्यिकाए भी होगी। जव शास्त्रो का ऐसा विधान है तव आज तो पचमकाल का प्रारभ ही है केवल ढाई हजार वर्ष गये है। पचमकाल मे अभी अठारह हजार वर्ष वाकी हैं। यह पचमकाल अवनतशील (क्रम-क्रम से धर्म के ह्रास का समय) है जव पचमकाल के अत तक भाव लिगी मुनि होगे तव आजकल भाव लिगी मुनियो का अभाव वताना शास्त्रो की अजानकारी या कर्मोदय वश अश्रद्धा है। चतुर्थकाल मे वज्र वृषभ नाराच उत्तम सहनन होता था, तव वे उत्तम तपश्चरण करने मे पूर्ण समर्थ थे। आजकल असप्राप्त सृपाटिकाहीन सहनन होने पर वर्तमान मुनिगण शीत उष्ण परीषह, घोर, उपसर्ग, सहन उपवास आदि कर रहे हैं। निरन्तर ध्यान और स्वाध्याय करते हैं। वचे हुए समय मे श्रावको एव अन्य लोगो को धर्मोपदेश देकर उन्हे धार्मिक प्रतिज्ञाए दिलाते है। साथ ही अतरग मे रत्नत्रय का परि-पालन करते हुए वाह्य मे अट्ठावीस गुणो का पालन करते है। प्राण सकट मे सल्लेखना समाधि मरण भी करते हैं। ऐसी अवस्था मे जो लोग वर्तमान सभी मुनियो की निन्दा, आलोचना और मिथ्या आक्षेप करते हैं ऐसा मुनियो का घोर अविनय देखकर धार्मिक समाज मे वहुत क्षोभ और दु ख होता है।

आचार्य सोमदेव ने लिखा है —

काले कलौ चले, चित्ते देहे चान्नादि कीटके
एतच्चित्र यदद्यापि जिनरूपधरा नरा

अर्थ—वर्तमान समय कलियुग है। इसका आशय यह है कि आजकल देशकाल और राज्य भी नग्न साधुओ का विहार नही देखना चाहता है। और तो क्या दिगम्बर धर्मधारी कहे जाने वाले कुछ पढे लिखे लोग भी मुनियो की निंदा करते हैं इतना देखते हुए जानते भी मुमिगण निर्भीक रूप से सर्वत्र विहार कर रहे हैं। दुष्ट वचन, और विरोध वाधाओ को सहते हुए भी निर्विकार रहते है। फिर आजकल चित्त

चचल हैं। सासारिक वासनाओ मे दौडता है। मोहित होकर ममत्व वुद्धि करता है, आत्म साधन मे स्थिर नही होता है ऐसे चचल मन और इन्द्रियो को वश मे करके मुनिगण निर्ममत्व और निस्पृह भाव मे लगे हुए हैं। फिर शरीर की दशा यह है कि शक्ति-सामर्थ्य कम होने से आज का मनुष्य अन्न का कीडा बन गया है। दिन भर और रात भर खाता पीता है। ऐसी शारीरिक परिस्थिति मे भी मुनिगण दिन मे—आहार वेला के समय एक बार ही भोजन करते हैं। अनुकूल त्रतिकूल जैसा भी शुद्ध आहार मिल जाता है उसे वे ग्रहण कर लेते हैं। यदि २।४ उपवास भी करते हैं उसके बाद पारणा (आहार) के लिये जाते हैं वहा यदि वृत्ति परिसख्यान अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आहार की योगाई नही मिली तो फिर विना खेद के फिर उपवास करते हैं। यदि शुद्ध आहार लेने लगे किंतु प्रारभ मे ही कोई अतराय आगया तो आहार छोड देते हैं जल भी नही ले सकते है। कण्ठ सूख जाता है तब भी शान्ति परिणामो से धर्म साधन मे लगे रहते है। वर्तमान मुनियो के इस तपश्चरण को देखते हुए आचार्य सोमदेव कहते हैं कि यह आश्चर्य की बात है कि आज भी मुनि रूप मे सिह वृत्ति से विहार करते हुए नग्न दिगम्बर साधु दीख रहे हैं। धार्मिक समाज उनके दर्शनो के लिये लालायित रहता है और उनका दर्शन करके तथा उन्हे आहार दान देकर अपने को परम सौभाग्यशाली मानता है अपने कर्मोदय वश कुछ साक्षर लोग भी मुनियो पर मिथ्या आक्षेप करते हैं यह उनका होन-हार है। हा यह भी सच है कि एक दो मुनि शिथिलाचारी भी हैं ऐसे मुनियो को उनके पास जाकर समझाना चाहिये कि आपने घर सम्पत्ति परिवार क्यो छोडा है ? मुनि पद भारी पुण्य से प्राप्त किया है। उस अमूल्य रत्न को सम्हालना चाहिये यदि वे मुनि नही मानते हैं तो उन्हे किसी आचार्य सघ मे ले जाने का प्रयत्न करना चाहिये। उन्हे समझाने और सुमार्ग पर लाने की सामर्थ्य और अधिकार उन्ही को है। परन्तु जिनकी मुनियो पर श्रद्धा नही है साथ ही स्वय की

आहार विहार मे निर्मर्याद प्रवृत्ति है। ऐसे लोग सभी मुनियो की निंदा करते है यह सर्वथा निंद्य है। ऐसे लोग मुनि मार्ग को ही समाप्त करना चाहते है। जब दि० जैन धर्म का उच्च आदर्श ही नही रहेगा तो गृहस्थो की निर्मर्याद अत्यन्त धर्म विहीन दशा हो जायेगी। चतुर्थ काल मे भी कोई २ मुनि शिथिलाचारी हो जाते थे। आचार्य उनकी दीक्षा तक छेद कर देते थे। और नये रूप मे दीक्षा देते थे फिर वे मुनि अपने कल्याण मे लग जाते थे। इसलिये स्वात्म साधन मे दृढता से लगे हुए और वाह्य चर्या मे भी सावधान रहने वाले सभी मुनियो पर आक्षेप करना नितात अनुचित एव पाप वध का कारण है।

जिन लोगो मे व्यवहार सम्यक्त्व का भी ठिकाना नही है वे लोग सभी मुनियो को द्रव्यलिंगी कहते है सो यह उनका पूरा अज्ञान है। श्रावक तो मुनियो की वाह्य चर्या (अठाईस मूल गुण) ही देखेगा। यदि मुनि उसका पालन सावधानी से करता हुआ प्रतीत होता है तो श्रावक वडी श्रद्धाभक्ति से मुनिराज के दर्शन कर उनके चरणो मे अपना मस्तक रख देगा और उनके धर्मोपदेश से अपना कल्याण करेगा।

अतरग मे मुनियो को सम्यग्दर्शन है या नही इसे तो केवली भगवान या मन-पर्यय तथा परमावधि, सर्वावधि ज्ञानी ही जान सकते है। अज्ञानी पुरुष अतरग के गुणो को कभी नही जान सकता है। श्रावक तो द्रव्यलिंग ही देखते है। पीछी कमडलु सहित साधुचर्या से विभूषित मुनि को देखकर जो श्रावक श्रद्धाभक्ति द्वारा उनकी विनय और पूजा करता है वही श्रावक धर्मात्मा है। तत्वार्थ सूत्र महाशास्त्र मे पुलाक वकुश कुशील निग्र थ और स्नातक ये पाच भेद मुनियो के बताये है। ये पाचो ही भावलिंगी होते हैं ऐसा आचार्यो ने वताया है। उनमे पुलाक मुनि कुछ शिथिल होते है। नया कमडलु पीछी का भी उन्हे ममत्व रहता है। तीव्र गरमी मे शरीर पर कमडलु का जल भी डाल लेते हैं फिर भी उन्हे भावलिंगी मुनि शास्त्राकार आचर्यो ने बताया है। सर्वार्थ

सिद्धि मे तो पूज्यपाद आचार्य ने यहा तक लिखा है कि—क्वचित् कदाचित् मूल गुण विराधनामपि करोति अर्थात् ऐसे पुलाक मुनि कभी कही पर अट्ठाईस मूल गुणो मे से किसी गुण की विराधना भी कर डालते हैं तो भी उन्हे भाव लिंगी मुनि बताया गया है नग्नता आदि मुख्य गुणो को विराधना हो जाय तो वह मुनि नही रहता है। मुनिपद से भ्रष्ट कहा जायगा। किस प्रकार की कितनी शिथिलता होने पर भी मुनि पद कहा तक बना रह सकता है इस वात का निर्णय पूर्वाचार्यो ने दिया है उसे मानना चाहिये। थोडी सी शिथिलता या चर्या मे कुछ कमी देखकर झट घोषणा (फतवा) कर देना कि यह मुनि नही है, तो यह महान अपराध है। एक उत्तम पात्र को अपात्र ठहराना पूरा अविवेक एव अज्ञान है आचार्यों ने सूक्ष्मदृष्टि से इस विषय पर विचार कर ही मुनिपद का स्वरूप वताया है।

सम्मेद शिखर पर जब चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शाति सागर महाराज सघ सहित पधारे थे तब वहा पच कल्याणक प्रतिष्ठा, सघ सचालक सघभक्ति शिरोमणि सेठ पूनमचद घासीलाल जोहरी ने कराई थी उसमे सवालाख के लगभग समाज इकट्ठा हुआ था उस समय एक उच्च कोटि के विद्वान् ने हमसे वही पर पूछा था कि जब श्रावक पहाड पर कु थुनाथ की पहली टोक तक ४/५ घटे मे चढपाते हैं तब आचार्य महाराज दो ढाई घटे मे ही वहा पहुँच जाते हैं इतनी जल्दी चलने से ईर्या पथ का पालन होना अशक्य है अत उनकी चर्या मुनिपद के योग्य नही है। उत्तर मे हमने उनसे कहा कि ईयापथ समिति का लक्षण तो बताइये क्या है ? वे नही बतासके तब हमने कहा कि ईर्यापथ का लक्षण अत्यन्त धीरे चलना नही है और न जल्दी चलना है। आगे के मार्ग को देखते हुए चलना है। जिस मार्ग मे मनुष्यो का हर समय आना जाना होरहा है। वह मार्ग चीटा चीटी आदि छोटे २ जन्तुओ से रहित होजाता है उस मार्ग मे कीडे मकोडो की रक्षा की दृष्टि रखते हुए मुनि जल्दी जल्दी भी चलते हैं।

जिस मार्गमे मनुष्यो का आना जाना नही होता है वहाँ चीटा चीटी चलते रहते है ऐसे मार्ग मे वे देख देखकर बहुत धीरे धीरे चलते है। शिखरजी पर जहा हजारो मनुष्य जा रहे है वहा का मार्ग स्वच्छ एव कीडो से रहित हे इसलिये आचार्य महाराज जल्दी चढ जाते है। इस बात से हम यह समझते है कि कोई कोई विद्वान् मुनियो मे दोष ही ढूढते है और चरणानुयोगी शास्त्रो के रहस्य अनभिज्ञ रहते है।

उद्दिष्ट आहार

मुनियो के आहार पर भी वे उद्दिष्ट दोप उन पर लगाते है। कुछ साक्षर लोगो का यह भी आक्षेप है कि वर्तमान मुनि उद्दिष्ट आहार करते है जो कि मुनि पद के विरुद्ध है। यह आरोप भी उनका सर्वथा मिथ्या है। उनकी शास्त्रो की अजानकारी सिद्ध होती है। मुनि गण अपने से सम्बन्ध रखने वाले दोषो का स्वय ध्यान रखते है और उनको नही लगने देने की पूरी सावधानी रखते हैं। शास्त्रानुसार उद्दिष्ट दोष मुनि से सम्बन्ध रखता है श्रावको से उस दोष का सम्बन्ध नही है।

अर्थात् मुनि उद्दिष्ट आहार नही लेगे। श्रावक तो मुनि के निमित्त से ही आहार बनाता है। श्रावक के अतिथि सविभाग व्रत है उसका अर्थ यह है कि वह अतिथि (मुनि) को आहार देने की भावना रखता है इसलिये मुनि के लिये शुद्ध आहार बनावेगा। मुनि के निमित्त आहार बनाकर उन्हे देने मे श्रावक को कोई दोष नही लगता है। परन्तु मुनि यदि श्रावक से यह कहे कि अमुक चीज तुम मेरे लिये तैयार करलो मैं तुम्हारे घर आहार के लिये आजाऊगा अथवा मुनि यह समझलेवें कि मेरे लिये अमुक चीज अमुक घर मे बनी है यह समझकर वे उसी घर मे आहार ग्रहण करे तो वे मुनि उद्दिष्ट आहार करने के दोषी सिद्ध होंगे। भले ही नगर मे एक ही मुनि आये हो तो भी श्रावक उनके लिये आहार बनावेगा परन्तु मुनि अपनी वृत्ति परिसख्यान प्रतिज्ञा के अनुसार उस घर मे या किसी दूसरे घर मे ले

सकते हैं। या कही भी योगाई नही मिलने पर बिना आहार किये लौट आवेंगे इसलिये मुनि के निमित्त बनाये आहार मे उद्दिष्ट दोष मुनिको नही लगता है। शास्त्रो की अजानकारी से और मुनियो के प्रति अनादरबृत्ति से उद्दिष्ट दोष का मिथ्या आक्षेप उनपर लगाया जाता है।

श्रावक का कर्तव्य है कि वह मुनियो के लिये प्रासुक-गर्म जल, तैयार करें, चदोवा लगावें कुए से अपने हाथ से जल लावें किन्ही मुनि को रुग्ण देखकर उचित शुद्ध औषधि तैयार करें। ये सब कार्य मुनि के निमित्त से ही श्रावक करता है। मुनि तो अपने लिये योगाई मिलनें पर किसी भी घर आहार ले सकते हैं। इसलिये मुनि को उद्दिष्ट दोष नही लगता है। यदि मुनि के लिये आहार बनाने मे उद्दिष्ट दोष लगता तो पद्मनदिपच विंशतिका आदि शास्त्रो मे मुनि के लिये औषधि आदि शुद्ध आहार तैयार करने के लिये आचार्य कथन नही करते भगवान कुंभकरण मोक्ष गये हैं वे गृहस्थ जीवन मे मुनियो को आहार देकर आहार करते थे यदि मुनि नगर मे नही आते थे तो वे वन मे जाकर आहार तैयार कराकर उन्हे आहार देते थे। वह आहार मुनियो के उद्देश्य से ही वनाया जाता था।

चतुर्थकाल मे मुनियो के लिए बनो मे वसतिकाऐं श्रावक बनवाते थे। उनमे मुनि ठहर जाते थे वे वसतिकाऐं केवल मुनियो के लिये ही बनबाई जाती थी, श्रावक का उनसे निजी कोई उपयोग नही था तो उनमे टहर जाने से मुनि को उद्दिष्ट दोष लगेगा क्या ? क्योंकि मुनि के निमित्त ही वे वनबाई जाती हैं। परन्तु मुनि को उद्दिष्ट दोष नही लगता है, मुनि ने कहकर अपने लिए नही बनबाई हैं श्रावक ने अपना कर्तव्य एय मुनि सेवा समझकर वनवाई हें।

मुनियो पर मिथ्या टीका टिप्पणी करने वाले साक्षर लोगो को "मुनि के निमित्त से आहार बना है" ऐसा कहकर उद्दिष्ट दोष मुनियों पर नही लगाना चाहिये शास्त्रो के अन्तस्तत्व (रहस्य) को समझना चाहिये। जहां किसी वस्तु की चाहना मुनि करेंगे किसी श्रावक से

सकेत करेगे और उसी श्रावक के यहा आहार करने जायेगे तो उन्हे उद्दिष्ट दोप अवश्य लगेगा। श्रावक तो मुनि के लिये आहार वनावेगा ही वह उसका धर्म कर्तव्य है।

पढ़े लिखे नहीं होने का आक्षेप

कोई २ विद्वान् मुनियो पर यह भी आक्षेप करते है वे पढे लिखे नही है। पहले उन्हे ऊची शिक्षा प्राप्त कर ही मुनि वनना चाहिये। यदि ऐसी वात मुनियो मे श्रद्धाभक्ति रखते हुए कही जाय तव तो उचित हो सकती है परन्तु वे तो उन्हे साधारण व्यक्ति समझकर मुनियो मे उपेक्षा करते कराते हैं यह दुर्भाव निद्य है। और मिथ्या आक्षेप है। वर्तमान मे जितने मुनि है उनमे वहु भाग उच्च कोटि के विद्वान् है। परमपूज्य आचार्य सुधर्म सागरजी (गृहस्थावस्था मे हमारे वडे सा०) ने आचार्य वीर सागरजी आचार्य कु थु सागरजी मुनिचद्र सागर जी आदि सवो को सस्कृत का अध्ययन कराया। सभी मुनिराज विद्वान् वने आचार्य कु थुसागरजी ने सस्कृत मे कई ग्रन्थ वनाये है। कई महान् शास्त्रो की उन्होने सस्कृत मे रचना की है। आचार्य देशभूषणजी आचार्य महावीर कीर्तिजी आचार्य विमल सागरजी आदि सभी उच्च कोटि के अनुभवी विद्वान् हैं। आचार्य विमल सागरजी मुनि पार्श्व सागरजी मुनि प्रवोध सागरजी, ये मोरेना महाविद्यालय के स्नातक हैं शास्त्री और न्याय तीर्थ है। छात्रावस्था मे वे विनम्रता से हमारे पैर छूते थे। आज हम उनके चरणो मे श्रद्धाभक्ति से अपना मस्तक रखते है और उनके अध्यापन से अपना सौभाग्य मानते हैं।

मुनिचद्र सागरजी ने अपने विद्वत्ता पूर्णधर्मोपदेश से सुजानगढ लाडनू नागोर आदि समस्त मारवाड और इन्दौर आदि श्रावको को आगम पथ का प्रदर्शन कर महान् कल्याण किया है। आचार्य ज्ञान सागरजी ने सस्कृत मे जयोदय आदि ग्रन्थो की रचना की है। आचार्य धर्म सागरजी आचार्य निर्मल सागरजी आचार्य विद्यासागरजो (आचार्य ज्ञान सागरजी सघस्थ) आचार्य कल्प मुनि श्रुत सागरजी मुनि समत

भद्र जी, मुनि विद्यानदि जी, मुनि अजित सागर जी, मुनि वृषभ सागरजी, मुनि सुबुद्धि सागरजी, मुनि आर्य नदिजी, सभी अनुभवी शास्त्र वेत्ता विद्वान हैं। प्रतिदिन धवल आदि सिद्धान्त शास्त्रो का स्वाध्याय करते हैं।

आर्यिकाएँ भी विदुषी हैं। श्रीमती ज्ञानमतीजी सुपार्श्वमतीजी जिनमतीजी वीरमतीजी सिद्धमती जी विजयमती जी न्यायतीर्थं आदि का शास्त्रीय वोध बहुत उच्चकोटि का है। अष्टसहस्री जैसे किलष्टग्रन्थ का अनुवाद और सस्कृत मे कई ग्रन्थो की रचनाऐ इन आर्यिका माताओ ने की है। विशुद्धमती माताजी ने गोम्मट सार की कठिन गणित सख्या की सेनानी तैयार कर डाली है।

इसलिये मुनियो को पहले पढकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ऐसा कहना पूरी अजानकारी अविवेक एव मुनियो के प्रति अश्रद्धा का सूचक है और अपने हित की वचना है। और भी अनेक मुनिराज हैं जिनका नाम हम नही जानते हैं।

आज नवीन बिचार धारा के दि० जैन नामधारी ज्ञान की चर्चा मे लगे हुए हैं अध्यात्म के नाम से उसका प्रचार करते हैं उनमे स्वय भी चारित्र नही है और सम्यक् चारित्रधारीयो को मानते भी नही है। और सिद्धात शास्त्रो का विरोध करते हैं ऐसे ज्ञान से क्या लाभ ! वे कुछ जानते भी नही है।

ज्ञान की कमी मे भी चरित्र विशुद्ध एवं बढ़ता है।

शास्त्रो के अनुभव से हम यह जानते हैं कि ज्ञान अधिक प्राप्त किया जाय वह उत्तम है उससे विवेक एव चारित्र मे सहायता मिलती है चारित्र के स्वरूप का विशेष वोध बढता है। साथ ही लोक और तत्वो का परिज्ञान होता है इसलिये आर्ष ग्रन्थो का स्वाध्याय करना आवश्यक है और अत्युपयोगी है अत ज्ञान प्राप्त करने का हम निषेध नही करते हैं आज सभी मुनिराज अहर्निश सामायिक के अतिरिक्त समय मे स्वाध्याय एव तत्व चर्चा मे ही समय लगाते हैं। केवल परीक्षा

पास करने से ही ज्ञान वृद्धि नही होती है। परन्तु जिन विद्वानो की मुनियो मे भक्ति नही है, उनमे उपेक्षा और निंदात्मक दृष्टि है उनका भ्रम दूर करने के लिये हम यह भी खुलासा कर देना चाहते हैं कि ऊपर जिन आचार्य और मुनियो का उल्लेख किया गया है वे सब अनुभवी विद्वान् है उनमे कुछ तो क्रमवद्ध अध्ययन करके सस्कृत एव सिद्धान्त ग्रन्थो की परीक्षाऐ देकर परीक्षोत्तीर्ण विद्वान है। और कुछ ऐसे भी है जिन्होने सस्कृत का अध्ययन नही किया है किन्तु शास्त्रो का स्वाध्याय कर तत्व वोध और अनुभव प्राप्त किया है और अपनी ससार विरक्त सद्‌बुद्धि से मुनि वन गये हैं या वन जाते हैं तो वे भी अपने मुनिपद मे पूर्ण सावधान और चारित्र को दृढता से पालते हैं। मन और इन्द्रियो को जीतकर ममत्व वुद्धि को त्यागकर अपनी चर्या मे कोई त्रुटि नही आने देते है। ऐसे मुनियो का ज्ञान भले ही मद रहे परतु उनका चारित्र विशुद्ध और वृद्धिगत होता है। शास्त्रो मे—सर्वार्थ सिद्धि आदि मे लिखा हुआ है कि अष्ट प्रवचन मात्रिका का भले प्रकार समझ लेना मुनिपद के लिये पर्याप्त है। पुलाक मुनि केवल पच समिति और तीन गुप्ति जो कि पच महाव्रतो की रक्षा और उनके परिपालन के लिये पूर्ण सहायक है, इन आठ प्रवचन मात्रिकाओ को समझ लेते है इतना ही पुलाक मुनियो को जघन्य ज्ञान होता है। ये मुनि भी भावलिंगि मुनि होते हैं ऐसा शास्त्रो मे विधान है।

मुनिपद के लिये मूल गुणो का पालन करना अनिवार्य है। जिस प्रकार आठ मूल गुण विना श्रावक नही है नाम का जैन है। उसी प्रकार अठाईस मूल गुणो के बिना मुनि नही है नाम मात्र का मुनि है अठाईस मूल गुण इस प्रकार है —

पाच महाव्रत, पांच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, समता, वदना जिनेन्द्र स्तवन, सामायिक प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, ये षडावश्यक, केशलोच, एक वार दिन मे आहार, खडे होकर आहार लेना, भूमिशयन, दतधावन नही करना, स्नान नही करना, नग्नता।

इन मूल गुणो का पालन करना ज्ञान की अधिकता से सबध नही रखता है। किन्तु चारित्र से सबध रखता है। आज ऐसे कई मुनि है जो उपदेश भी कम देते है किंतु अत्यन्त शान्त परिणामी है और अनेक उपवास करते हैं।

चौथे काल मे भी ऐसे मुनि होते थे जो अत्यन्त मद ज्ञानी थे। एक कथा शास्त्रो मे लिखी है कि एक मुनि इतने मद ज्ञानी थे जिन्हे एक सूत्र तक बार २ घोकने पर भी याद नही होता था। परतु परम तपस्वी थे। आत्म ध्यान मे लव लीन रहते थे एक दिन आहार को जाते समय उन्होने देखा कि एक स्त्री उडद की दाल धो रही थी, दाल का छिलका अलग हो रहा था और दाल की गिरी अलग हो रही थी उसे देखकर उन मुनिराज के मन मे यह गहरा प्रभाव पडा कि इसी दाल के समान आत्मा भिन्न है और शरीर और भाव कर्म द्रव्य कर्म भिन्न हैं। इस आत्मा के चितन से शीघ्र ही उन्हे केवल ज्ञान हो गया। चारित्र की परम विशुद्धि का ही यह फल है। जीवन भर अध्ययन करने से भी ऐसा सर्वोपरि लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान नही हो सकता है। श्रुत केवल भी नही हो सकता है अवधि ज्ञान मन पर्यण ज्ञान केवल चारित्र विशुद्धि से ही उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये ज्ञानवान ही मुनि होने चाहिये अन्यथा वे मुनि पद के उत्तम पात्र नही है जैसी जिनकी समझ है वे चारित्र के महत्वपूर्ण लक्ष्य के समझने से बहुत दूर है। ज्ञान तो तर्कणा और विचार की वस्तु है चारित्र ससार विरक्ति और आत्म साधन का विषय है। जिनकी भावना और चर्या सासारिक वासनाओ और ममत्व से हट जाती है वे मद ज्ञान होने पर भी मुनि बनकर कठिन तपश्चरण करने में तत्पर हो जाते हैं। इतना आवश्यक है कि जिनको अठाईस मूल गुणो का भी परिज्ञान नही है और विवेक बुद्धि नही है उन्हे पहिले कुछ ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इस युग के मुनि सृष्टिकर्त्ता चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य आचार्य शान्ति सागर महाराज ने सस्कृत का क्रमबद्ध अध्ययन नहीं किया था

परतु धवल आदि महान् गभीर शास्त्रो का स्वाध्याय मुनिपद प्राप्त करके किया था। वे अत्यन्त अनुभवी थे, शास्त्रो के मर्म को अच्छी तरह समझते थे। सस्कृत पाठी अनेक विद्वान् उनके प्रश्नो का उत्तर देने मे असमर्थ होकर उनसे ही समाधान लेते थे।

वाहन समस्या

वर्तमान मुनियो मे किसी २ सघ मे मोटर वाहन भी साथ रहता है। यह भी एक आलोचना का विषय बना हुआ है। इस वाहन को मुनियो का परिग्रह बताया जाता है। वास्तव मे यह उनका परिग्रह तो नही है किंतु ऐसा आडबर देखकर कुछ लोग मोटर वाहन को मुनियो का परिग्रह समझते हैं। ऐसा समझने का कारण भी यह है कि मुनि नग्न दिगम्बर निष्परिग्रह रहते है। पीछी कमडलु शास्त्र के सिवा वे और कुछ भी अपने साथ नही रखते है। पीछी जीव रक्षा के लिये उपकरण हैं। शास्त्र और कमडलु को भी उठावेंगे और धरेंगे तो पीछी से पहले झाडकर (सभव है कोई जीव रेग रहा हो) ही उठावेंगे। रात्रि मे लेटने पर करवट बदलेंगे तो भूमि या काष्टासन को पीछी से झाडकर ही करवट बदलेंगे। इसलिये पीछी परिग्रह मे ग्रहण नही की गई है। उनका उससे कोई शारीरिक आराम नही है। इसी प्रकार कमडलु मे प्रासुक जल रहता है उससे वे शरीर की शुद्धि करते हैं। वह शारीरिक शुद्धि का साधन है वह भी परिग्रह नही है शास्त्र स्वाध्याय—सम्यज्ञान वृद्धि के साधन हैं वे भी परिग्रह नही है। वृद्धावस्था अथवा अन्य किसी कारण से नेत्रो मे विकार हो जाने से कोई २ मुनि चस्मा भी पढते समय लगा लेते हैं तो उसे परिग्रह समझना भी भूल है। वह भी स्वाध्याय का साधन है। परतु मोटर वाहन तो परिग्रह दीखता है। इसलिये यह आलोचना का विषय कुछ लोगो के लिये बन जाता है।

इस विषय का थोडा सा खुलासा कर देना हम उपयोगी समझते हैं उसे सरल भाव और विवेक बुद्धि से समझ लेना चाहिये।

परिग्रह का लक्षण

परिग्रह का लक्षण "मूर्छा परिग्रह" है अर्थात् ममत्व बुद्धि रखना परिग्रह है। अथवा अपने आराम के लिये किसी वस्तु का उपयोग करना परिग्रह है। मुनि मोटर मे कभी बैठते नही हैं। पद विहार (पैदल चलना) ही उनकी चर्या है। वह मोटर उनके उपयोग मे नही आती है अत वह मोटर उनका परिग्रह नही कहा जासकता है। उससे उन्हे कोई ममत्व बुद्धि भी नही है यह मोटर का साधन तो मुनि भक्त श्रावको ने मुनि विहार के लिए किया है। जैसे हीन सहनन होने से पचम काल मे मुनि वन मे नही रह सकते हैं उनके लिये उद्यान, मन्दिर, मठ, धर्मशाला आदि नगर मे रहने का विधान पूर्वाचार्यों ने किया है। अन्यथा पचम काल मे मुनि धर्म ही समाप्त हो जायगा। इसी प्रकार यह मोटर भी श्रावको द्वारा मुनि विहार का एक निर्वाह साधन है। यह साधन भी कोई आवश्यक नही है। जहा आस पास गावो मे नगरो मे श्रावको के घर हैं वहा वाहनो की न तो आवश्यकता है और न उपयोगिता है। जहा निकट मे अधिक श्रावक रहते है वहा विहार करने वाले साधुओ के सग मे वाहन नही है। परन्तु जहा पर वहुत लम्वे ऐसे मार्ग हैं जहा श्रावको के घर नही हैं। जैसे श्री सम्मेद शिखर की यात्रा मे अनेक लम्बे स्थानो मे श्रावक नही रहते हैं वहा उस वाहन के साधन से मुनि विहार कर सकते है इसी के लिए श्रावको ने वाहन और आहार के लिए श्रावक श्राविकाओ को साथ में चलने का साधन जुटा दिया हैं। ऐसा होने से निराकूल रूप से वे विहार करते हैं।

जिस समय चारित्र चक्रवर्ती परमपूज्य आचार्य शान्ति सागर महाराज का सघ दक्षिण से शिखर जी की वन्दना को गया था तब वम्बई के प्रसिद्ध जौहरी सेठ पूनमचन्द घासीलाल जी और उनके सुपुत्रो ने कई मोटर और कारो द्वारा साथ में रहकर सैंकडो मीलो की

यात्रा आचार्य महाराज के सघ को कगई थी। उन साधनो के बिना उनका विहार सभव नही था। आज कल भी कई श्रावक मुनियो के माथ रहकर सघ चलाते है।

मूल सघ के नायक आचार्य कु दकु द स्वामी जब गिरनारि सिद्ध क्षेत्र की यात्रा को गये थे तब भी सैकडो श्रावक हाथी, घोडा, रथ आदि वाहनो को लेकर उनके साथ चलते थे। यह इतिहास कथा पुराणो आदि मे है। कविवर ने लिखा है—

सघ सहित श्री कु दकु द मुनि बदन हेतु गये गिरनारि
वाद परी जहा सशय मत सो साक्षी बदी अविका कार
सत्य पथ निग्रंथ दिगम्बर कही सुरी तह प्रगट पुकार
सो गुरुदेव बसौ उर मेरे विघन हरण मगल करतार

यह मुनि पु गव आचार्य कु दकु द स्वामी की गिरनारि यात्रा का वर्णन है श्रावको का यह वाहन न तो मुनि का परिग्रह है और न उसके रहने से मुनि पद या मुनि स्वरूप मे हानि है। पद विहार और मूल गुणो का पालन निराकुलता से होता है।

श्रावको की आलोचना करना चाहिये

मुनिराजो को वाहन का साथ रहना क्यो स्वीकार करना पडा इसका मूल कारण श्रावको मे धर्म कर्तव्य की भारी शिथिलता, परमार्थं साधना की कमी, और आजीविका के कार्यो मे ही निमग्न रहना आदि कारण हैं। यदि श्रावक गण अपनी लक्ष्मी के सदुपयोग और अपने जीवन को सफल बनाने की सद्भावना रक्खें तो मोटर वाहन मुनियो के लिये श्रावक क्यो रक्खे ? हम यह प्रत्यक्ष अनुभव करते है कि अनेक नगर ऐसे है जहा दो सौ घरो मे पचास साठ घरो मे मुनियो के लिए आहार तैयार होता है। सब घरो मे मुनि और अन्य त्यागी पहुँच भी नही पाते हैं। जहा मुनि और त्यागी नही जाते है वे श्रावक उनके लिए तरसते है अपने भाग्य की कमी समझते ह।

परन्तु ऐसे भी अनेक नगर और ग्राम है जहा दो चार मुनियो को भी आहार तैयार नही होता है। कुछ तो शूद्र जल के त्यागी नही होते हैं और कुछ मुनियो के लिए आहार बनाने के लिए तैयार नही होते है। ऐसे स्थानो मे सघ के साथ मे जो श्रावक श्राविकाऐ अपना सामान लेकर चलती हैं वे चौके लगाकर मुनियो को आहार दे देती है। नही तो मुनियो को आहार प्राप्त होना और विहार करना ही कठिन हो जाय।

यह तो आगम है कि श्रावको के बिना मुनियो का विहार नही हो सकता है। क्योकि बिना आहार ग्रहण किये वे कैसे विहार कर सकते है ? उनके लिये श्रावक सहायक है। और मुनि विहार नही करे तो श्रावक का कल्याण कैसे हो ? श्रावक का जीवन मुनियो के धर्मोपदेश और उनके द्वारा व्रत सयम ग्रहण करने से सफल एव उज्वल बनता है। मुनियो के निकट मे परिणामो मे अधिक विशुद्धि और ध्यान की सिद्धि हो सकती है। परन्तु जव नगरो मे ही श्रावक आहार बनाने मे सर्वत्र तैयार नही हैं तो जहा तीर्थ यात्रा के लिए मुनि जगलो मे होते हुए विहार करते हैं वहा जगलो मे आहार देने के लिए जाना तो नितान्त अशक्य है। यह कमी श्रावको की है। ऐसी परिस्थिति देखते हुए और जानते हुए भी जो विद्वान मुनियो की तो आलोचना करते है किन्तु श्रावको की नही करते है। यदि श्रावको की आलोचना की जाय तो श्रावको का कल्याण हो और मुनियो के साथ श्रावक रहे वाहन का साधन भी नही रक्खे। हमने यहा तक प्रत्यक्ष देखा है कि एक नगर से दूसरा नगर २० मील है उस नगर तक जाने मे एक दिन मध्य मे चौका लगाने को भी श्रावक तैयार नही होते हैं ऐसी दशा मे मुनियो का विहार साथ मे रहने वाले श्रावक अपने चौका लगाकर कराते है। यदि इतना साधन नही हो तो मुनिचर्या और मुनि का परमोज्वल आदर्श ही समाप्त हो जाय।

मुनि मुद्रा मोक्ष मोक्ष मार्ग का प्रतीक है

वर्तमान का देश काल कैसा बन गया है यह सोचने और समझने की बात है। जहा अनेक श्रावक अपनी जघन्यचर्या-पाक्षिका चार भी नही पालते है। रात्रि भोजी बन रहे हैं। देव दर्शन भी छोड रहे हैं। जल छान कर भी नही पीते हैं। अभक्ष्य भक्षण भी अनेक श्रावक करते हैं। धर्म की ऐसी हीन दशा मे भी साथ ही देश काल एव राज्य की विरुद्धता एव हीन सहननन आदि प्रतिकूल परिस्थिति मे भी जहा सर्दी गर्मी का तीव्र प्रकोप सहन होना कठिन है मुनिगण अपनी चर्या मे पूर्ण सावधान रहते है। सब प्रकार की बाधाओ को अनेक परीषहो को,उपसर्गो को और तिरस्कार आदि को समता से सहन करते है। अपने मुख से अपने कष्टो की कोई बात कभी नही कहते है। कठिन तपश्चरण करते हैं। आगमोक्तमार्ग पर चलते हैं सिद्धातज्ञ है, स्वात्म साधन मे लगे हुए हैं और श्रावको तथा प्राणी मात्र का हित मार्ग बताकर कल्याण करते हैं। ये मुनिगण सदा वदनीय मोक्ष मार्ग के प्रतीक हैं।

पद के अनुकूल प्रवृत्ति होना चाहिये

मुनिपद सर्वोच्च पद है। उसी के अनुकूल प्रवृत्ति होना चाहिये। उसमे शैथिल्य होना दोषास्पद है। किन्ही एकाध मुनि मे यदि कोई त्रुटि है अतरग या वहिरग तो उन्हे उस त्रुटि को दूर कर देना चाहिये। उन्होने परिवार सम्पत्ति आदि का त्यागकर लोकवद्य यह परमादर्श पद धारण किया है। उस पद मे भी यदि कोई वाछा ममत्व, या शारीरिक सुख की अभिलाषा है तो वह सव उस पद के विरुद्ध है। स्वात्म हित के स्थान मे अपना अहित है इसका पूरा विचार उनको करना चाहिये विवेकशील मुनिभक्त श्रावको का भी कर्तव्य है कि वे किन्ही शिथिलाचारी मुनि को स्वय उनको समझावें, किसी आचार्य सघ मे उन्हे ले जाने की प्रेरणा करे। ऐसा करने से श्रावको का भी

हित है और उन शिथिलाचारी मुनि का भी हित है। परन्तु शिथिला-चारी मुनि के बहाने से सभी परम पूज्य मुनियो की निंदा या तिरस्कार की बात कहना तो अपने लिये कर्मों का वध करना है। क्योकि हम लोग (गृहस्थ) मुनिराजो के प्रति उनकी त्रुटि के सबन्ध मे उनसे एकात मे विनय पूर्वक प्रार्थना करने के ही पात्र हैं। उनको शिक्षा देने, और उन्हे मुनि मार्ग मे दृढ करने तथा उनकी त्रुटियो को दूर करने का अधिकार तो आचार्यो एव पूर्व दीक्षित साधुओ को ही है। विशेषकर उनके दीक्षा गुरु को उन शिथिल मुनि के सुधार और उनको दृढ करने का पूर्ण अधिकार है।

वर्तमान मे एक मुनि क्षार समुद्र के समान ऐसे है जिन्होने पूर्वाचार्यों के रचे हुए शास्त्रो को बदल दिया है उन शास्त्रो के सूत्रो को बदलकर उनके स्थान मे दूसरे सूत्र बनाडाले हैं। शास्त्रो के सिद्धान्त और आशय को भी बदल डाला है। उन्ही प्राचीन शास्त्रो के नाम वे ही रखकर उनके कर्ता स्वय बन गये है। यह जिनवाणी का घोर अविनय ही केवल नही है किंतु उन्होने तीव्र मिथ्यात्व कर्म के उदय से दुर्गतिका वध कर लिया है ऐसा व्यक्ति न तो मुनि है। और न वदनीय है। किंतु तीव्र मिथ्यादृष्टि हैं।

हम मुनियो मे पूर्ण श्रद्धाभक्ति रखते हुए भी उनके पद की चर्या आगमोक्त ही देखना चाहते हैं मुनियो मे शिथिलता रहना हमे थोडी भी पसद नही हैं क्योकि वह मोक्ष मार्ग का सर्वोच्च आदर्श पद है हमने जो ऊपर वाहन आदि के विषय मे लिखा है उसका हम समर्थन इसलिये करते हैं कि वह वाहन श्रावको के कर्तव्य का कार्य है परन्तु उसे हम केवल निर्वाह का साधन समझते हैं। आगम विहित वह सिद्धान्त नही हैं किंतु परिस्थितिवश उसे वर्तमान समय मे एक अपवाद मार्ग ही समझते हैं। और ऐसा अपवाद मार्ग भी श्रावको की शिथिलता और उनके महान् हितकारक मुनिदान देने के कर्तव्य की कमी का ही परिणाम है।

मन्त्र विधान और मन्त्र दान

दिगम्बर जैनाचार्यो ने मन्त्र शास्त्र भी रचे हैं। विद्यानुवाद अग शास्त्र मे तो मन्त्रो का मुख्य रूप से विधान है हमारे घरू शास्त्र भडार मे हस्त लिखित बहुत बडा गुटका है जिसमे लगभग ४०० पृष्ठ है। उस गुटका मे अक्षर अत्यन्त सुन्दर लिखे गये हैं। और अनेको कोष्टको मे यन्त्र खिचे हुए है जो लाल स्याही से लिखे गये है। यह गुटका महान् विद्वान् परमपूज्य श्री १०८ आचार्य सुधर्म सागरजी महाराज (गृहस्थ जीवन के हमारे सहोदर बडे भ्राता) ने लिखाकर तैयार कराया था। इस गुटके मे मत्र यत्रो के अतिरिक्त पद्मावती आदि शासन देवी देवताओ को सम्यग्दृष्टि बताया गया है। ये मन्त्र वीतरागी महर्षियो ने बनाये हैं। प्रमाण के लिये इतना लिखना महत्व पूर्ण एव सर्वोपरि होगा कि अगागज्ञाता आचार्य धरषेण ने धवला जय धवला महा धवला षट्खडागम सिद्धान्त शास्त्रो का अध्ययन कराने के लिये आचार्य भूतवलि आचार्य पुष्पदन्त को दूसरे आचार्य सघ से बुलाकर उनकी कुशाग्र बुद्धिमत्ता और सिद्धान्त ज्ञाता की परीक्षा करने के लिये दौनो को भिन्न२ मन्त्र सिद्ध करने के लिए दिये थे। उन मन्त्रो को जपन करते हुए उन्हे ऐसे देवता दीखे जो विकृत आकृति वाले थे। तब दोनो आचार्यो ने मन्त्रो को शुद्ध किया फिर जपन किया उसका फल यह हुआ कि सुन्दर आकृति वाले देवता आगये तब उन्होने समझ लिया कि अब मत्र सिद्ध होगया यह परीक्षा देखकर आचार्य धरषेण ने उन दोनो शिष्य आचार्यो को पूर्ण पात्र समझकर सिद्धान्त शास्त्रो का अध्ययन मौखिक कराया। अध्ययन करने के वाद उन्ही आचार्य भूतवलि आचार्य पुष्पदन्त ने सिद्धान्त शास्त्रो की रचना की। रचना पूरी करने के वाद श्रुत पचमी को उन शास्त्रो की पूजा की गई तभी से–

उस तिथि का नाम श्रुत पचमी प्रसिद्ध हुआ है।

सबसे महान् बडा मत्र णमोकार मत्र है। यह अनादि निधन

मत्र है इस मत्र मे सर्व सिद्धि भरी हुई हैं। केवल इस मत्र मे पच परमेष्ठी को नमस्कार मात्र ही नही हैं किन्तु यह बीजाक्षर मत्र है। इसके जपन से निर्विघ्न सर्व सिद्धिया होती हैं। इसीलिए प्रायश्चित एव प्रतिक्रमण आदि मे मुनिगण णमोकार मत्र का जपन करते हैं। दूसरो को भी इसी का जपन कराते हैं। और भी अनेक प्रकार के मत्र अनेक वाधाओ को दूर करने मे समर्थ हैं।

जव मिथ्या दृष्टियो के मिथ्या मत्रो से सर्प विष, विच्छू विष, आधाशीशी आदि अनेक रोग दूर हो जाते है यह प्रत्यक्ष है। तव दिगम्वर जैन आचार्यो के पवित्र मत्रो से सर्व व्याधिया दूर हो जाय इसमे सन्देह करना श्रद्धा की कमी है।

इसी प्रकार ऋषि मण्डल पूजा ऋषि मण्डल स्तोत्र आदि समत्र ग्रन्थो का पठन पाठन आदि का प्रचलन विघ्न वाधाओ को दूर करता है। इसमे मूल हेतु अपने सकट को दूर करना है उसका भी मूल हेतु जिनेन्द्र भगवान की दृढ श्रद्धा और दृढ भक्ति है।

मन्त्र दान पर मुनियो की आलोचना

आज कल कुछ साक्षर लोग परमपूज्य मुनिराजो की यह भी आलोचना करते हैं कि वे श्रावको को मत्र वताते हैं। ऐसी आलोचना मुनियो मे भक्ति नही करने वाले ही करते हैं विचारने की वात यह है कि मुनि श्रावको को मत्र यदि वताते हैं तो इसमे मुनियो का क्या प्रयोजन है? मुनि अत्यन्त दयाशील हैं और सम्पत्ति एव परिवार को छोड कर नग्न रहकर स्व-पर हित मे लगे हुए हैं उनका कोई सासारिक एव आर्थिक लोभ तो नही है। किसी पर यदि कोई सकट है या कोई शारीरिक व्याधि है उसे दूर करने की भावना लेकर वह वडी श्रद्धा भक्ति रखकर अपना सकट या व्याधि मुनियो के शुभ आशीर्वाद से दूर करना चाहता है तो परम दयालु मुनि उसे आशीर्वाद के साथ मत्र जपन आदि द्वारा उसे जिनेन्द्र भक्ति के साथ ऐसा उपाय वताते हैं जिससे सकट या व्याधि दूर हो जाय तो इसमे मुनि पद मे

या उनकी चर्या मे कौनसा दोष आता है ? जिस श्रावक को सकट या व्याधि है वह व्याकुल और चिताशील बन जाता है। परिणामो मे सक्लेश होने से अशुभ कर्म बध करता है दु खी रहता है इसलिये उसका चित्त धर्म साधन मे भी नही लगता है ऐसी अवस्था मे दयालु मुनिराज मत्रादि द्वारा उसका सक्लेश दूर करते हैं तो वह उनका दया कार्य है और श्रावक के धर्म साधन मे सहायक है। सक्लेश मय खोटे भावो को दूर करने मे सहायक है। मुनि मिथ्या मत्र तो नही बताते है और न धर्म विहीन एव जिनेन्द्र भक्ति और मुनि भक्ति रहित नास्तिक व्यक्ति को बताते है। किन्तु जिनेन्द्र भक्ति और मुनियो मे श्रद्धा रखने वालो को ही बताते है। और ऐसे धार्मिक श्रद्धा वाले ही श्रावक उनसे उपाय पूछते हैं।

शास्त्र भी ऐसा बताते हैं

पहले काल मे अपना दु ख दूर करने के लिये श्रावक मुनिराजो के पास जाते थे उनसे पूछते थे कि महाराज मेरे पुत्र होगा या नही अथवा अमुक विघ्न दूर कैसे होगा तो मुनिराज सरल एव शुद्ध निरपेक्ष भाव रखते हुए बता देते थे कि तुम्हारे पुत्र अवश्य होगा। और वैसा ही होता था। दुर्गंधा को पूर्वभव बताकर उसे व्रत पालने आदि की विधि मुनियो ने बताई। पुत्रादि की उत्पत्ति बताना यह कोई मोक्ष मार्ग नही है सासारिक है फिर भी आकुलता एव चिन्ता को दूर करने के लिये मुनिराज सरल एव शुद्ध भावो से बताते थे। ऐसे उदाहरण प्रथमानुयोग शास्त्रो मे सैकडो लिखे हैं। शाति पाठ मे प्रतिदिन बोला जाता है कि "दुक्ख खओ कम्म खओ" अर्थात् मेरे दुखो का भी क्षय हो और कर्मों का भी क्षय हो। यह भी बोला जाता है कि —

क्षेम सर्व प्रजाना प्रभवतु बलवान धार्मिको भूमिपाल
काले-काले च सम्यक् वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु
नाश दुर्भिक्ष चौर मारी क्षणमपि जगता मास्मभूज्जीवलोके
जैनेन्द्र धर्म चक्र प्रभवतु सतत सर्व सौख्य प्रदायी

इस श्लोक मे यह भावना प्रगट की गई है कि—सर्व प्रजाजनो का क्षेम कुशल बना रहे, राजा धार्मिक हो, समय-समय पर अच्छी वरसा होती रहे, हर प्रकार की व्याधियो का नाश हो, दुर्भिक्ष (अकाल) चोरी, डकैती आदि नही हो और जिनेन्द्र देव का धर्मचक्र (जिनशासन) सवो को सुख देने वाला वना रहे। इस प्रकार की भावना आचार्यों ने प्रगट की है व्याधि अकाल चोरी आदि का नाश सवो की कुशलता आदि बातें लोगो की निराकुलता के लिये ही तो है। इसी प्रकार अभिषेक के समय शान्ति धारा मे जो शान्ति मन्त्र वोला जाता है उसमे भी कहा जाता है —

सर्व शत्रु छिद-छिद भिद-भिद, सर्व विघ्न छिद २ भिद २ क्षय रोग छिद२ भिद कुष्ट रोग छिद२ भिद२ शूलरोग छिद२ भिद२ इत्यादि मत्र सासारिक एव शारीरिक व्याधियो से होने वाली अशाति,आकुलता, चिता एव दु ख दूर करने की प्रार्थना भगवान के चरणो मे की जाती है इसका प्रयोजन इतना ही है कि गृहस्थ जीवन को निराकुल रखते हुए धर्म साधन दत्तचित्त होकर करते रहे इसी सम्दावना और दयामय सरल शुद्ध भावो से मुनिजन यदि कभी किसी धर्मात्मा पुरुष को कोई मत्र और उसके साथ व्रत, उपवास आदि वता देते हैं तो यह जीवो पर उनका उपकारी भाव है। उनका इसमे कोई निजी प्रयोजन नही है। फिर सातवें गुण स्थान मे अप्रमत्त भाव होने से वहा केवल ध्यानस्थ भाव रहता हैं। छठे गुण स्थान मे तो सज्वलन कषाय का तीव्रोदय है परतु वह प्रशस्त-शुभ है। इसलिये वे धर्मबुद्धि एव धर्म साधना की दृष्टि से ही ऐसा करते हैं। इसलिये मुनियो पर मिथ्या आक्षेप करना निंद्य है। ऐसा आक्षेप वे ही करते है जो मुनि विरोधी है।

श्री महावीर जी की इष्टार्थ वंदना क्या मिथ्यात्व है ?

आजकल प्राय सभी प्रान्तो के लोग श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र पर भगवान महावीर स्वामी के दर्शन, वदना और पूजा के लिये

प्रतिवर्ष जाते है। कोई २ प्रति माह भी जाते है। अनेक निरपेक्ष रूप से बिना किसी इष्ट प्रयोजन की चाहना के भगवान महावीर जी की अत्यन्त अतिशयवती दिव्य मनोज्ञ चित्ताकर्षक ऐतिहासिक मूर्ति के दर्शन पूजन करते हैं बहु भाग लोग अपनी इष्ट सिद्धि (मनोकामना) के लिए उनके दर्शन पूजन करते है। एक बार एक एम० ए० शास्त्री विद्वान ने श्री महावीर जी क्षेत्र पर हम से पूछा कि पंडित जी यह महावीर भगवान का दर्शन पूजन मिथ्यात्व क्यो नही माना जाय। क्योकि अपनी मनोकामना लेकर दि० जैनी इस क्षेत्र पर आते हैं। आपका इस विषय मे क्या अभिमत है ? मैंने उनसे कहा कि भले ही वे श्रावक अपनी इष्ट सिद्धि के प्रयोजन से इस क्षेत्र पर आते हैं परन्तु वे भगवान महावीर स्वामी की पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण भक्ति से ही पूजा करते है। किसी मिथ्यादेव की श्रद्धा भक्ति तो नही करते है ? फिर मिथ्यात्व क्यो ? गृहस्थ जीवन मे सर्वथा परमार्थ साधन तो नही हो सकता है व्यावहारिक इष्ट सिद्धि की भी चाहना रहती है। इसीलिये अपना मनोरथ भी वे भगवान की भक्ति से ही चाहते है। सभी श्रावक जब अपने कार्य के लिए देशान्तर जाते हैं तो कार्य सिद्धि मे विघ्न बाधाये नही आवें इस कामना से जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करके जाते हैं और णमोकार मन्त्र का स्मरण और जपन करके जाते हैं यह शुभ राग है इसे मिथ्यात्व समझना भूल है। मुनि महाराज भी हित के लिए धर्म साधन का लक्ष्य रखकर मत्र बताने के साथ कई प्रकार का त्याग कराते है। आत्म शुद्धि के लिए प्रतिज्ञायें भी दिलाते हैं। इसलिये मुनिराजो का यह कार्य हितकारक ही है।

जैन दर्शनाचार्य श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का वर्तमान मुनिचर्या निरूपक
सातवां अध्याय समाप्त

अथ आ वं अध्य

सर्वज्ञ का ज्ञेय विषय और और सिद्धों में चारित्र का सद्भाव

सर्वज्ञ त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायो को युगपत् प्रत्यक्ष जानते है

जगत के समस्त पदार्थों को जानने वाला और देखने वाला कोई सर्वज्ञ हो सकता है या नही ? इस शका के आधार पर सर्वज्ञ सिद्धि करने की आवश्यकता हमे नही है क्योकि यह ग्रन्थ दिगम्बर जैनियो के लिए है। सभी जैन सर्वज्ञ मानते हैं। हमे तो यह बताना है कि सर्वज्ञ का विषय कितना है ? कोई विद्वान सर्वज्ञ का विषय समस्त पदार्थों की केवल वर्तमान पर्यायो का प्रत्यक्ष जानना मानते है पदार्थों की भूत और भविष्यत् पर्यायो को शक्ति रूप से जानना मानते है उन पर्यायो का प्रत्यक्ष जानना सर्वज्ञ का विषय वे नही मानते हैं। उनका कहना यह है कि भूत पर्याय तो नष्ट हो चुकी है और भविष्यत पर्याय अभी उत्पन्न नही हुई है ऐसी अवस्था मे जो पर्यायें अभी प्रगट नही हुई हैं उन्हे सर्वज्ञ कैसे जान सकते है। इसलिये उन्हे वे शक्ति रूप से जानते हैं अर्थात अमुक पदार्थ मे अमुक शक्तिया हैं। किन्तु वर्तमान प्रगट पर्यायो का वे प्रत्यक्ष करते हैं इस प्रकार सर्वज्ञ का ज्ञेय (जानने

योग्य) विषय त्रिकाले मानना शास्त्र सम्मत नही है इसी का हम खुलासा कर देना आवश्यक समझते हैं।

सर्वज्ञ और उसके ज्ञेय का आगम

पहली बात तो यह है कि सर्वज्ञ का अर्थ क्या है अर्थात सर्वज्ञ किसको कहते है ? इसके समाधान मे यही कहा जायगा कि जो सब को जानता है वही सर्वज्ञ होता है। जिसके ज्ञान मे सभी द्रव्य सभी गुण और सभी पर्यायें (त्रिकालवर्ती) झलक रहे है वही सर्वज्ञ हैं जिसके ज्ञान मे केवल वर्तमान पर्यायें ही प्रत्यक्ष होती हैं भूत भविष्यत पर्यायें प्रत्यक्ष नही झलकती हैं। तो वह सर्वज्ञ नही किंतु अल्पज्ञ ठहरेगा। इसीलिये यह मानना ही सिद्धान्त सम्मत है कि सर्वज्ञ भगवान अनन्त पदार्थ उनके अनन्त अनन्तगुण तथा उन समस्त पदार्थो और गुणो की अनन्त त्रिकालवर्ती पर्यायो का युगपत् प्रत्यक्ष करते हैं।

यह विषय आगम प्रमाण पर ही निर्भर है

सर्वज्ञ का विपय समस्त द्रव्य गुण पर्यायो का प्रत्यक्ष जानना है या केवल वर्तमान पर्यायो का ही जानना मात्र है ऐसा समझने और कहने का अधिकार सर्वज्ञ के सिवा किसी भी अल्पज्ञ को नही है। साधारण ज्ञान वाले मतिज्ञानी और श्रुत ज्ञानी की तो वात क्या किंतु अवधि मन पर्यय ज्ञानी भी सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान के विषय मे कुछ भी कहने के अधिकारी नही है। उनका प्रत्यक्ष ज्ञान भी सीमित है। अत सर्वज्ञ ज्ञान उनके भी अगम्य है। इस सम्बन्ध मे स्व० विशिष्ट विद्वान् श्री प० भागचदजी ने अपने भजन मे कहा है—

"पार गणधर से नहि पावे कहा लग भागचद गावें"

अर्थात् हे भगवन् आपके केवल ज्ञानादि गुणो का पार चार ज्ञानधारी गणधर देव भी नही पासकते हैं तव भागचद जैसे व्यक्ति आपके गुणो का क्या वर्णन कर सकते हैं। अत्यन्त परोक्ष विपयो मे हम जैसे व्यक्ति अथवा कोई भी विद्वान् यह कहने का अधिकारी नही

है कि सर्वज्ञ भगवान का ज्ञान भूत भविष्यत् पर्यायो को नही जानता है।

मनः पर्ययज्ञानियो का प्रत्यक्ष

मन पर्ययज्ञानी भूत भविष्यत् पर्यायो को कहाँ तक जानते है। इसको समझने से सर्वज्ञ के प्रत्यक्ष का परिज्ञान अच्छी तरह से हो जाता है।

दुगतिगभवाहुअवर सत्तभवा भवति उक्कस्स
अडणवभवाहु अवर असेक्खेञ्जे विउल उक्कस्स
(गोम्मटसार गाथा ४६७)

ऋजुमति मन पर्ययज्ञानी का काल की अपेक्षा से जघन्य रूप मे दो तीन भवो का अतीत और अनागत काल है। और उसका उत्कृष्ट काल आठ नौ भवो तक है। अर्थात् ऋजुमति मन पर्ययज्ञानी अतीत और अनागत (भूत और भविष्य) काल के भवो का प्रत्यक्ष करता है यह जघन्य काल है। वही ज्ञानी उत्कृष्ट रूप मे सात आठ भवो का प्रत्यक्ष करता है।

विपुल मति मन पर्ययज्ञानी जघन्य रूप से आठ नौ भवो का प्रत्यक्ष करता है। और उत्कृष्ट रूप मे वह पल्य के असख्यात भाग प्रमाण भवो तक प्रत्यक्ष करता है। राजवार्तिक मे भी यही बात लिखी है—

काल तो जघन्येन जीवानामात्मनश्च द्वित्रीणि उत्कृष्टेन सप्ताष्टानि। विपुलमति कालतोजघन्येन सप्ताष्टानि भवग्रहणानि उत्कर्षेण असख्येयानि (राजवार्तिक) अर्थ ऊपर कहा जा चुका है।

इस कथन से यह खुलासा होजाता है कि भूत पर्यायो के नष्ट हो जाने पर भी तथा भविष्यत् पर्यायो के उत्पन्न नही होने पर भी उन पर्यायो का प्रत्यक्ष मन पर्यय ज्ञानी करता है तब केवल ज्ञानी सर्वज्ञ भगवान भूत भविष्यत् काल की पर्यायो का प्रत्यक्ष नही करते है केवल उन्हे शक्ति रूप से जानते हैं यह कहना बाधित हो जाता है।

मन मे चिंतित अचिंतित अर्धचिंतित् पल्य के असख्यातवे भाग समय तक की (असख्यात वर्षों की) मन की बात का प्रत्यक्ष जब विपुलमति मन' पर्ययज्ञानी करता है तब निरावरण केवल ज्ञानी अनत द्रव्य गुण पर्यायो का प्रत्यक्ष करते हैं यह आगम प्रमाण से भली भाति सिद्ध होता है।

पर्यायो का प्रत्यक्ष बोधक प्रमाण

कतिपय शास्त्रो के ऐसे प्रमाण हम उद्धत करते हैं जिन से सर्वज्ञ के ज्ञान का अपरिमित माहात्म्य सिद्ध होता है।

सर्व द्रव्य पर्यायेषु केवलस्य

इस महाशास्त्र तत्वार्थ सूत्र की आचार्य पूज्य पाद कृत सर्वार्थ सिद्धि मे लिखा है—

द्रव्याणि च पर्यायाश्च द्रव्य पर्याया इति इतरेतर योग -लक्षणे द्वन्द्व तद्विशेषणं सर्व ग्रहण प्रत्येकमभि सबध्यते सर्वेषु पर्यायेषु इति।

(सर्वार्थ सिद्धि पृष्ठ ७५)

अर्थ–द्रव्य और पर्याय यह द्वद्व समास है। इस सूत्र मे सर्व पद विशेषण है। उसका अर्थ यह है कि वह सर्व पद समस्त द्रव्य और समस्त पर्यायें दोनो के साथ सम्बन्ध रखता है। अर्थात केवल ज्ञान समस्त द्रव्य और समस्त पर्यायो को प्रत्यक्ष करता है। आगे और भी स्पष्ट लिखा है—

"तेषां (षट्द्रव्याणा) पर्यायाश्च त्रिकालभुव प्रत्येक अनन्तानता स्तेषु द्रव्य पर्यायजात वा न किंचित्केवलज्ञानस्य विषय भाव मतिक्रान्त मस्ति। अपरिमित महात्म्य हि तत् इति ज्ञापनार्थं सर्व द्रव्य पर्यायेषु इत्युच्यते,, (सर्वार्थ सिद्धि)

अर्थ–समस्त छहो द्रव्य और उनकी तीनो कालो मे–भूत भविष्यत् वर्तमान कालो मे होने वाली समस्त अनतानत पर्याये केवलज्ञान मे प्रत्यक्ष झलकती है। ऐसा कोई द्रव्य या गुण तथा पर्याय नही है जो

केवल ज्ञान मे प्रत्यक्ष नही होती है। केवल ज्ञान का अपरिमित माहात्म्य हैं। इसीलिये सर्व द्रव्य और सर्व पर्याय केवल ज्ञान का प्रत्यक्ष विषय है। और भी प्रमाण—

सर्वग्रहण निरवशेष प्रतिपत्यर्थम् ये लोकालोक भेदभिन्ना. त्रिकाल विषया द्रव्य पर्याया अनता तेषु निरवशेषेषु केवल ज्ञान विषय निवन्ध इति प्रतिपत्यर्थं सर्व ग्रहण। यावालोकालोक स्वभावो नन्त तावन्तो अनन्तानता यद्यपि स्यु तानपि ज्ञातुमस्य सामर्थ्यमस्ति इत्यपरिमितमाहात्म्य केवलज्ञान वेदितव्यम्।

(राजवार्तिक पृ० ६२)

अर्थ–सर्व ग्रहण सम्पूर्ण विषय की प्रत्यक्षता के लिये दिया गया है। जितना भी लोक है और अनतानत अलोक है यदि ऐसे लोक और अलोक अनतानत भी होते तो केवल उन सवो का भी प्रत्यक्ष करता इतनी सामर्थ्य उसमे है इसलिये केवलज्ञान का माहात्म्य अपरिमित है। और भी प्रमाण

"अतीतानागत वर्तमानानन्त पर्यायात्मकवस्तुन सकलज्ञानावरणक्षय विजृंभित केवलज्ञानपरिच्छेद्यत्वात्,,

(श्लोक वार्तिक पृ० २५०)

अर्थ–समस्तज्ञानावरण कर्म का पूर्ण क्षय होने से भूत भविष्यत् वर्तमान जितनी भी अनत पर्यात्मक वस्तु हैं वह सव केवलज्ञान से प्रत्यक्ष होती है।

"केवल सकलज्ञेय व्यापि स्पष्ट प्रसाधित प्रत्यक्षमक्रम तस्य निवधो विषयेष्विह,, (श्लोक वार्तिक २५१)

अर्थ–केवल ज्ञान का सभी ज्ञेय (जानने योग्य) विषय है केवल ज्ञान व्यापक रूप से सभी ज्ञेय पदार्थों को युगवत् प्रत्यक्ष जानता है और भी-

तत समन्ततश्चक्षुरिन्द्रियाद्यनपेक्षिण
नि शेपद्रव्यपर्याय विषय केवल स्थितम्

(श्लोक वार्तिक पृ० ३५३)

अर्थ– केवल ज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान है वह समस्त द्रव्य और उसकी समस्त पर्यायो को प्रत्यक्ष जानता है।

और भी प्रमाण

तज्जयति पर ज्योति सम समस्तै रनन्त पर्यायै.
दर्पणतल इव सकला प्रति फलति पदार्थ मालिका यत्र

(पुरुषार्थ सिद्धपाय)

अर्थ–आचार्य अमृचद्रतसूरि मगलाचरण मे कहते है कि वह केवल ज्ञान का महान् प्रकाश जयवत हो जिस केवल ज्ञान के प्रकाश मे समस्त अनन्त पर्यायो के साथ समस्त पदार्थ समूह दर्पण के समान झलकता है
पश्यन् समस्त भुवन युगपन्नितात त्रैकाल्य वस्तु विषये निविड प्रदीपम्

(आचार्य पद्मनदि)

अर्थात् सर्वज्ञ भगवान समस्त लोक को एक साथ देखते हैं, तीन काल मे पदार्थो को, ऐसे शास्त्रो मे अनेक प्रमाण हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान मे सभी द्रव्य सभी गुण और सभी भूत भविष्यत् पर्यायें प्रत्यक्ष झलकती हैं। यदि सभी पर्यायें प्रत्यक्ष नही झलकें तो सर्वज्ञ भगवान अल्पज्ञ ठहरते है इसलिए यह कहना सर्वथा आगम विरुद्ध है कि सर्वज्ञ के ज्ञान मे वर्तमान पर्यायें ही प्रत्यक्ष होती हैं। भूत भविष्यत् पर्यायो को सर्वज्ञ शक्ति रूप से जानते हैं वे पर्याये उनके ज्ञान मे प्रत्यक्ष नही होती हैं। ऊपर दिये गये प्रमाणो से शक्ति रूप से जानने की बात सर्वथा मिथ्या है।

हरण

इस युग के आदि तीर्थंकर भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) ने सर्वज्ञ हो जाने पर समवसरण मे अपनी दिव्य ध्वनि मे यह कहा था कि यह मारीचिकुमार (भरत चक्रवर्ती का पुत्र) जो अभी पाखण्डी है और मिथ्या दृष्टि है पाखण्ड मत का प्रचार कर रहा है। इस युग का अन्तिम तीर्थंकर महावीर होगा। भगवान ऋषभदेव तीर्थंकर सर्वज्ञ

वाणी का यह परिणाम है आज महावीर स्वामी सर्वज्ञ तीर्थंकर की मूर्ति का हम प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं और उनके दर्शन से अनत सचित पापो का क्षय कर रहे हैं। भगवान ऋषभदेव को मोक्ष गये असख्याते वर्ष बीत गये हैं। उन्होने असख्याते वर्ष पहिले ही मारीचिकुमार की अन्तिम पुरुष पर्याय का तीर्थंकर रूप प्रत्यक्ष कर लिया था, इसलिये यह भली भाति स्पष्ट सिद्ध है कि सर्वज्ञ भगवान भूतभावी पर्यायो को शक्ति रूप से नही किंतु साक्षात् प्रत्यक्ष रूप मे जानते देखते हैं।

और भी उदाहरण

चारण रिद्धि धारी मुनीश्वरो ने सिंह पर्याय मे विचरते हुए जीव को उपदेश दिया था कि तू जीव बध मत कर तू भव्य है। तू इस युग का तीर्थंकर होगा। उनके उपदेश से सिंह सम्यग्दृष्टि एव अणुव्रती बन गया और वही भगवान महावीर स्वामी हो गया। इसी प्रकार पार्श्वनाथ भगवान का जीव पूर्व पर्याय मे हाथी पर्याय मे था तब मुनिराज के सम्बोधन से उसे जाति स्मरण हो गया। वही हाथी पार्श्वनाथ तीर्थंकर हो गया।

अनेक अवधि ज्ञानी मन पर्यय ज्ञानी मुनियो ने अनेक राजाओ के और अनेक मनुष्यो के पिछले भव बताये हैं। उन भवो को सुनकर उन्हे जाति स्मरण भी हुआ था। ऐसी कथायें प्रथमानुयोग शास्त्रो से प्रमाणित हैं। और दृष्टान्त देने से ग्रन्थ विस्तार होगा।

जब अवधि मन पर्याय ज्ञानी क्षयोपशम ज्ञान धारी भी अनेक भूत भावी जीव पर्यायो का प्रत्यक्ष करते हैं तब पूर्ण निरावरण ज्ञान धारी सर्वज्ञ देव सभी पर्यायो का प्रत्यक्ष करते हैं यह अच्छी तरह प्रमाणित है।

भगवान नेमिनाथ ने केवली होने पर दिव्य ध्वनि मे कहा था कि द्वारिका जलेगी, कृष्ण बल्देव बचेंगे। प्रद्युम्नकुमार मोक्ष जायेगे। कृष्ण की आठ पटरानियो के भव बताये थे। आगे भगवान ने यह भी बताया कि ये थोडे भव धारण कर मोक्ष जायेंगी आदि।

इसलिये उपर्युक्त कथा प्रमाणो से और उपर्युक्त शास्त्रो से शास्त्र प्रमाणो से यह सुस्पष्ट सिद्ध है कि सर्वज्ञ के ज्ञान मे सभी द्रव्य गुण पर्याये प्रत्यक्ष झलकती हैं।

भगवान महावीर स्वामी से समवसरण मे राजा श्रेणिक ने पुष्पाजलि व्रत दशलक्षण व्रत किन किन ने पाले ? क्या फल मिला ? इन प्रश्नो के उत्तर मे भगवान् ने पूर्व भवो का सब वर्णन किया। सुगन्ध दशमी व्रत की कथा भी राजा श्रेणिक ने पूछी तब भगवान महावीर स्वामी ने उन कथाओ के सम्बन्ध मे पूर्व भवो का वर्णन किया था उन्ही कथाओ के सन्दर्भ मे मुनियो ने भी पूर्व भवो का वर्णन किया है। इस कथन से यह सिद्ध है कि भूत और भविष्यत् पर्यायो का प्रत्यक्ष मुनि भी करते थे। भगवान सर्वज्ञ तो अनन्त पर्यायो का प्रत्यक्ष करते हैं। एक प्रमाण और देकर इस प्रकरण को समाप्त कर देते हैं देखिये भगवान कुदकुद स्वामी ने प्रवचनसार मे कहा है-

अवदेस सवदेस मुत्तममुत्त च पज्जयभजाद
पलय गय च जाणदि त णाण मणिंदिय भजिय

(प्रवचन सार गाथा ४१)

अर्थ- जो अप्रदेशी (एक प्रदेशी) वस्तु है जो अनेक प्रदेश वाली वस्तु है जो मूर्त है जो अमूर्त है। उन सब वस्तुओ को अतीन्द्रिय ज्ञान-केवल ज्ञान जानता है। तथा जो पर्याय अभी उत्पन्न नही है अर्थात् आगे काल मे उत्पन्न होने वाली है और जो पर्याय प्रलय हो गई है अर्थात् नष्ट हो चुकी है उस भूत और भावी पर्याय को केवली सर्वज्ञ प्रत्यक्ष जानते है।

आचार्य कुदकुद स्वामी ने इस गाथा द्वारा कितना स्पष्ट कहा है भूत भावी सभी पर्यायें सर्वज्ञ के ज्ञान मे प्रत्यक्ष होती हैं इस स्पष्ट कथन से उन विद्वानो को अपनी उस निराघार धारणा को, कि सर्वज्ञ केवल वर्तमान पर्याय का ही प्रत्यक्ष करते हैं। भूत भावी पर्यायो को शक्ति रूप से जानते हैं- बदल देना चाहिये और आगम प्रमाणो से

अपनी श्रद्धा को आगमानुसार बना लेना चाहिये। भगवत् कुदकुंद स्वामी ने स्पष्ट रूप से इस गाथा द्वारा यह कहा है कि जो पर्याय नष्ट हो चुकी है और जो पर्यायें अभी उत्पन्न नही है उन सबो को सर्वज्ञ प्रत्यक्ष जानते है।

आदा णाण पमाण णाण णेय पमाण मुद्दिठ्ठ
णेय लोयालोय तम्हा णाण तु सव्वगय

(प्रवचन सार गाथा २३)

इस गाथा की सस्कृत टीका मे आचार्य अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं–

ज्ञेय तु लोकाकाश विभाग विभक्ताऽनन्तपर्याय मालिकालीढ स्वरूप सूचिता विच्छेदोत्पाद प्रदर्शित ध्रौव्या षड् द्रव्यी सर्वमितियावत् ततो नि दोषावरण क्षयक्षण एव लोकालोक विभाग विभक्त समस्त वस्त्वाकार पारमुपगम्य तथैवाप्रच्युतत्वेन व्यवस्थितत्वात् ज्ञान सर्व गतम्। (प्रवचन सार गाथा २३ पृ० २८)

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ज्ञेय पदार्थ जिसको सर्वज्ञ जानते है कितना है ? उसी का खुलासा यह किया है कि लोक अलोक विभाग से विभाजित अनत पर्यायो की माला मे गुथा हुआ स्वरूप वाला उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला छह द्रव्य मयी सर्व पदार्थ है। उस सर्व पदार्थ समूह (अनन्त पर्याय विशिष्ट) को केवल ज्ञान समस्त ज्ञानावरण कर्म का क्षय होते ही उसी क्षण मे अनन्त द्रव्य पर्याय सहित पूर्ण रूप से जानता है। इसलिये सर्वज्ञान सर्व गत है।

इस गाथा से आचार्य कुदकुद स्वामी ने स्पष्ट कर दिया है कि केवल ज्ञान मे भूत भविष्यत् वर्तमान सभी अनन्त पर्याये झलकती हैं।

जाणतो पच्छत्तो कालत्तय वदि याइ दव्वाई
उत्तो से सव्वण्हू परमप्पा परम जो इंहि

(आचार्य देवसेन कृत भाव सग्रह पृ० १४२)

अर्थ– तीन काल वर्त्ती– भूत भविष्यत् वर्तमान काल वर्ती द्रव्यो को

जो जानता है और देखता है वह सर्वत्र परमात्मा कहा जाता है परम योगियो ने यही सर्वज्ञ का लक्षण बताया है।

तीन काल की समस्त द्रव्य पर्यायो को जानने वाला सर्वज्ञ कहा जाता है तब केवल वर्तमान की पर्यायो को जानने वाला ही सर्वज्ञ है ऐसा कहना आगम बाधित है और सर्वज्ञ को अल्पज्ञ समझना है।

सिद्धो मे चारित्र का सद्भाव

कोई विद्वान् सिद्धो मे चारित्र नही मानते हैं वे चौदहवें गुणस्थान तक ही चारित्र मानते है परतु उनका ऐसा मानना शास्त्रो के सर्वथा विरुद्ध है। सिद्धो मे चारित्र अवश्य रहता है इसको हम शास्त्रो के प्रमाणो से और हेतुओ से स्पष्ट करते हैं —

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः

यह तत्वार्थ सूत्र है जो समस्त दि० जैनागम का मूल भूत सिद्धान्त है। सम्यग्दर्शन सम्यज्ञान चारित्र ये तीनो ही मोक्षमार्ग है। (भिन्न २ एक देश मोक्ष मार्ग है और) तीनो का समुदाय परिपूर्ण मोक्ष मार्ग है। (सम्यग्दर्शन चारो गतियो मे पाया जाता है। अत वह एक देश मोक्ष मार्ग है।) तीनो की पूर्णता पुरुष मे ही हो सकती है। स्त्रियो मे रत्नत्रय है परतु पूर्णता पुरुष मे ही होती है।

सम्यग्यदर्शन ज्ञान चारित्र ये तीनो मोक्ष के मार्ग है और स्वय तीनो मोक्ष स्वरूप भी हैं। (तीनो की पूर्णता तेरहवें सयोग केवली गुण स्थान मे हो जाती है।) मोक्ष प्राप्त होने पर सिद्धो मे भी तीनो सदैव रहते है। यही सिद्धान्त हैं। जो विद्वान् सिद्धो मे सम्यग्दर्शन और सम्यज्ञान तो मानते हैं किंतु सम्यक् चारित्र सिद्धो मे नही मानते हैं (वे बहुत बडी भूल मे है) उन्होने वस्तु स्वरूप पर पूरा विचार नही किया है। उन्हे यह विचार करना चाहिये कि सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र ये तीनो आत्मा के गुण है या पर्याय है यदि गुण है तो गुण कभी नष्ट नही हो सकता है। यदि गुण नष्ट हो जाते है तो आत्म

द्रव्य भी नष्ट हो जायगा गुण तो सदैव नित्य रहते हैं। वे विद्वान् सम्यग्दर्शन और सम्यज्ञान को तो सिद्धो मे मानते हैं अत उनकी समझ मे वे दोनो तो गुण हैं केवल चारित्र का वहा निषेध करते है सो वे चारित्र को पर्याय मानते होगे। यदि चारित्र पर्याय है तो वह चारित्र पर्याय किस गुण की है ? सो वताना चाहिये परन्तु चारित्र को पर्याय सिद्ध नही किया जा सकता है वह स्वय गुण है। अत मोक्ष मे (सिद्धो मे) उसका सम्यक्दर्शन और सम्यज्ञान के समान मानना ही शास्त्र सम्मत है। क्योकि वह भी गुण है।

दूसरी बात–ज्ञानावरणादि आठ कर्मो मे चार घातिया कर्म हैं और चार अघातिया कर्म घातिया कर्म आत्मा के गुणो को घातते हैं और अघातिया कर्म आत्मा के गुणो को नही घातते हैं किंतु मोहनीय कर्म की सहायता से आत्मा की कर्म जनित विकृत अवस्था वना देते हैं। अघातिया कर्मो के हटने से आत्मा अपने सूक्ष्म अव्यावाध अगुरु लघु एव स्वावाहन रूप शुद्ध स्वरूप मे आ जाता है। इसलिये शास्त्रकारो ने चार अनु-जीवी गुण और चार प्रतिजीवी गुणो के नाम से सिद्धो मे आठ गुण वताये हैं। वास्तव मे अनुजीवी तो सत्तात्मक (वास्तविक) गुण हैं और शेष चार गुण नही है किन्तु अघातिया कर्मो के अभाव मे आत्मा के अभाव रूप धर्म हैं।

प्रकरण मे यह विचार है कि घातिया कर्म अपने २ विपक्षी गुणो को घातते है तव दर्शन मोहनीय कर्म के अभाव मे सम्यग्दर्शन गुण प्रकट हो जाता है जो सिद्धो मे माना जाता है। इसी प्रकार चारित्र मोहनीय कर्म के अभाव मे चारित्र गुण प्रगट होता है। उसे सम्यग्दर्शन के समान सिद्धो मे क्यो नही माना जावे ? इसका क्या कारण है ? अत उसे भी सिद्धो मे मानना अनिवार्य हैं क्योकि चारित्र भी अनुजीवी गुण है।

तीसरा हेतु —सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनो ही अविनाभावी गुण है और तीनो की परि पूर्णता होने पर ही मोक्ष होती है। तव

क्या कारण है कि सिद्धो मे सम्यग्दर्शन और सम्यज्ञान तो रहे और अविनाभावी रूप मे रहने वाला चारित्र सिद्धो मे नही रहे। जब तीनो अविनाभावी हैं तब दर्शन ज्ञान से चारित्र भिन्न हो ही नही सकता है अविनाभावी का प्रमाण यही है कि- सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग इस महा सूत्र मे मोक्षमार्ग ऐसा एक वचन है। इसका अर्थ शास्त्रकारो ने यही किया है कि तीनो मिलकर ही मोक्ष मार्ग और मोक्ष रूप है।

चौथा हेतु —आत्मा के क्षायिक भाव नौ बताये गये है-
"ज्ञान दर्शन दान लाभ भोगोपभोग वीर्याणिच"
(तत्वार्थ महाशास्त्र)

ज्ञान दर्शन दान लाभ भोग उपभोग वीर्य सात तो ये और सूत्र मे "च" शब्द है उससे सम्यग्दर्शन और सम्यक चारित्र का ग्रहण किया जाता है। ये नौ क्षायिक भाव चार घातिया कर्मों के नष्ट हो जाने से प्रकट होते हैं। ये सभी नौ क्षायिक भाव हैं तब सिद्धो मे अवश्य रहेगे क्षायिक भाव कभी नष्ट नही हो सकते हैं। ये सभी भाव सिद्धो मे रहते है। फिर कौनसा ऐसा प्रवल हेतु या शास्त्रीय प्रमाण है जिससे चारित्र को गुण मानते हुए भी उसे सिद्धो मे नही माना जाय ? ऐसा कोई प्रमाण नही मिल सकता है।

शंका का समाधान

इस सम्बन्ध मे यह शका उठाई गई है कि सिद्धो मे दान लाभ भोग उपभोग भी तो नही है। उसी प्रकार चारित्र भी नही है भगवान की दिव्य ध्वनि से सर्व प्राणियो का कल्याण होता है वे अभय वनते हैं केवली भगवान का शरीर विना आहार ग्रहण किये कैसे टिका रहता है इसके लिए उनके शरीर मे अनन्त सूक्ष्म परम शुभ असाधारण पुद्गल परमाणु प्रति समय आते रहते हैं उन्ही के वल पर उनका शरीर ठहरा रहता है। भगवान के महान् असाधारण तीर्थंकर प्रकृति

के उदय से पुष्प वर्षा, मद सुगन्ध वायु आदि होते हैं। इसी प्रकार सिंहासन छत्र चमर समवसरण आदि विभूति होती है इसी प्रकार केवल ज्ञान के साथ होने वाला अनन्त बल भी भगवान के होता है यह सब सिद्धो मे नही रहता है अत अत चारित्र भी नही रहता ?

इस शका का अकाट्य समाधान शास्त्रकार आचार्यों ने बहुत सुन्दर किया है। वह इस प्रकार है– ये दान लाभ भोग उपभोग तीर्थंकर प्रकृति और शरीर नाम कर्म के उदय के कारण से ही होते हैं। जब शरीर नाम कर्म तीर्थंकर नाम कर्म एव शरीर आदि सभी बाह्य साधन हट जाते हैं तब केवल अमूर्तिक सिद्ध भगवान मे बाह्य कार्य भी नही रहते हैं। किंतु दान लाभ भोग उपभोग ये वीर्यान्तराय कर्म के नष्ट होने पर अनन्त वीर्य के ही भेद हैं अत' वे सभी भाव क्षायिक होने से सिद्धो मे अनन्त वीर्य के भीतर गर्भित होने से रहते हैं इसी बात का स्पष्टीकरण सर्वार्थ सिद्धि ग्रन्थ मे इस प्रकार है–

कथ तर्हि तेषा सिद्धेषु वृत्ति ? परमानन्त वीर्या
व्यावाध सुख रूपेणैव तेषा तत्र वृत्ति ।

अर्थ– दान लाभ भोग उपभोग यदि शरीर व तीर्थंकर प्रकृति के उदय से होते हैं तो वे क्षायिक भाव सिद्धो मे नही रहेगे। उत्तर मे कहा गया है कि क्षायिक भाव सिद्धो मे रहते हैं, इसलिये दान लाभादिक भी परम अनन्त वीर्य एव अव्यावाध सुख रूप से सिद्धो मे रहते हैं। वहा उनका अभाव नही है।

राज वार्तिक मे लिखा है कि–

"केवल ज्ञान रूपेणाऽनत वीर्य वृत्ति वत्" (राजवार्तिक)

अर्थात् जिस प्रकार केवल ज्ञान रूप से अनन्त वीर्य सिद्धो मे रहता है उसी प्रकार परम अनन्त वीर्य एव अव्यावाद सुख रूप से दान लाभादिक भी क्षायिक भाव होने से सिद्धो मे रहते हैं। इसी प्रकार चारित्र भी क्षायिक भाव है वह भी सिद्धो मे रहता है क्योकि सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र ये तीनो तादात्म्य रूप मे अखण्ड अभिन्न

है अत सिद्धो मे जहा सम्यग्दर्शन और ज्ञान है वहा चारित्र भी अनिवार्य रूप से अवश्यभावी है। और भी प्रमाण इस प्रकार है—

अन्यत्र केवल सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन सिद्धत्वेम्य

(तत्वार्थ सूत्र)

इस महाशास्त्र की टीका मे शका उठाई गई है कि इस सूत्र मे केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवल दर्शन और सिद्धत्व इन चार क्षायिक भावो का ही उल्लेख है अर्थात् इन चार क्षायिक भावो को छोडकर सिद्धो मे और कोई भाव नही रहता है क्या ? अनन्त वीर्यादिक भाव क्षायिक भाव है वे भी सिद्धो मे नही हैं क्या ? उत्तर मे आचार्य कहते है—

अनन्त वीर्यादि निवृत्ति प्रसग इति चेन्न अत्रैवान्तर्भावात् स्यादेत् सम्यक्त्वादीना चतुर्णा क्षायिकाणा सग्रहात् इतरेषा निवृत्ति रनत वीर्या दीना प्राप्नोतीति तन्न किं कारण अत्रैवान्तर्भावात् ज्ञान दर्शनाविनाभाविनो ह्यनत वीर्यादय अत्रैव अन्तर्भवन्ति।

(राजवार्तिक)

इस वार्तिक का स्पष्ट अर्थ यह है कि जब कि अनतवीर्य आदि सिद्धो के गुण है तब चार गुणो का नाम ही सूत्र मे क्यो लिया गया है क्या अनतवीर्य अनन्त चारित्र आदि आत्मा के क्षायिक गुण नही है ? इस शका के उत्तर मे आचार्य अकलक देव समाधान करते है कि ऐसा नही है कि सिद्धो मे केवल चार ही गुण हो उनमे अनन्त गुण हैं। परन्तु ज्ञान और दर्शन इनके भीतर अनन्त वीर्य चारित्र आदि गुण भी गर्भित हो जाते है उनका ग्रहण भी सुतरां (अपने आप) हो जाता है क्योकि सभी ज्ञान दर्शन के अविनाभावी हैं अर्थात् सभी तादात्म्य रूप से साथ ही रहते है। जैसे पुद्गल मे स्पर्श रस गन्धवर्ण वन्त पुद्गला इस सूत्र के अनुसार चारो ही या स्पर्श सहित पाचो ही पुद्गल के अविनाभावी गुण है वे तादात्म्य रूप से नियम से एक साथ रहते हैं। इसलिये रूपिणा पुद्गला इस सूत्र मे पुद्गल को रूप

गुण वाला बताया गया है परन्तु रूप के साथ पुद्गल मे रसगन्ध आदि भी रहते है उनका ग्रहण रूप के ग्रहण मे आजाता है उसी प्रकार आत्मा मे–सिद्धो मे सभी क्षायिक भाव नियम से अखड पिड रूप मे रहते हैं चारित्र भी ज्ञान दर्शन के समान क्षायिक गुण है और उनका अविनाभावी, तादात्म्य सम्बन्ध वाला गुण है अत वह चारित्र सिद्धो मे दर्शन ज्ञान के साथ अवश्य रहता है।

और भी प्रमाण

सिद्धो मे चारित्र रहता है उसका और भी प्रमाण है–

क्षेत्र काल गति लिंग तीर्थ चारित्र प्रत्येक बुद्ध वोधित ज्ञाना वगाहनान्तर सख्याल्य वहुत्वत साध्या (तत्वार्थ सूत्र)

इस सूत्र की सस्कृत टीका मे इसी बात का विचार किया गया है कि सिद्ध भगवान भूत नय की अपेक्षा से तो किस क्षेत्र से किस काल आदि से सिद्ध हुए है। और वर्तमान नय की अपेक्षा से किस क्षेत्र काल आदि से सिद्ध हैं। जैसे–भूतकाल से तो उन्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी मे सिद्ध हुए हैं वर्तमान मे सिद्ध काल मे ही सिद्ध होते हैं। भूतकाल की अपेक्षा से मनुष्यगति से सिद्ध होते हैं वर्तमान नय से सिद्ध गति मे ही सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार चारित्र का विचार किया गया है।

चारित्रेण केनसिध्यति। अव्यपदेशेन् एक चतु पचविकल्प चारित्रेण वा सिद्धि प्रत्युत्पन्न नय वशाच्च चारित्रेण व्यपदेशरहितेन भावेन सिद्धि। भूत पूर्व गतिर्द्विधा। अनन्तर व्यवहित भेदान्। आनन्तर्येण यथाख्यात चारित्रेण सिध्यन्ति व्यवधानेन चतुर्भि पञ्चभिर्वा।

(राजवार्तिक)

अर्थ–सिद्ध भगवान किस चारित्र से सिद्ध होते है। उत्तर मे कहा गया है कि याती विना किसी चारित्र विशेष का उल्लेख किये सिद्ध होते है या एक चारित्र से सिद्ध होते हैं या चार या पान्च चारित्र से सिद्ध

होते है। वर्तमान नय से तो चारित्र विशेष का उल्लेख किये बिना विशुद्धभावो से सिद्ध होते हैं। भूत पूर्व नय दो प्रकार है या तो साक्षात् या व्यवधान। साक्षात् तो केवल एक यथाख्यात चारित्र से सिद्ध होते है यदि व्यवधान (अन्तर रूप से) से होगे तो कोई सिद्ध तो सामायिक छेदोपस्थापना, सूक्ष्मसापराध और यथाख्यात इन चार चारित्रो से सिद्ध होते हैं और कोई परिहार विशुद्धि चारित्र सहित पाच चारित्रो से सिद्ध होतेहैं। इस प्रमाण से बहुत स्पष्ट होजाता है कि सिद्धो मे चारित्र अवश्य रहता है भले ही उसका नामोल्लेख नही हो। बिना नामोल्लेख के आत्मा के परम विशुद्ध रूप भाव मय ही सिद्धो मे चारित्र है–

यही बात समयसार मे कही गई है–

ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित दसण णाण
णवि णाण ण चरित्त ण दसण जाणगोसुद्धो
(समयसार)

आदि कु दकु द स्वामी कहते है कि व्यवहार नय से परम शुद्ध परमात्मा केवलज्ञानी आत्मा मे दर्शन ज्ञान चारित्र तीनो का ही सद्भाव है ऐसा कहा जाता है किंतु निश्चयनय मे उस परम विशुद्ध सिद्धात्मा मे न तो दर्शन है न ज्ञान है और न चारित्र है किंतु परम शुद्ध भाव है। अर्थात् अखड एव तादात्म्य रूप से अनत गुणो का पिंड आत्मा है उसमे दर्शन ज्ञान चारित्र का भेद विकल्प नही होता है। इसलिये सिद्धो मे जैसे ज्ञान दर्शन है वैसे चारित्र भी है और भी स्पष्टीकरण पढिये–

दसण णाण चरित्ताणि सेविदवाणि साधुणा णिच्च
ताणि पुण जाणि तिण्णिवि अप्पाण चेव णिच्छयदो
(समयसार)

अर्थ–सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनो का सेवन साधु को करना चाहिये यह व्यवहार नय से कहा जाता है। किंतु शुद्ध निश्चयनय से सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनो स्वरूप शुद्धात्मा है।

इस उपर्युक्त-सप्रमाण समस्त कथन से सिद्धो मे सम्यग्दर्शन सम्यज्ञान सम्यक्चारित्र तीनो का सद्भाव शुद्धात्म रूप से यह बहुत अच्छी तरह से सिद्ध किया गया है। सिद्धो मे वीतरागता है यह वीतरागता चारित्र के सिवा और क्या है ? सरागता चारित्र गुण की विभाव पर्याय है और वीतरागता चारित्र गुण की परम विशुद्ध पर्याय है। अत सिद्धो मे चारित्र भी प्रमुख गुण है।

सिद्धो मे चारित्र का सद्भाव का प्रवल प्रमाण

भगवत् कुद कुद स्वामी ने चारित्तभत्ति मे लिखा है---

"इच्छामि भत्ते सिद्धभत्ति सम्मणाण सम्मदसण
सम्मचारित्र जुत्ताण सव्वसिद्धाण समाणिच्चकाल
अचोमि पूजेमि, वदामि, णमसामि,, (दशभक्ति)

अर्थात् सिद्धभक्ति मे कहा गया है कि सम्यज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र सहित सभी सिद्धो को सदैव मैं अर्चना करता हू वदना करता हू नमस्कार करता हू।

इस सिद्ध भक्ति मे सम्यग्दर्शन सम्यज्ञान सम्यक्चारित्र सहित सिद्धो की वदना की गई है। इतने प्रमाण उपस्थित करने पर भी जो विद्वान् सिद्धो मे चारित्र का अभाव वताते हैं वे आगम के विपरीत वोलते है।

जैन दर्शनाचार्य-श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक

विरचित इस ग्रन्थ का सर्वज्ञ का ज्ञेय विषय और
सिद्धों में चारित्र के सद्भाव का निरूपक

आठवां अध्याय समाप्त

अ ..... ां अध्या

पंचाध्यायी का परिशिष्ट

सैद्धान्तिक शंकाओं का सप्रमाण समाधान

ग्रन्थराज पञ्चाध्यायी महाशास्त्र मे
वर्णित विषयो पर अनभिज्ञतावश
उठाई गई शकाओं का
सप्रमाण समाधान

कोई २ विद्वान् इन्द्रिय मन की सहायता का वाक्य देखकर यह कहते हैं कि पचाध्यायी ग्रन्थ मे मन पर्यय ज्ञान मे भी इन्द्रिय मन की सहायता बताई है इसलिये वह परोक्ष ज्ञान ठहरेगा। ऐसा कहने वाले विद्वान् इस ग्रन्थ को ध्यान पूर्वक पढें और अन्य शास्त्रो को भी ध्यान से पढें तो उनको ऐसी शका नही होगी। उनकी शका का समाधान इसी ग्रन्थ से और दूसरे ग्रन्थो से इस प्रकार है —

देश प्रत्यक्ष मिहावधिधिमन पर्ययश्च यज्ज्ञानम्
देश नो इद्रिय मन उत्थात् प्रत्यक्ष मितरनिरेपेक्षम्

छद्मस्थावस्थाया यावदिंद्रिय सहाय सापेक्षम्
यावज् ज्ञान चतुष्टय मर्थात् सर्वं परोक्षमिववाच्यम्
(पञ्चाध्यायी)

अर्थ —अवधि ज्ञान और मन पर्ययज्ञान इन दोनो को एक देश प्रत्यक्ष कहा गया है । देश तो इसलिये कहा गया है कि ये दोनो ज्ञान इद्रिय और मन की वाह्य सहायता से उत्पन्न होते है । प्रत्यक्ष इसलिये कहा गया है कि दोनो ज्ञान इन्द्रिय मन की सहायता से रहित आत्मा से साक्षात् प्रत्यक्ष करते है । छद्मस्थ अवस्था मे मतिश्रुत अवधि मन पर्यय ये चारो ज्ञान कर्मो के आवरण और इन्द्रिय तथा मन की वाह्य सहायता की अपेक्षा रखते हैं । इसलिये ये चारो ज्ञान परोक्षज्ञान जैसे मालूम होते है । परतु अवधि मन पर्यय ज्ञानो के लिये उन्होने इन्ही दो श्लोको मे यह खुलासा किया है कि ये दो ज्ञान इन्द्रियो और मन की सहायता मतिज्ञान श्रुतज्ञान के समान नही लेते हैं किंतु उस सहायता से निरपेक्ष होकर आत्मा से साक्षात् प्रत्यक्ष करते है । श्लोक मे "इव" शब्द है उससे और भी खुलासा हो जाता है कि परोक्ष जैसे मालूम होते है वास्तव मे परोक्ष नही है ।

अवधि मनः पर्यय ज्ञानो के विषय मे स्पष्टीकरण

केवल ज्ञान सर्व प्रत्यक्ष है उसमे किसी वाह्य इन्द्रिय मन आदि की सहायता नही है और न ज्ञानावरण कर्म का सद्भाव है इसलिये वह शुद्ध आत्मा मे परिपूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान है । परतु अवधि मन पर्यय मे इतनी विशुद्धता नही है । वे दोनो क्षयोपशम ज्ञान है उनमे सर्वथा आवरण हटा नही है । दूसरे इन्द्रिय मन की सहायता भी वाहर मे लेते हैं इसलिये परोक्ष सरीखे है वास्तव मे ये दोनो ज्ञान भी केवल आत्मा से ही होते हैं, इन्द्रियो की सहायता प्रत्यक्ष करने मे नही लेते हैं अत "प्रत्यक्ष मितर निरपेक्षम्" आत्मा से ही होते है अत वे दोनो प्रत्यक्ष है ।

और भी खुलासा यह है कि बाहर मे सहायता लेने का अर्थ यह नही है कि जैसे मतिश्रुत ज्ञान इन्द्रिय और मन से ही उत्पन्न होते हैं। वैसे अवधि मन पर्यय इन्द्रिय मन की सहायता से नही होते है किंतु साक्षात् विना वाह्य सहायता के आत्मा से ही प्रत्यक्ष करते हैं। वाह्य सहायता से यह प्रयोजन है जैसे ऋजुमति मन पर्यय ज्ञान सरल मन बचन काय वाले मनुष्य के मन के विचारो का प्रत्यक्ष करता है किंतु वह कुटिल मायाचारी व्यक्ति के भावो का प्रत्यक्ष करने मे असमर्थ है अत पहले ईहा मतिज्ञान द्वारा वह उस व्यक्ति की वाह्य आकृति को देखता है यदि भीतर मन मे तो खेद और चिता से दूसरा विचार करता है और वाहर मे लोक व्यवहार मे अपने मन के भावो को छिपाने के लिये वाहर बनावटी रूप मे अपने मुख (चेहरे) को प्रसन्न वनाये हुए है तो ऐसे व्यक्ति के मन के भावो को ऋजुमति नही जान सकता है वह उसकी वाह्य आकृति को मन वचन की प्रवृत्ति को पहले इन्द्रियो और मन से देखकर विचार करेगा फिर विना इन्द्रिय और मन की सहायता लिये स्वय अपनी आत्मा से उस व्यक्ति के मन की वात को साक्षात् प्रत्यक्ष करता है। यही वात ऊपर के दोनो श्लोको मे प्रगट की गई है और इसी वात का समर्थन सभी शास्त्र करते हैं देखिये—आचार्य नेमिचद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती कहते हैं —

परमणसिढ्ढिय मट्ठ ईहामदिणा उजुट्ठिय लहिय
पच्चा पच्चक्खेणय उजुमदिणा जाणदे णियमा
इन्दियणो इदिय जोगादि पेक्खितु उजुमदि होदि
(गोमट्ट सार)

अर्थ —ऋजुमति मन पर्यय ज्ञानी दूसरे के मन मे आये हुए पदार्थ को पहिले ईहामतिज्ञान से सरल रूप में जानकर (इतना वाहरी जानकर) पीछे अपने आत्मीय प्रत्यक्ष द्वारा उस मन मे विचारी हुई वात का साक्षात् प्रत्यक्ष करता है। तथा इन्द्रिय नो इद्रिय की अपेक्षा से वाहरी आकृत्ति आदि को देखकर फिर ऋजुमति मन पर्यय ज्ञानी

दूसरे के मन की बात को प्रत्यक्ष करता है विपुल मति मन पर्ययज्ञानी तो कुटिल मायाचारी के मन मे ठहरी हुई बात को विना बाहरी आकृति देखे स्वय आत्मा से साक्षात् प्रत्यक्ष करता है।

गोम्मट सार के प्रमाण से पचाध्यायी का कथन एक रूप मे मिलता है। इसलिये पचाध्यायी के कथन मे असाधारण विशेष विवेचना तो महत्वपूर्ण है परन्तु पूर्वाचार्यो के कथन से विरुद्धता किञ्चिन्मात्र कही भी नही है।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च संमूर्छन भी होते है

पचेन्द्रिय तिर्यंच समूर्छन भी होते हैं इसका प्रमाण पचक्ख तिरिक्खाओ गब्भज समुच्छिमा तिरिक्खाण भोगभुमा गब्भमवा नरपुण्णा गब्भजा चेव।

(गोम्मटसार जीव काड)

अर्थ- पचेन्द्रिय तिर्यंच गर्भज और समूर्छन होते है भोग भूमि के तिर्यंच गर्भज होते हैं। मनुष्य पर्याप्तक गर्भज ही होते है। इस गाथा से उन विद्वानो की यह मान्यता निर्मूल एव आगम विरुद्ध है कि पचेन्द्रिय असज्ञी तिर्यंच समूर्छन नही होते है। प्रत्युत. सज्ञी मनुष्य भी समूर्छन होते हैं उसका प्रमाण-

उववादगब्भजेसुय लद्धि अपज्जत्तगाण णियमेण
णर समुच्छिभजीवा लद्धि अपज्जत्तगा चेव

(गोम्मटसार जीवकाडगाथा ९२)

अर्थ- उपवाद जन्म और गर्भ जन्म वाले जीव लब्ध्यपर्याप्तक नियम से नही होते हैं। किन्तु मनुष्य समूर्छन जीव लब्ध्य पर्याप्तक ही ही होते हैं।

जो विद्वान असज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंचो को समूर्छन नही बताते हैं उन्हे इन गाथाओ से अपनी मान्यता शास्त्र विपरीत समझना चाहिये। पचाध्यायी और गोम्मटसार आदि शास्त्रो से स्पष्ट हो जाता

है। लब्ध्य पर्याप्तक पचेन्द्रिय तिर्यच और सज्ञी लब्ध्य पर्याप्तक मनुष्य भी समूर्छन ही होते हैं।

जो कथन गोम्मटसार मे है वही पचाध्यायी मे है मतभेद समझना अथवा ग्रन्थ को सहसा अप्रमाण कह देना भारी भूल है। देखिये–

तत्रोपचार हेतुर्यथा मतिज्ञान मक्षज नियमात्
अथ तत्पूर्व श्रुतमपि न तथा वधिचित्त पर्ययज्ञानन्
यत्स्या दवग्रहेहावायानति धारणा परायत्तम्
आद्य ज्ञानद्वयमिह यथा तथा नैत्र चाँतिम द्वैत्तम्

(पचाध्यायी पृष्ठ २०७)

इन दोनो श्लोको से पचाध्यायी कार ने स्पष्ट कर दिया है कि जिस प्रकार मतिश्रुत ये दोनो ज्ञान इन्द्रिय ज्ञान होने से परोक्ष है। उस प्रकार अवधिमन पर्ययज्ञान इन्द्रिय जन्य और परोक्ष नही है।

इसी प्रकार असज्ञी पचेंद्रिय तिर्यच को पचाध्यायी कार ने नपुसकलिंग वाला ही लिखा है। धवल शास्त्र मे असज्ञीपचेद्रियतिर्यंच को तीनो लिंग वाला वताया गया है। इस कथन पर भी शका खडी की गई है कि पचाध्यायी का कथन शास्त्रो से विरुद्ध है। परन्तु पचाध्यायी का पूर्वा पर अध्ययन करने से यह शका भी नही ठहरती है। पचाध्यायीकार ने समूर्छन जीवो के प्रकरण मे असज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंचो को नपुसक लिंगी वताया है। सज्ञी पचेन्द्रिय मनुष्य भी जो समूर्छन होते है वे भी नपुसक लिंग वाले ही होते है। परन्तु असज्ञी पचेन्द्रिय से लेकर सज्ञी पचेन्द्रिय जो गर्भज होते हैं उन्हे पचाध्यायी कार ने तीनो लिंग वाला वताया है।

ग्रन्थ का पूरा अध्ययन किये विना ऐसा भ्रम होता है पचाध्यायी ग्रन्थ एक महान प्रामाणिक अद्वितीय ग्रन्थ है। उसमे एक वात भी पूर्वाचार्यो के विरुद्ध नही है। सामजस्य से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

दूसरे के मन की बात को प्रत्यक्ष करता है विपुल मति मन पर्ययज्ञानी तो कुटिल मायाचारी के मन मे ठहरी हुई बात को बिना बाहरी आकृति देखे स्वय आत्मा से साक्षात् प्रत्यक्ष करता है।

गोम्मट सार के प्रमाण से पचाध्यायी का कथन एक रूप मे मिलता है। इसलिये पचाध्यायी के कथन मे असाधारण विशेष विवेचना तो महत्वपूर्ण है परन्तु पूर्वाचार्यो के कथन से विरुद्धता किञ्चिन्मात्र कही भी नही है।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च संमूर्छन भी होते है

पचेन्द्रिय तिर्यंच समूर्छन भी होते हैं इसका प्रमाण पचक्ख तिरिक्खाओ गब्भज समुच्छिमा तिरिक्खाण भोगभुमा गब्भमवा नरपुण्णा गब्भजा चेव।

(गोम्मटसार जीव काड)

अर्थ– पचेन्द्रिय तिर्यंच गर्भज और समूर्छन होते है भोग भूमि के तिर्यंच गर्भज होते हैं। मनुष्य पर्याप्तक गर्भज ही होते है। इस गाथा से उन विद्वानो की यह मान्यता निर्मूल एव आगम विरुद्ध है कि पचेन्द्रिय असज्ञी तिर्यच समूर्छन नही होते है। प्रत्युत सज्ञी मनुष्य भी समूर्छन होते है उसका प्रमाण–

उववादगब्भजेसुय लद्धि अपज्जत्तगाण णियमेण
णर समुच्छिभजीवा लद्धि अपज्जत्तगा चेव

(गोम्मटसार जीवकाडगाथा ९२)

अर्थ– उपवाद जन्म और गर्भ जन्म वाले जीव लब्ध्यपर्याप्तक नियम से नही होते है। किन्तु मनुष्य समूर्छन जीव लब्ध्य पर्याप्तक ही ही होते हैं।

जो विद्वान असज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यचो को समूर्छन नही बताते हैं उन्हे इन गाथाओ से अपनी मान्यता शास्त्र विपरीत समझना चाहिये। पचाध्यायी और गोम्मटसार आदि शास्त्रो से स्पष्ट हो जाता

है। लब्ध्य पर्याप्तक पचेन्द्रिय तिर्यच और सज्ञी लब्ध्य पर्याप्तक मनुष्य भी समूर्छन ही होते हैं।

जो कथन गोम्मटसार मे है वही पचाध्यायी मे है मतभेद समझना अथवा ग्रन्थ को सहसा अप्रमाण कह देना भारी भूल है। देखिये–

तत्रोपचार हेतुर्यथा मतिज्ञान मक्षज नियमात्
अथ तत्पूर्व श्रुतमपि न तथा वधिचित्त पर्ययज्ञानन्
यत्स्या दवग्रहेहावायानति धारणा परायत्तम्
आद्य ज्ञानद्वयमिह यथा तथा नैत्र चाँतिम द्वैत्तम्
(पचाध्यायी पृष्ठ २०७)

इन दोनो श्लोको से पचाध्यायी कार ने स्पष्ट कर दिया है कि जिस प्रकार मतिश्रुत ये दोनो ज्ञान इन्द्रिय ज्ञान होने से परोक्ष है। उस प्रकार अवधिमन पर्ययज्ञान इन्द्रिय जन्य और परोक्ष नही है।

इसी प्रकार असज्ञी पचेंद्रिय तिर्यच को पचाध्यायी कार ने नपु सकलिग वाला ही लिखा है। धवल शास्त्र मे असज्ञीपचेद्रियतिर्यच को तीनो लिग वाला वताया गया है। इस कथन पर भी शका खडी की गई है कि पचाध्यायी का कथन शास्त्रो से विरुद्ध है। परन्तु पचाध्यायी का पूर्वा पर अध्ययन करने से यह शका भी नही ठहरती है। पचाध्यायीकार ने समूर्छन जीवो के प्रकरण मे असज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यचो को नपु सक लिगी वताया है। सज्ञी पचेन्द्रिय मनुष्य भी जो समूर्छन होते हैं वे भी नपु सक लिग वाले ही होते हैं। परन्तु असज्ञी पचेन्द्रिय से लेकर सज्ञी पचेन्द्रिय जो गर्भज होते हैं उन्हे पचाध्यायी कार ने तीनो लिग वाला वताया है।

ग्रन्थ का पूरा अध्ययन किये विना ऐसा भ्रम होता है पचाध्यायी ग्रन्थ एक महान प्रामाणिक अद्वितीय ग्रन्थ है। उसमे एक बात भी पूर्वाचार्यो के विरुद्ध नही है। सामजस्य से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

वैभाविक शक्ति जीव का गुण है वह नित्य है

सिद्धान्त के ज्ञाता कोई विद्वान् वैभाविक भावको कर्मजनित पर्याय बताते है उनका कहना है कि योगो के द्वारा जो कर्मास्रव होता है उसी से कषाय का सहयोग मिलने से विभाव पर्याय बन जाती है। वैभाविक आत्मा की कोई शक्ति या गुण नही है परन्तु उनका यह कहना शास्त्र और हेतु दोनो से विरुद्ध है पचाध्यायीकार ने इस विषय का अनेक श्लोको द्वारा खुलासा किया है, वे इस वैभाविक शक्ति को आत्मा का नित्य गुण कहते है प्रमाण इस प्रकार हैं-

अस्ति वैभाविकी शक्ति स्तत्तद्रव्योपजीविनी
सा चेद्बन्धस्य हेतु स्या दर्थान्मुक्तेरसभव
सत्य नित्या तथा शक्ति शक्तित्वात् शुद्धशक्तिवत्
अथान्यथा सतो नाश शक्तीना नाशत क्रमात्
(पचाध्यायी)

अर्थ—वैभाविकी शक्ति अथवा वैभाविक गुण पुद्गल और जीव इन दो द्रव्यो का उपजीवी गुण है। यदि वही विभावशक्ति बन्ध का कारण माना जाय तो इस जीव को कभी मोक्ष नही मिल सकती है। वह वैभाविक शक्ति नित्य है क्योकि वह शक्ति है जैसे अन्य शुद्ध शक्तिया होती है उसी प्रकार वैभाविक शक्ति भी नित्य शक्ति है। यदि वैभाविक शक्ति का नाश माना जाय तो द्रव्य का ही नाश हो जायगा। क्योकि शक्तियो के क्रम क्रम से नाश होने से द्रव्य का नाश सुतरा होजायगा।

किन्तु तस्या स्तथाभाव शुद्धादन्योन्य हेतुक
तन्निमित्ताद्विना शुद्धो भाव स्यात् केवल स्वत
(पचाध्यायी)

अर्थ— उस वैभाविक गुण का जो विभावभाव होता है वह विकारीभाव अन्योन्य हेतुओ से होता है। अर्थात् योग- और कषायो के निमित्त से होता है। यदि योग कषाय का निमित्त हट जाय तो वह वैभाविक गुण आत्मा मे शुद्ध रूप मे सदैव रहता है।

पचाध्यायी मे इन श्लोको के आगे पीछे और अनेक श्लोक है उनका परस्पर सम्बन्ध है और बहुत खुलासा वर्णन है।

इस सम्बन्ध मे खुलासा इस प्रकार है--

छह द्रव्यो मे धम अधर्म आकाश काल ये चार द्रव्य तो सदैव शुद्ध और अमूर्तिक ही रहते है उनमे कभी कोई विकार नही होता है। परन्तु जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यो मे परनिमित के मिलने से विकार अथवा विभाव भाव होता है यहा विचार इस बात का करना है कि वाह्य निमित्त मिलने पर भी धर्म अधर्म आकाश और काल ये चार द्रव्य अशुद्ध नही होते है सदैव शुद्ध ही रहते हैं परन्तु जीव पुद्गल ये दो द्रव्य वाह्य निमित्त मिलने पर अशुद्ध क्यो होते हैं ? इसका मूल कारण क्या है ? इस शका के समाधान मे पचाध्यायीकार ने स्पष्ट किया है कि जीव पुद्गल इन दो द्रव्यो मे वैभाविक गुण है अन्य चार द्रव्यो मे वह नही है। उस गुण मे यह योग्यता है कि पर निमित्त मिलने पर आत्मा और पुद्गल विभावभाव वाले वन जाते है। बिना अतरग शक्ति के केवल वाहरी निमित्त किसी द्रव्य का कोई विगाड नही कर सकते है। जिस प्रकार चुम्बक मे लोहे को खीचने की शक्ति है तभी उसके द्वारा लोहा खिचा चला आता हैं। इसी प्रकार आत्मा और पुद्गल मे वैभाविक शक्ति के कारण पर निमित्त के मिलने पर विकारीभाव उत्पन्न हो जाते है। आत्मा मे पर निमित्त पुद्गल कर्म और उसके उदय से होने वाला राग द्वेष है उस कारण से आत्मा मे विकार होता है पुद्गल मे उसी वैभाविक शक्ति के कारण स्निग्ध रूक्ष आदि निमित्त मिलने पर परस्पर वध एव स्कन्ध रूप विभाव परिणाम होता है। आकाशादि चार द्रव्यो मे वाहरी निमित्त कार्माणवर्गणाए हैं उनके रहते हुए भी वैभाविक शक्ति के न हो होने पर उन चार द्रव्यो मे अशुद्धता कभी नही आती है।

सिद्धा मे भी वैभाविक गुण है वहां विकारीभाव क्यो नही होता है इसके समाधान मे यह समझना चाहिये कि सिद्धो मे वाहरी

निमित्त राग द्वेषादि नही है । अत वह वैभाविक गुण स्वभाव रूप मे सदैव रहता है जैसे अग्नि पर चावल आदि रक्खोगे तो उन्हे वह पका देगी परन्तु चावल आदि कुछ नही रक्खोगे तो भी अग्नि अपने पकाने के स्वभाव को नही छोडती है । परन्तु विना निमित्त मिले वह पका नही सकती है ।

उपादान मे विभाव परिणमन करने वाली शक्ति के माने विना विभाव परिणमन कभी नही हो सकता है जैसे कि आकाशादि चार द्रव्यो मे नही होता है ।

इसी पचाध्यायी ग्रन्थ मे एक शका यह भी उठाई गई है कि वैभाविक शक्ति के समान एक स्वाभाविक शक्ति भी मानना चाहिये जिससे स्वभाव परिणमन हो सके । इस शका के उत्तर मे इसी ग्रन्थ मे यह समाधान किया गया है कि दो शक्तिया मानने से दोनो विरोधोभावो मे समिश्रण और परस्पर विरुद्धता होगी इसलिये एक वैभाविक शक्ति मानना ही कार्यकारी है जब वैभाविक शक्ति को पर निमित्त नही मिलता है तब वही शक्ति स्वभाव पर्याय मे परिणत हो जाती है इसलिये दो शक्ति मानना व्यर्थ है ।

किसी शास्त्र मे इस वैभाविक गुण का निषेध नही है । भले ही उसे नित्य रूप से उल्लेख नही किया गया हो । आकाश के समान ही आत्मा अमूर्तिक है तथा परमाणु भी शुद्ध है उनमे जो विभाव भाव होता है वह अपने मे परिणमन करने वाली अतरग विभाव शक्ति से ही होता है । उसी की विभाव और स्वभाव दो पर्यायें होती है ।

सद्भूत असद्भूत व्यवहार नयो का स्पष्टीकरण

पचाध्यायी ग्रन्थराज मे नयो के दो भेद किये हैं एक निश्चय और दूसरा व्यवहार ये भेद समयसार आदि सभी शास्त्रो मे पाये जाते हैं । किंतु अन्तर्दृष्टि एव विशेष स्पष्टीकरण दृष्टि को ध्यान में रखकर पचाध्यायीकार ने उन दोनो नयो के सद्भूत असद्भूत उपचरित

अनुपचरित ऐसे ही अन्तर्भेद किये हैं। सभी शास्त्रो मे ऐसे भेद नही मिलने से स्वाध्यायशील एव शास्त्र चिंतन करने वाले महानुभावो को इन नय भेदो मे कुछ विरोधसा प्रतीत होता है परन्तु वास्तव मे सभी आचार्यो के कथन मे कही भी विरोध नही है किन्तु विशेप विवक्षावश विशेष वर्णन अन्य शास्त्रो की दृष्टि मे विरोधसा प्रतीत होता है उसका खुलासा हम सक्षेप से कर देते हैं—

अपिचाऽसद्भूतानि व्यवहारान्तो नयश्च भवति यथा
अन्य द्रव्यस्य गुणा सयोजन्ते 'वलादन्यत्र
स यथा वर्णादिमतो मूर्तद्रव्यस्य कर्म किलमूर्तम्
तत्सयोग त्वादिह मूर्ता क्रोधादयोपि जीवभवा

(पचाध्यायी)

अर्थ — दूसरे द्रव्य के गुण अन्य किसी दूसरे द्रव्य मे आरोपित किये जाय ऐसी विवक्षा मे असद्भूत व्यवहार नय कहा जाता है जैसे- पुद्गल द्रव्य रूप रसादि गुणो वाला है वह मूर्त है उसी पुद्गल की पर्याय कर्म है वह भी मूर्त है। उस कर्म के सयोग से क्रोधादि भाव मूर्त है जो जीव मे उत्पन्न होते हैं।

पचाध्यायीकार ने क्रोधादिको को आत्मा का निज गुण नही माना है इसीलिये इसे असद्भूत व्यवहार नय का विषय कहा है इस पचाध्यायी के कथन की पुष्टि समयसार कलश से होती है देखिये-

चैद्रूप्य जडरूपता च दधतो कृत्वा विभाग द्वयो
रन्तर्दारुण दारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च
भेदज्ञान मुदेति निर्मलमिद मोदध्व मध्यासिता
शुद्ध ज्ञान धनौघ मेक मधुना सन्तो द्वितीयच्युता

(समयसार कलश १२६ सवर अधिकार)

अर्थ — चिद्रूपता को धारण करने वाला तो ज्ञान है। और जड रूपता को धारण करने वाला राग (क्रोधादि) है। इनका भेद करके मैं क्रोधादि भावो से भिन्न निर्मल ज्ञान प्रगट हो जाता है।

इस कलश से यह स्पष्ट कर दिया गया है कि क्रोधादि विकारी भाव जड रूप है वह आत्मा का निज रूप नही है । सवर अधिकार मे आचार्य कु दकु द स्वामी कहते है कि—

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि कोवि उवओगे
कोहो कोहे चेवहि उवओगे णत्थि खलु कोहो ।

(गाथा १८१ समयसार)

इस गथा की सस्कृत टीका मे लिखा है कि-

"न पुन क्रोधादिपु कर्मणिनो कर्मणि नो कर्मणि वा ज्ञान मस्ति तच ज्ञाने क्रोधादय कर्म नो कर्म वा सन्ति परस्पर मत्यन्त स्वरूप वैपरीत्येन परमार्थ धारा धेय सम्वन्ध शून्यत्वान्"

(समयसार सस्कृत टीका)

अर्थात् क्रोधादि कर्म तो कर्म मे ज्ञान नही है तथा ज्ञान मे क्रोधादिक कर्म नोकर्म नही है । परस्पर दोनो मे अत्यन्त स्वरूप की विपरीतता है । इसलिये परमार्थ से इनका कोई आधार आधेय भाव नही है ।

ज्ञान आत्मा का गुण है उसका आधार आत्मा है क्रोधादि कर्म नो कर्म का विकार है उसका आधार आत्मा नही है । क्रोधादि को इस गाथा मे जड रूप की सज्ञा दी गई है । इसलिये क्रोधादि को आत्मा का गुण कहना असद्भूत व्यवहार नय का विषय है । पचाध्यायी के कथन मे और समयसार के कथन मे एक रूपता है ।

जिस शास्त्र मे क्रोधादि भाव को असद्भूत निश्चय नय का विषय बताया गया है तो वह भी आगम विरुद्ध नही है । वैसा मानने मे यह विवक्षा है कि क्रोधादि भाव चारित्र गुण का विभाव भाव है । अर्थात् चारित्र गुण की कर्मोदय जनित विभाव पर्याय है । इस दृष्टि से क्रोधादि भाव को असद्भूत निश्चय नय मे गर्भित किया गया है । किन्तु समयसार, समयसार कलश तथा पचाध्यायी मे क्रोधादि भाव को आत्मा का गुण नही होने से एव कर्मोदय जनित जड रूपता होने

से असद्‌भूत व्यवहार नय मे गर्भित किया गया है। यह विवक्षा भेद है शब्द भेद, भाव भेद, विवक्षा भेद आदि दृष्टिकोण भेद से नाना नय भेद हो जाते हैं उनमे परस्पर विरोध समझना भूल है। जैसे कोई मिट्टी का घडा कहता है कोई घी का घडा कहता है। दोनो मे विवक्षा अथवा अभिप्राय भेद हैं वास्तव मे विरोध नही है। आचार्यो के कथन मे विरोध नही है। विवश्रा दृष्टि को नही समझने से विरोध मालूम होता है।

विशेष कथन की अपेक्षा से विरोघ नही है क्योकि क्रोधादि भाव को जीव का गुण कहना भी सही नही है और क्रोधादि भाव को मूर्त कहना भी सही नही है। किन्तु अपेक्षा द्दाष्ट से दोनो सही हैं। जैसे सर्वार्थ सिद्धि मे कहा गया है—

"औप्शमिकादि भावानुपपत्ति रमूर्तत्वादात्मन कर्मबन्धापेक्ष- याहि ते भावा नच अमर्ते कर्मणा वन्धो युज्यते न अनेकान्तात् नाय मेकान्ततोरमूर्ति रेवात्मा। कर्मवन्धन पर्यायापेक्षया तदावेशात् स्यान्मूर्तं शुद्धस्वरूपापेक्षया स्यादमूर्तं।

(सर्वार्थ सिद्धि)

अर्थ — औपशमकादिक भाव नही हो सकते हैं क्योकि आत्मा अमूर्तिक है। वे भाव कर्म बन्ध की अपेक्षा से होते हैं और अमूर्तिक आत्मा के कर्म वध नही हो सकता है। इसके समाधान मे आचार्य कहते है कि ऐसा एकात नही हैं किन्तु अनेकान्त हैं आत्मा सर्वथा अमूर्तिक ही है ऐसा भी नही है। किन्तु कर्म बध की अपेक्षा से कर्मो के प्रभाव से मूर्तिक भी है। तथा अपने शुद्ध स्वभाव की अपेक्षा से अमूर्तिक भी है। इस कथन से आत्मा मे होने वाले क्रोधादि भाव कथचित आत्मा के और कथचित् पुद्‌गल के हैं।

व्यवहार नय मिथ्या क्यो है ?

जहा पर पचाध्यायी मे व्यवहार नय को मिथ्या और उसी

नय को मुख्य रूप से मानने वाले को मिथ्या दृष्टि कहा गया है इस पर भी शका की जाती है कि व्यवहार नय क्या मिथ्या है और उसे मानने वाला क्या मिथ्या दृष्टि है ?

ऐसी शका भी अपेक्षा एव दृष्टि भेद को समझ लेने से सहज दूर हो जाती है। जिस प्रकरण मे व्यवहार नय को मिथ्या एव वैसे उपदेशक को मिथ्या दृष्टि कहा गया है वह निश्चय नय का प्रकरण है निश्चय नय का विपय द्रव्य मे गुण गुणी का भेद नही वताता है। द्रव्य गुण पर्याय ऐसा भेद द्रव्य मे नही है। द्रव्य भेद गुण भेद पर्याय भेद मानना वस्तु स्वरूप नही हैं किन्तु अनन्त गुणो का अ नर्वचनीय निर्विकल्पक अखड पिड ही द्रव्य है। वही निश्चय नय का विपय है।

इसीलिये निश्चय नय को प्रतिपेधक और व्यवहार नय को प्रतिषेध्य कहा गया है दूसरे शव्दो मे यह कहा जाता है कि जो कुछ भी व्यवहार नय कहता है वह सव निषेध करने योग्य है। पचाध्यायी-कार ने इस विषय को अनेक श्लोको द्वारा बहुत विस्तार से कहा है उन श्लोको को पूर्वा पर सवध मिलाकर ध्यान से समझने पर कोई शका या विरोध नही रहता है। निश्चय नय का कथन यह है कि यदि कोई आत्मा को यह कहता है कि इसका सम्यग्दर्शन गुण है तो निश्चय नय कहता है कि ऐसा नही है। कोई जीव का गुण ज्ञान कहता है या चारित्र कहता है तो निश्चय नय उसका भी निषेध करता है कि ऐसा नही है। जो भी गुण भेद पर्याय भेद द्रव्य भेद किया जायगा वह सब निश्चय नय की दृष्टि मे निषेध करने योग्य हैं क्योकि निश्चय नय का विषय केवल अखड पिंड है। तादात्म्य रूप एक है वचन से कहने योग्य नही है। इसलिये उस निश्चय नय के स्वरूप मे भेद लाने वाला व्यवहार नय का कथन मिथ्या है और उस भेद को ही मानने वाला निश्चय नय की दृष्टि मे मिथ्या दृष्टि है। क्योकि वह व्यवहार नय वस्तु के शुद्ध एकात्मक रूप को अनेक एव भेद रूप कहता है अत मिथ्या है।

इसी का खुलासा पचाध्यायी में इस प्रकार है–

सत्य न गुणाभावो द्रष्याभावोन नोभयाभाव
नहिं तद्योगाभावो व्यवहार स्यात्तथा प्यभूतार्थं
इत्यत्र निदान किल गुणवद्द्व्य यदुक्तमिह सूत्रे
अस्ति गुणोस्ति द्रव्य तद्योगातदिह लब्धमित्यर्थात्
तद सन्न गुणोस्ति यतो न द्रव्य नोभय नत्तद्योग
केवल मद्वैत सद्भवतु गुणोवा तदेव सद्द्व्यम्
तस्मान्यायागत इति व्यवहार स्यान्नयोप्यभूतार्थं
केवल मनुभवितारस्तस्य च मिथ्यादृशो हतास्तेपि

अर्थ — द्रव्य मे न तो गुण का अभाव है ओर न द्रव्य का अभाव है और न दोनो का अभाव है और न उनके सम्बन्ध का अभाव है तो भी व्यवहार नय अभूतार्थ है। इसका क्या कारण है कि गुण द्रव्य और उनका सम्बन्ध सब कुछ यथार्थ होते हुए भी व्यवहार नय अभूतार्थ क्यो है ? इसका मूल कारण यह है कि व्यवहार नय गुण द्रव्य और उन दोनो को सम्बन्ध रूप मे ग्रहण करता है जैसे गुणवान द्रव्य है। दर्शन ज्ञान चारित्र ये जीव के गुण है ऐसा समझना ही निश्चय नय से विपरीत एव मिथ्या है क्योकि निश्चय न तो गुण को विपय करता है और न द्रव्य को विषय करता है और न उनके सबध को विपय करता है किन्तु केवल वस्तु अद्वैत है और निर्विकल्प है। इस निश्चय नय के कथन से यह बात न्याय पूर्ण सिद्ध हो जाती है कि निश्चय नय के शुद्ध अखण्ड एव निर्विकल्पक स्वरूप को नही समझकर जो केवल व्यवहार नय का ही अवलबन करते है अथवा व्यवहार नय को ही यथार्थ सत्य मानते हैं वे मिथ्या दृष्टि है और वस्तु स्वरूप के विपय मे हत बुद्धि हैं।

उपर्युक्त श्लोको से यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि निश्चय की अपेक्षा को नही रखकर केवल व्यवहार को मानने वाले मिथ्या दृष्टि हैं। यदि निश्चय और व्यवहार दोनो के स्वरुप का

ध्यान रखकर दोनो परस्पर सापेक्ष हैं ऐसा जो मानते हे वे सम्यग्दृष्टि है। अर्थात् निश्चय और व्यवहार दोनो नय परस्पर सापेक्ष हैं और अपनी अपनी अपेक्षा से दोनो ही सत्य है। क्योकि दोनो का विषय यथार्थ हे जीव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र वाला है यह कथन भी सत्य है और तादात्म्य दृष्टि मे जीव अनन्त गुणो का अखण्ड पिड है वह अभिन्न सन्मात्र है यह भी कथन सत्य है। किन्तु किसी एक को ही मान लिया जाता है दूसरे नय का निषेध कर दिया जाता है वैसा निरपेक्ष कथन ही मिथ्या हे और उसे मानने वाला मिथ्यादृष्टि है।

व्यवहार नय भी यथार्थ सत्य है

ऊपर के श्लोको से कोई यह समझ ले कि पचाध्यायीकार ने व्यवहार नयावलबी को मिथ्यादृष्टि कहा है सो ऐसा समझना भी भूल भरा है। इसी को स्पष्ट करते हुए पचाध्यायी कार कहते हैं-

यदि निश्चय दृष्टि को ही केवल सत्य एव यथार्थ माना जाय उसे ही आदरणीय एव उपादेय माना जाय और व्यवहार नय को हेय एव त्याज्य माना जाय तो वह भी मानना ठीक नही है।

नैव यतो वलादिह विप्रतिपत्तौ च सशया पत्तौ
वस्तु विचारे यदिवा प्रमाण मुभयाबिलम्बि तद्ज्ञानम्
तस्मादाश्रणीय केषाञ्चित् स नय प्रसगत्वात्
अपि सविकल्पानाभिव नश्रेयो निर्विकल्प बोधवताम्

अर्थ — वस्तु मे विवाद होने पर अथवा किसी प्रकार का सशय होने पर अथवा वस्तु का स्वरूप समझने के लिए व्यवहार नय भी अनिवार्य रूप से मानना आवश्यक है।

इसलिये व्यवहार नय का भी आश्रय-सहारा लेना पडेगा किंतु इतना अवश्य है कि जो निर्विकल्प समाधि मे लग चुके हैं आत्म रूप मे लीन हो चुके हैं उनके लिए व्यवहार नय उपयोगी नही है। किन्तु जो अपरम भाव मे है और सविकल्प बोध वाले हैं उनके लिए व्यवहार नय उपयोगी है। यही बात समयसार मे कही गई है।

विषय है पदार्थ की यथार्थता दोनो मे है। पचाध्यायी के आगे के श्लोको मे यह सिद्ध किया गया है कि निश्चय और व्यवहार दोनो ही उपयोगी है। निरपेक्ष कोई भी नय सत्य नही है। दोनो मे एक साध्य एक साधक है।

जैन दर्शनाचार्य-श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का पंचाध्यायी ग्रन्थराज के
विषय मे उठाई गई सैद्धान्तिक शकाओ
का सप्रमाण समाधान निरूपक

अ दस ा ध्य

श्री पचाध्यायी ग्रन्थराज के कर्ता (रचयिता)
कौन हो सकते हैं ? अर्थात् शब्द शैली
भाव शैली गम्भीर विवेचन आदि
तुलनाओ से आचार्य मुकुट
अमृतचन्द्र जी सूरि हो
सकते है इसका
तुलनात्मक
समर्थन

पचाध्यायी के कर्ता सहेतुक कौन हो सकते हैं ?

श्री ग्रन्थराज पचाध्यायी के बनाने वालो का ठीक निर्णय तो हमारे सामने नही है। पचाध्यायी ग्रन्थ ही अधूरा है ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ को पांच अध्यायो मे पूरा करने का सकल्प किया था जैसा कि पचाध्यायी के मगलाचरण मे पहले ही श्लोक मे उन्होने दो बातो का स्पष्टीकरण कर दिया है—

पचाध्यायावयव मम कर्तुर्ग्रन्थराज मात्म वशात्
अर्थालोक निदान यस्य वचस्त स्तुवे महावीरम्

अर्थ — अपनी बुद्धि के अनुसार मैं इस ग्रन्थराज को पाच अध्यायो मे बनाना चाहता हू। पदार्थो के प्रकाश के कारण श्री १००८ भगवान

महावोर स्वामी के वचन है अत मैं उन्ही भगवान महावीर स्वामी का स्तवन करता हूँ।

इस श्लोक से ग्रन्थकर्ता ने इस पचाध्यायी ग्रन्थ की रचना पाच अध्यायो मे करने की बलवती इच्छा से इसका नाम पचाध्यायी रक्खा है। परन्तु लिखते हुए बहुत खेद होता है कि केवल डेढ अध्याय बनाने के बाद ग्रन्थकार स्वर्गवासी बन गये होगे ऐसा ही समझा जाता है। डेढ अध्याय के पठन पाठन से सुविज्ञ विद्वानो को द्रव्य निरूपण और सम्यक्त्व निरूपण से जो महान् गभीर एव अपूर्व तत्व रहस्य का सूक्ष्म परिज्ञान होता है उसे जानकर यह पता सहज लग जाता है कि यदि इस ग्रन्थ के पाच अध्यायो की रचना हो जाती तो महान् सूक्ष्म तत्वो का और सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का अतीव विशद स्वरूप स्वाध्याय करने वालो के हृदय को प्रफुल्लित एव आह्लादित कर देता भगवान महावीर स्वामी की जिनवाणी के प्रकाश मे इस पचाध्यायी की सकल्प साध्य रचना को ग्रन्थराज के नाम से ग्रन्थकर्ता ने स्वय पहिले से ही घोषित कर दिया है।

डेढ अध्याय की रचना से ही इस ग्रन्थ का महत्व सर्वोपरि माना जाता है। इसीलिये इसके कर्ता की जिज्ञासा विद्वानो को होती है। कर्ता कोई भी हो हम सबो को तो पदार्थ बोध से प्रयोजन है फिर भी कर्ता के अन्वेषण (खोज) से ग्रन्थ का प्रामाण्य एव गौरव विशेप रूप से हृदय मे स्थान पाता है तथा अधिक श्लाघ्य होता है। जिस प्रकार सभी आचार्यो के वचन प्रमाणीक है किन्तु भगवत्कु दकु द स्वामी के बचन अधिक श्लाघ्य माने जाते हैं। वक्तृ प्रमाणात् वचन प्रमाणम् वक्ता के प्रमाण से उनके वचनो का मूल्य आका जाता है।

वैसे तो लाटी सहिता के कर्ता श्रीमत्कवि प० राजमल्ल जी की रचना भी प्रमाण है। जो रचना पूर्वाचार्यों के वचनो के अनुकूल हो वह भलेही श्रावक विद्वान की हो प्रमाण है, वीतराग महर्षियो के वचनो मे तो पूर्ण प्रमाणता है किन्तु श्रावक विद्वान की रचना यदि

पूर्वाचार्यो के वचनो से प्रतिकूल हो तो वह अप्रमाण है।

लाटी सहिता को चारित्र प्रतिपादक प्रमाण ग्रन्थ माना जाता है यदि उसके कर्ता कवि पडित राजमल्ल जी पचाध्यायी के कर्ता सिद्ध होते हो तो हमे कोई विरोध नही है। किन्तु कवि राजमल्ल जी की रचना शैली तथा भाव गाम्भीर्य एव शब्द गौरव पचाध्यायी से सर्वथा भिन्न है जैसा भाव गम्भीर्य भाव सूक्ष्मता एव तत्वो का वैशिष्ट्य और शब्द सौष्ठुव आदि बातें पचाध्यायी मे है वैसा लाटी सहिता मे नही है इन्ही सब भेद सूचक हेतु वाद के द्वारा पचाध्यायी के कर्ता प० राजमल्ल जी नही ठहरते है किन्तु आचार्य मुकुट अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध होते हैं। इस बात की सिद्धि मे हम नीचे लिखे हेतु वाद पूर्ण प्रमाण देते हैं।

पचाध्यायी के कर्ता प० राजमल जी नहीं हो सकते हैं

श्रीमत्पडित राजमल जी कवि ने सस्कृत के कई ग्रन्थ बनाये है उनके नाम बताये है- (१) लाटी सहिता (२) जम्बू स्वामी चरित्र (३) पिगल शास्त्र (४) आध्यात्म कमल मार्तण्ड। इनके अतिरिक्त उनका बना हुआ और भी कोई ग्रन्थ होगा उसका नामोल्लेख प्रकट नही हैं।

(१) श्री प० राजमल जी कवि थे गृहस्थ थे उन्होने अपने बनाये गए ग्रन्थो मे अपने नाम का सर्वत्र उल्लेख किया है। और कौन ग्रन्थ उन्होने किसके लिये अथवा किस के निमित्त से बनाया इस बात का भी सभी ग्रन्थो मे उल्लेख किया है। प्रमाण इस प्रकार है—

लाटी सहिता मे उन्होने अपने निवास नगर का वर्णन, हुमायू अकबर बादशाहो का वर्णन, भट्टारको का वर्णन प्रारम्भ के सत्तर श्लोको मे लिखा है। फिर जिस फामन सेठ की प्रार्थना पर यह लाटी सहिता ग्रन्थ प० राजमल जी ने बनाया है उसका वर्णन ११ श्लोको मे किया है। यह लाटी सहिता सात अध्यायो मे उन्होने पूरी की है इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त मे उन्होने यह लिखा है-

इति श्री स्याद्वादान वद्य गद्य पद्य विद्या विशारद विद्वत्मणि राजमल्ल विरचिताया श्रावकाचारापरनाम लाटी सहितायाँ साधु श्री दूदात्मज फामन मन सरोजार विन्द विकाशनैकमार्तंड मडलायमानाया सामायिक प्रतिमाद्येकादश प्रतिमा पर्यन्त वर्णन नाम सप्तम सर्ग. ।

अर्थात् स्याद्वाद विद्या विशारद विद्वत्मणि राजमल विरचित श्रावकाचार अपर नाम लाटी सहिता मे श्री दूदा के पुत्र फामन के मन कमल को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य के समान ग्यारह प्रतिमा पर्यन्त वर्णन करने वाला यह सातवा सर्ग (अध्याय) समाप्त हुआ। इसी प्रकार की पक्तिया प्रत्येक अध्याय मे उन्होने लिखी है। परन्तु पचाध्यायी जैसे महान ग्रन्थराज मे ग्रन्थकर्ता का कही भी नामोल्लेख नही है। यदि पचाध्यायी ग्रन्थ प० राजमल जी का बनाया होता तो उनके बनाये हुए अन्य ग्रन्थो के समान पचाध्यायी ग्रन्थ मे भी वे अपना नामोल्लेख अवश्य करते।

(२) लाटी सहिता के तीसरे अध्याय मे सम्यग्दर्शन का कथन है उसके वर्णन मे प० राजमल जी ने गोम्मटसार आदि कई शास्त्रो के गाथा और श्लोक रख दिये हैं। पचाध्यायी के तो सम्यग्दर्शन के स्वरूप विवेचक अनेक श्लोक लाटी सहिता मे रख दिये हैं। किंतु उसी प्रकरण मे जहा उनकी निजी लेखनी है वहा पर उन्होने बहुत मोटा कथन किया है। प्रमाण के लिये देखिये—

लाटी सहिता के पृष्ठ ११७ मे श्लोक १३७, १३८ मे उन्होंने यह लिखा हैं–

"यदि अविरत सम्यग्दृष्टि के ही दर्शन प्रतिमा मानली जाय तो फिर उसके पाचवा गुण स्थान ही मानना पडेगा। क्योकि प्रतिमायें सब पाचवे गुण स्थान मे ही होती हैं। तथा अविरत सम्यग्दृष्टि के पाचवा गुण स्थान मानने से फिर चौथा गुण स्थान कोई बन ही नहीं सकेगा इस प्रकार चौथे गुण स्थान का अभाव ही मानना पड़ेगा।"

इस प्रकार इसी प्रकरण मे आगे भी शका समाधान रूप मे बहुत मोटा कथन है। उन्होने यही तो लिखा है कि अविरत सम्यक दृष्टि के पाचवा गुण स्थान मान लिया जाय तो चौथे गुण स्थान का अभाव हो जायगा। इस कथन से शका का समाधान नही हो पाता है शकाकार कह सकता है कि चौथे गुण स्थान का अभाव होता है तो होने दो। उन्हे हेतु एव प्रमाण देना था कि चौथे गुण स्थान मे अप्रत्याख्यान कषाय का उदय है वह सयम रूप चारित्र के होने मे वाधक है। मूल गुणो के पालन मे भी अतीचार निरतीचार आदि का भेद है। यह सब हेतुवाद एव प्रमाण नही देकर केवल यह समाधान कि चौथे गुण स्थान का अभाव हो जायगा बहुत मोटा (स्थूल) कथन है।

पचाध्यायी का सभी वर्णन अत्यन्त गम्भीर सहेतुक एव अति सूक्ष्म है। लाटी सहिता मे सभी कथन सरल और स्थूल है। इसलिये प० राजमल जी की विद्वत्ता मे और पचाध्यायी के कर्ता की विद्वत्ता मे बहुत बडा अन्तर है। इससे हम प० राजमल जी का अपमान करना नही चाहते हैं। उन्हे हम उच्च कोटि का विद्वान और सिद्धातज्ञ मानते हैं उनकी रचना को प्रमाण मानते हैं। किन्तु लाटी सहिता के कर्ता पचाध्यायी के कर्ता सिद्ध नही हो सकते है। इसी बात को सिद्ध करने के लिए वस्तु स्थिति का दिग्दर्शन हमको करना पडा है।

(३) पचाध्यायी के श्लोक ४७६ तक लाटी सहिताकार ने सम्यग्दर्शन प्रकरण के लाटी सहिता मे रख लिए हैं आगे पचाध्यायी मे सम्यग्दर्शन का और भी जो विशद कथन है उसे लाटी सहिता मे नही लिया है। उन्होने स्पष्ट लिखा है कि—

एव मित्यादि सत्यार्थं प्रोक्त सम्यकत्व लक्षणम्
कैश्चिल्लक्षणिकैं सिद्धै प्रसिद्ध सिद्ध साधनात्

(लाटी सहिता श्लो० १२०)

अर्थ — इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार जो सम्यग्दर्शन का लक्षण

कहा है वही यथार्थ लक्षण है। वही लक्षण समस्त लक्षणो के जानकार किन्ही सिद्ध पुरुपो ने कहा है और यही लक्षण हेतुवाद से सिद्ध होता है।

प० राजमल जी की स्वीकारोक्ति

श्रीमत्पण्डित राजमल जी अतीव सरल प्रकृति के विद्वान थे उन्होने ऊपर का श्लोक लिखकर यह स्पष्ट कर दिया है कि सम्यग्दर्शन प्रकरण के श्लोक हेतुवाद सहित है और समस्त लक्षणो के जानकार किन्ही सिद्ध पुरुपो ने कहे है। पचाध्यायीकार का नाम नही मिलने से उन्हे ऐसा कहना पडा। इस श्लोक के आगे उन्होने चारित्र का वर्णन प्रारम्भ कर दिया है। वास्तव मे लाटी सहिता, सग्रहीत सहिता ग्रन्थ है और चारित्र का ही निरूपक है। सम्यग्दशन के प्रकरण मे पचाध्यायी के श्लोक उन्होने रख लिये है इसी प्रकार लाटी सहिता के पेज २३२।२३३ मे गोमटसार की गाथाओ के उद्धरण उन्होने दिये है।

इसी प्रकार पेज २३६ मे भी गोमटसार की गाथा दी गई है। पेज २४१ मे पुरुपार्थ सिद्धपाय का श्लोक दिया गया है। २४५ पेज मे फिर गोमटसार की गाथा दी गई। बीच बीच मे अन्य शास्त्रो के प्रमाण भी लाटी सहिताकार ने लाटी सहिता मे रख दिये है। जिस प्रकरण मे जो भी किसी शास्त्र का प्रमाण उन्हे मिला है उसे उसमे रख दिया है।

तत्वार्थ सूत्र के अनेक सूत्र

श्री प० राजमल जी ने पाचवे और छठे अध्याय के तत्वार्थ सूत्र के २३ सूत्र रख दिये है। तो क्या तत्वार्थ सूत्र प० राजमल जी का बनाया हुआ समझा जाय ? नही समझा जाता है तो पचाध्यायी के सम्यग्दशन प्रकरण के कुछ श्लोक लाटी सहिता मे रख देने से पचाध्यायी के कर्ता प० राजमल जी माने जाय क्या ? नही माने जासकते है।

रत्नकरड श्रावकाचार के श्लोक भी वीच मे दिये गये है अन्य श्रावकाचारो के भी प्रमाण रख दिये गये हैं। इन प्रमाणो के सकलन से लाटी सहिता ग्रन्थ की प्रमाणता और विशुद्धता सिद्ध होती है साथ ही प० रामलाल जी की आगम निष्ठा सिद्ध होती है। किंतु इन प्रमाणो से यह भी भलीभाति सिद्ध हो जाता है कि पचाध्यायी के कर्ता प० राजमल जी नही हैं उन्होने तत्वार्त्रसूत्र आदि ग्रन्थो के सकलन के समान पचाध्यायी के श्लोको का भा सग्रह ला-ी सहिता मे किया है।

जबू स्वामी चरित मे भी इतिहास परिचय

श्री प० राजमल जी सत्कवि ने दूसरा ग्रन्थ जवू स्वामी चरित लिखा है उसमे १३ सर्ग है। यह ग्रन्थ टोडर साहु के निमित्त से लिखा गया है ऐसा भी उन्होने उल्लेख किया है। इतना ही नही किन्तु लाटी सहिता के समान इस ग्रन्थ मे भी काष्ठा सघी भट्टारक के आम्नायी गर्ग गोत्री अग्रवाल आदिका परिचय भी साहु टोडर का दिया है। साथ ही भट्टारको की गुरु शिष्य परम्परा का भी उल्लेख किया है। अकवर वादशाह का वर्णन तो कई स्थलो पर किया गया है। इस इतिहास रचना मे प० राजमल जी ने पूरा समय और शक्ति लगाई है।

इससे यह विदित होता है कि प० राजमल जी अपनी प्रत्येक ग्रन्थ रचना मे अपनी विद्वता के परिचय के साथ किसके निमित्त से कौन ग्रन्थ बनाया उस समय कौन वादशाह और भट्टारक थे इत्यादि इतिहास अवश्य लिखते हैं परन्तु पचाध्यायी मे सिवा तत्व निरूपण के कोई दूसरी वात नही है इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पचाध्यायी के कर्ता प० राजमल जी नही हैं।

इस ग्रन्थ मे भी इतिहास

प० राजमल जी ने तीसरा ग्रन्थ पिंगल शास्त्र-छन्दो विद्या नाम का वनाया है। यह सस्कृत प्राकृत एव अपभ्र श और हिन्दी

कहा हे वही यथार्थ लक्षण हे। वही लक्षण समस्त लक्षणो के जानकार किन्ही सिद्ध पुरुपो ने कहा है और यही लक्षण हेतुवाद से सिद्ध होता हे।

प० राजमल जी की स्वीकारोक्ति

श्रीमत्पण्डित राजमल जी अतीव सरल प्रकृति के विद्वान थे उन्होने ऊपर का श्लोक लिखकर यह स्पष्ट कर दिया है कि सम्यग्दर्शन प्रकरण के श्लोक हेतुवाद सहित है और समस्त लक्षणो के जानकार किन्ही सिद्ध पुरुपो ने कहे हैं। पचाध्यायीकार का नाम नही मिलने मे उन्हे ऐसा कहना पडा। इस श्लोक के आगे उन्होने चारित्र का वणन प्रारम्भ कर दिया है। वास्तव मे लाटी सहिता, सग्रहीत सहिता ग्रन्थ है और चारित्र का ही निरूपक है। सम्यग्दशन के प्रकरण मे पचाध्यायी के श्लोक उन्होने रख लिये हैं इसी प्रकार लाटी सहिता के पेज २३२।२३३ मे गोमटसार की गाथाओ के उद्धरण उन्होने दिये हैं।

इसी प्रकार पेज २३६ मे भी गोमटसार की गाथा दी गई है। पेज २४१ मे पुरुपार्थ सिद्धयुपाय का श्लोक दिया गया है। २४५ पेज मे फिर गोमटसार की गाथा दी गई। बीच बीच मे अन्य शास्त्रो के प्रमाण भी लाटी सहिताकार ने लाटी सहिता मे रख दिये है। जिस प्रकरण मे जो भी किसी शास्त्र का प्रमाण उन्हे मिला हैं उसे उसमे रख दिया है।

तत्वार्थ सूत्र के अनेक सूत्र

श्री प० राजमल जी ने पाचवे और छठे अध्याय के तत्वार्थ सूत्र के २३ सूत्र रख दिये है। तो क्या तत्वार्थ सूत्र प० राजमल जी का बनाया हुआ समझा जाय ? नही समझा जाता है तो पचाध्यायी के सम्यग्दशन प्रकरण के कुछ श्लोक लाटी सहिता मे रख देने से पचाध्यायी के कर्ता प० राजमल जी माने जाय क्या ? नही माने जासकते हैं।

इन चार भाषाओ मे लिखा गया है। इसकी रचना भूपाल भारमल्ल के निमित्त से हुई है। प० राजमल जी ने लिखा है कि ये श्रीमाल जाति के थे प्रसिद्ध व्यापारी थे तथा नागौरी तपागच्छ आम्नाय के थे। उस समय भट्टारक हर्ष कीर्ति पट्टाधीश थे। आदि।

चौथा ग्रन्थ-अध्यात्म कमल मार्तण्ड

इस ग्रन्थ की रचना से भी पचाध्यायी के कर्ता प० राजमल जी नहीं हैं यह भलीभाति सिद्ध हो जाता है।

इस अध्यात्म कमल मार्तण्ड मे प० राजमल जी ने १० वें श्लोक मे स्वय यह श्लोक लिखा है—

जीवाजीवादि तत्व जिनवरगदित गौतमादि प्रयुक्त
बक्र ग्रीवादि सूक्त सद-त विधु सूर्यादिगीत यथावत्
तत्व ज्ञान तथैव स्व पर भिदमिल द्रव्य भावार्थ दक्षभू
सदेहादि प्रमुक्त व्यवहरण नयात् सविदुक्त दृगादि
(अध्यात्म कमल मार्तण्ड)

अर्थात् जो जीव अजीव आदि तत्व जिनेन्द्र भगवान ने कहे है और गौतमादि गणधर देवो ने जिनकी रचना की है तथा कुदकुद स्वामी आदि आचार्यो ने जिन तत्वो का विस्तार से वर्णन किया है और आचार्य अमृतचन्द्र सूरि आदि ने जिन जीव अजीव आदि तत्वो का विशद गुण वर्णन– गभीर तत्व विवेचन किया है वह तत्व ज्ञान स्व-पर का भेद ज्ञान करा देता है। निर्मल है। द्रव्य और उनके गुणो के अर्थ प्रकट करने मे समर्थ है। सशय विपर्यय अनध्यवसाय इन मिथ्या ज्ञानो से रहित है ऐसा सम्यग्दर्शन पूवक सम्यज्ञान व्यवहार नय से कहा जाता जाता है। अनन्त गुणात्मक अखण्ड पिड एव अभिन्न वस्तु मे भेद कथन करना व्यवहार नय का विषय है।

इस श्लोक मे आचार्य कुदकुद स्वामी और आचार्य अमृतचन्द्र सूरि का विशेप रूप से उल्लेख किया गया है। आचार्य कुदकुद

स्वामी तो सर्वोपरि परम निर्मल विशुद्धात्मा है ही। उनके समयसार आदि ग्रन्थो के टीकाकार कुशाग्र बुद्धि एव अत्यन्त स्फुट, सूक्ष्म एव गम्भीर विवेचक आचार्य अमृतचन्द्र सूरि हैं। आचार्य अमृतचन्द्र सूरि के विशुद्ध पाडित्य की छाप एव प्रभाव प० राजमल जी पर पडा है। ऐसा उनके ऊपर के श्लोक से विदित होता है। और यह भी अनुमान होता है कि पचाध्यायी ग्रन्थ की रचना शैली को हृदयगम करके प० राजमल जी ने पचाध्यायी के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि को ही समझा हो। ऐसा नीचे लिखे हेतुओ से हम समझते हैं-

पंचाध्यायी की रचना पहले या पीछे

सबसे पहले विचारणीय बात यह है कि पचाध्यायी ग्रन्थ की रचना प० राजमल जी के द्वारा बनाये गये लाटी सहिता आदि ग्रन्थो के पहले हुई है या उन ग्रन्थो के पीछे हुई है ? यदि पचाध्यायी ग्रन्थ की रचना, लाटी सहिता आदि ग्रन्थो से पीछे हुई मानी जाय और प० राजमल जी द्वारा रची गई मानी जाय तो यह प्रश्न खडा होता है कि अपने अन्य ग्रन्थो के समान इस पचाध्यायी मे अपना परिचय, जिसके निमित्त से यह ग्रन्थ बनाया गया, भट्टारक एव बादशाह आदि का किसी प्रकार का कोई परिचय या उल्लेख प० राजमल जी ने क्यो नही किया ? जैसा कि वे प्रत्येक अपने ग्रन्थ मे करते आये हैं।

दूसरी बात यह है कि उन्होने प्रत्येक ग्रन्थ के खण्ड रूप अध्याय नियत किये है। जैसे लाटी सहिता मे ७ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे केवल ८७ श्लोक हैं दूसरे मे २१६, तीसरे मे १६८, चौथे मे ३२१, पाचवे मे २७२, छटे मे २४६ सातवें अध्याय मे ८६ श्लोक हैं।

अध्याय कमल मार्तण्ड ग्रन्थ मे कुल ८१ श्लोक हैं जिन्हे प० राजमल जी ने चार अध्याय मे पूरा किया है। परन्तु पचाध्यायी ग्रन्थ मे १६१३ श्लोक सख्या है। इतनी बडी श्लोक सख्या होने पर भी उसमे कोई अध्याय नही है। हमने पचाध्यायी की टीका

बनाते समय पहला अध्याय ७६८ श्लोको मे और दूसरा ११४५ श्लोको मे प्रकरण भेद से मानकर लिख दिया है यदि इस ग्रन्थ के रचयिता प० राजमल जी होते तो वे इस ग्रन्थ मे अनेक अध्याय रखते। प्रत्येक अध्याय मे इसमे भी अन्य ग्रन्थो के समान अपना नाम देते, भट्टारको एव बादशाहो के नाम भी अवश्य देते परन्तु पचाध्यायी मे किसी का भी नामोल्लेख, इतिहास एव अध्याय आदि का कोई उल्लेख नही है अत प० राजमल जी की रचना शैली से पचाध्यायी निराली सर्वथा भिन्न है।

तीसरी बात यह है कि पचाध्यायी ग्रन्थ की रचना लाटी सहिता अध्यात्म कमल मार्तंड आदि प० राजमल जी द्वारा रचित ग्रन्थो से पीछे की (अतिम) और उन्ही के द्वारा रचित मानी जाती है तो इस प्रश्न का क्या समाधान होगा कि पचाध्यायी के केवल सम्यग्दर्शन प्रकरण के कुछ श्लोक लाटी सहिता मे क्यो रक्खे गये है ? और अध्यात्म कमल मार्तंड ग्रन्थ की रचना पचाध्यायी ग्रन्थ की तत्व कथनी के समान फिर क्यो की जाती ? कोई भी ग्रन्थकार अपने द्वारा रचित ग्रन्थ के उद्धरण अपने दूसरे ग्रन्थ मे नही देते हैं और एक ग्रन्थ की रचना के अनुरूप छायावाद जैसी रचना दूसरा ग्रन्थ बनाकर पुनरावृत्ति नही करते है।

अध्यात्म कमल मार्तण्ड मे पचाध्यायी का भाव लिया गया है। प्रमाण के लिये देखिये—

पचाध्यायी मे पृष्ठ १३४ श्लोक ४६९ मे लिखा है-

अस्ति चात्म परिच्छेदि ज्ञान सम्यग्दृगात्मन
स्व सवेदन प्रत्यक्ष शुद्ध सिद्धास्पदोपमम्

अर्थ — सम्यग्दृष्टि का ज्ञान आत्मा का अनुभव करता है सम्यग्दृष्टि को स्वसवेदन (आत्मानुभव) होता है वह प्रत्यक्ष और शुद्ध है। तथा सिद्ध पद की उपमा वाला है।

अध्यात्म कमल मार्तंड मे पृष्ठ १० श्लोक ९ मे लिखा है—

निश्चत्येतीह सम्यगविगत सकल दृग्मोहभाव स जीव
सम्यग्दृष्टिर्भवेन्निश्चय नय कथनात् सिद्धकल्पश्च किञ्चित्
यद्यात्मा स्वात्मतत्वे स्तिमितनिलिखिलभेदैकता नो वभाति
साक्षात् सद्दृष्टिरेवाय मथ विगतरागश्च लोकैकपूज्य

अर्थ — जिस आत्मा का समस्त दर्शन मोहनीय कर्म नष्ट हो गया है वह निश्चय नय से सम्यग्दृष्टि है वह सिद्ध परमात्मा के समान है और वह आत्मा यदि समस्त सकल्प विकल्प रूप भेद जाल से रहित होकर स्वात्म तत्व (अपने स्वरूप मे) स्थिर होता है वह सम्यग्दृष्टि रागभाव (अनन्तानुवधी रागभाव) से रहित होता हुआ लोक मे अद्वितीय पूज्य है।

अध्यात्म कमल मार्तण्ड के इस श्लोक के शब्दो पर और भाव पर ध्यान देने से तथा पचाध्यायी के ऊपर के श्लोक पर ध्यान देने से स्पष्ट रूप से यह विदित हो जाता है कि दोनो का एक ही भाव है। दोनो मे स्वस्वरूप सवेदन और सिद्ध पद के समान पद समान हैं। यदि पचाध्यायी कर्ता भी प० राजमल जी होते तो भिन्न छन्द मे दुवारा वही वात नही लिखते। और भी ऐसे श्लोक है जिनमे पचाध्यायी और अध्यात्म कमल मार्तण्ड का भाव समान है। इससे यह अनुमान सहज होता है कि पचाध्यायी की रचना पर प० राजमल जी मुग्ध एव अत्यन्त प्रभावित थे, इसलिये उन्होने अपनी लाटी सहिता मे सम्यग्दर्शन के प्रकरण के अनेक श्लोक पचाध्यायी के ज्यो के त्यो रख दिये हैं। अन्य ग्रन्थो के प्रमाण भी उन्होने दिये हैं। वे सरल परिणामी सत्कवि थे। द्रव्य गुण पर्याय के प्रकरण मे अनेक श्लोक ऐसे हैं जो पचाध्यायी और अध्यात्म कमल मार्तण्ड मे समान एव एक भाव वाले है जैसे–

अध्यात्म कमल मार्तण्ड मे पृष्ठ ३५ श्लोक २० इस प्रकार है–

सद्रव्य सच्चगुण सत्पर्याया स्वलक्षणाद्भिन्ना
तेपामेकास्तित्व सर्व द्रव्य प्रमाणत सिद्धम्

पचाध्यायी मे श्लोक ७५ इस प्रकार है–

नहि किञ्चित्सद्द्रव्य केचित्सन्तो गुणा प्रदेशाश्च
केचित्सन्ति तदशा द्रव्य तत्सन्निपाताद्वा

उक्त दोनो ग्रन्थो केश्लोको का भाव यही है कि द्रव्य गुण पर्याये भिन्न भिन्न नही है किन्तु द्रव्य गुण पर्याय तीनो का एक अखण्ड पिंड तादात्म्य रूप अभिन्न द्रव्य है।

इस उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पचाध्यायी के द्रव्य प्रकरण के श्लोको के आधार पर अध्यात्म मार्तंड मे प० राजमल जी ने अपनी स्वतत्र रचना की है। पचाध्यायी का द्रव्य प्रकरण बहुत विस्तृत है उसी मे से सारभूत थोडा सा अश उन्होने ग्रहण कर मार्तंड रचा है।

पंचाध्यायी ग्रन्थ पहले का है

पचाध्यायी ग्रन्थ प० राजमल जी की लाटी सहिता आदि सभी ग्रन्थो की रचना से पहले का है इसके अनुसार द्रव्य प्रकरण और सम्यग्दर्शन प्रकरण के श्लोक और उनका भाव पडित जी ने अपने ग्रन्थो मे लिखा है। पचाध्यायी और कवि प० राजमल जी के ग्रन्थो का पूरा स्वाध्याय एव मनन करने से यह बात अच्छी तरह से सिद्ध हो जाती है। लाटी सहिता मे पृष्ठ ८८ मे २६वे श्लोक के वाद उक्त च ऐसा लिखकर गोमट्टसार का एक गाथा दिया है उसके आगे श्लोक न० २८ से लेकर श्लोक न० ११६ तक पचाध्यायी के श्लोक रख दिये है। जो पचाध्यायी मे श्लोक न० ३७२ से लेकर ४७६ तक है। कुल ६३ श्लोक है। लाटी सहिता मे जहा २६वें श्लोक के वाद उक्त च- लिखा है वहा ११६वें श्लोक के वाद प० राजमल जी ने १२०वे श्लोक मे स्पष्ट लिखा है कि–

ऐवमित्यादि सत्यार्थ प्रोक्त सम्यक्त्वलक्षणम्
कैश्चिल्लक्षणिकै सिद्धै प्रसिद्ध सिद्ध सावनात्

(लाटी सहिता श्लोक १२० सर्ग ३)

अर्थ – इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार सम्यग्दर्शन कहा है वही यथार्थ लक्षण है। वही लक्षण समस्त लक्षणो के जानकार किन्ही सिद्ध पुरुपो ने कहा है और यही लक्षण हेतुवाद से सिद्ध होता है।

इस श्लोक से प० राजमल जी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जो सम्यग्दर्शन का लक्षण है वह किन्ही प्रसिद्ध पुरुषो ने कहा है जो सम्यग्दर्शन के लक्षण को जानने वाले हैं। ऊपर के श्लोक मे "प्रोक्त" पद दिया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि प० राजमल जी ने पचाध्यायी से वे श्लोक उद्धृत किये हैं और पचाध्यायी के कर्ता का नामोल्लेख नही मिलने से उन्होने "किन्ही सिद्ध पुरुषो ने कहा है" ऐसा खुलासा कर दिया है।

पंचाध्यायी के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध होते है

पचाध्यायी ग्रन्थराज की शब्द रचना और भाव भगी आदि का मनन करने से यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थराज के कर्ता आचार्य वर्य अमृतचन्द्र सूरि हैं। भगवत्कुदकुद स्वामी के रचे हुए ग्रन्थ–समय प्राभृत, प्रवचनसार और पचास्तिकाय के मुख्य सस्कृत वृत्तिकार आचार्य वर्य अमृतचन्द्र सूरि हैं। उन्होने उन ग्रन्थो के तत्वसार को लेकर पचाध्यायी ग्रन्थ की स्वतन्त्र रचना की है। ऐसा नीचे लिखे श्लोको एव गाथाओ के भाव मय सारांश एव शब्द रचना से प्रतीत होता है। कतिपय गाथाओ मे एव श्लोको की तुलना एव समानता के उद्धरण इस प्रकार है–

एस सुरासुर मणुसिद वदिद धोइ घाइ कम्म मल
पणमामि वड्डमाण तित्थ धम्मस्स कत्तार
ऐसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्ध सब्भावे
समणेय णाण दसण चरित्त तव वीरिया चारे

(प्रवचनसार)

इन दो गाथाओ मे भगवान महावीर स्वामी को, शेष तीर्थंकर और सिद्धो को तथा साधुओ को नमस्कार किया गया है पचाध्यायी

पचाध्यायी मे श्लोक ७५ इस प्रकार है-

नहि किञ्चित्सद्द्रव्य केचित्सन्तो गुणा प्रदेशाश्च
केचित्सन्ति तदशा द्रव्य तत्सन्निपाताद्वा

उक्त दोनो ग्रन्थो केश्लोको का भाव यही है कि द्रव्य गुण पर्याये भिन्न भिन्न नही हैं किन्तु द्रव्य गुण पर्याय तीनो का एक अखण्ड पिंड तादात्म्य रूप अभिन्न द्रव्य है ।

इस उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पचाध्यायी के द्रव्य प्रकरण के श्लोको के आधार पर अध्यात्म मार्तंड मे प० राजमल जी ने अपनी स्वतत्र रचना की है। पचाध्यायी का द्रव्य प्रकरण वहुत विस्तृत है उसी मे से सारभूत थोडा सा अश उन्होने ग्रहण कर मार्तंड रचा है ।

पचाध्यायी ग्रन्थ पहले का है

पचाध्यायी ग्रन्थ प० राजमल जी की लाटी सहिता आदि सभी ग्रन्थो की रचना से पहले का है इसके अनुसार द्रव्य प्रकरण और सम्यग्दर्शन प्रकरण के श्लोक और उनका भाव पडित जी ने अपने ग्रन्थो मे लिखा है। पचाध्यायी और कवि प० राजमल जी के ग्रन्थो का पूरा स्वाध्याय एव मनन करने से यह बात अच्छी तरह से सिद्ध हो जाती है । लाटी सहिता मे पृष्ठ ८८ मे २६वे श्लोक के बाद उक्त च ऐसा लिखकर गोमट्टसार का एक गाथा दिया है उसके आगे श्लोक न० २८ से लेकर श्लोक न० ११९ तक पचाध्यायी के श्लोक रख दिये है । जो पचाध्यायी मे श्लोक न० ३७२ से लेकर ४७६ तक है । कुल ९३ श्लोक हैं। लाटी सहिता मे जहा २६वें श्लोक के बाद उक्त च- लिखा है वहा ११९वें श्लोक के बाद प० राजमल जी ने १२०वें श्लोक मे स्पष्ट लिखा है कि-

ऐवमित्यादि सत्यार्थ प्रोक्त सम्यक्त्वलक्षणम्
कैश्चिल्लक्षणिकै सिद्धै प्रसिद्ध सिद्ध साधनात्

(लाटी सहिता श्लोक १२० सर्ग ३)

अर्थ – इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार सम्यग्दर्शन कहा है वही यथार्थ लक्षण है। वही लक्षण समस्त लक्षणो के जानकार किन्ही सिद्ध पुरुषो ने कहा है और यही लक्षण हेतुवाद से सिद्ध होता है।

इस श्लोक से प० राजमल जी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जो सम्यग्दर्शन का लक्षण है वह किन्ही प्रसिद्ध पुरुषो ने कहा है जो सम्यग्दर्शन के लक्षण को जानने वाले हैं। ऊपर के श्लोक मे "प्रोक्त" पद दिया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि प० राजमल जी ने पचाध्यायी से वे श्लोक उद्धृत किये हैं और पचाध्यायी के कर्ता का नामोल्लेख नही मिलने से उन्होने "किन्ही सिद्ध पुरुषो ने कहा है" ऐसा खुलासा कर दिया है।

पचाध्यायी के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध होते हैं

पचाध्यायी ग्रन्थराज की शब्द रचना और भाव भगी आदि का मनन करने से यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थराज के कर्ता आचार्य वर्य अमृतचन्द्र सूरि हैं। भगवत्कु दकु द स्वामी के रचे हुए ग्रन्थ–समय प्राभृत, प्रवचनसार और पचास्तिकाय के मुख्य सस्कृत वृत्तिकार आचार्य वर्य अमृतचन्द्र सूरि है। उन्होने उन ग्रन्थो के तत्वसार को लेकर पचाध्यायी ग्रन्थ की स्वतन्त्र रचना की है। ऐसा नीचे लिखे श्लोको एव गाथाओ के भाव मय सारांश एव शब्द रचना से प्रतीत होता है। क तिपय गाथाओ मे एव श्लोको की तुलना एव समानता के उद्धरण इस प्रकार हैं–

एम सुरासुर मणुसिद वदिद धोइ धाइ कम्म मल
पणमामि वड्ढमाण तित्थ धम्मस्स कत्तार
ऐसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्ध सब्भावे
समणेय णाण दसण चरित्त तव वीरिया चारे

(प्रवचनसार)

इन दो गाथाओ मे भगवान महावीर स्वामी को, शेष तीर्थंकर और सिद्धो को तथा साधुओ को नमस्कार किया गया है पचाध्यायी

मे जो मगलाचरण है वह इस प्रकार है—

पचाध्यायावयव ममकर्तुं ग्रन्थराज मात्म वशात्
अर्थालोक निदान यस्य वचस्त स्तुवे महावीरम्
शेषानपि तीर्थंकरानन्त सिद्धानह नमामि समम्
धर्माचार्याध्यापक साधु विशिष्टान् मुनीश्वरान् वदे

(पचाध्यायी)

इन दो श्लोको मे श्री भगवान महावीर स्वामी शेप तीर्थंकर अनन्त सिद्ध और साधुओ को नमस्कार किया गया है। दोनो की क्रम से नमस्कार पद्धति एक है।

और भी तुलना पढिये-

ज्ञानिनो ज्ञान निर्वृत्ता सर्वे भावा भवन्तिहि
सर्वेप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिन स्तुने

(नाटक समयसार कलशा)

यस्माद् ज्ञानमया भावा ज्ञानिना ज्ञान निर्वृता
अज्ञानमयभावाना नावकाश सुदृष्टिषु (पचाध्यायी)

समयसार कलश के रचयिता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि है उनका रचा हुआ श्लोक और पचाध्यायी का श्लोक दोनो का भाव भी एक समान है और शब्द भी दोनो के समान हैं। और भी समानता-

चिल्लोक स्वयमेव केवलमय यल्लोकयत्येकक
लोकोयन्न तवापर स्तदपर तस्यापि तन्दी कुत

(नाटक समयसार कलश)

लोकोय मेहि चिल्लौको नून नित्योस्ति सोर्थंत
नापरो लौकिको लोक स्ततो भीति कुतोस्ति मे

(पचाध्यायी)

ऊपर आचार्य अमृतचन्द्र सूरि का श्लोक और पचाध्यायी का श्लोक दोनो का भाव एक है और शब्दो की समानता भी है।
और भी-

निश्चय व्यवहाराभ्या मोक्ष मार्गो द्विधा स्थित
तत्राद्य साध्यरूप स्यात् द्वितीय स्तस्य साधनम्

(तत्वार्थसार)

निश्नयव्यवहाराभ्या मोक्ष मार्गो द्विधा स्थित
अपि निश्चयस्य नियत हेतु सामान्य मात्रमिह वस्तु

(पचाव्यायी)

इन दोनो श्लोको मे भी भाव और शब्द दोनो की समानता है तत्वार्थ सार आ० अमृतचन्द्र सूरि कृत है। और भी-

जो पस्सदि अप्पाण अवद्धपुट्ठ अणण्णय णियद
अविसेस समसजुत्त त सुद्धणय वियाणीहि

(समयप्राभृत)

ज्ञानी ज्ञानैक पात्रत्वात् पश्यत्यात्मान मात्मवित्
वद्ध स्पृष्टाद भावानामस्वरूपादनास्पदम्
अथावद्ध मथाऽपृष्ट शुद्ध सिद्ध पदोपमम्
शुद्ध स्फटिक सकाश नि सग व्योमवत्सदा

(पचाध्यायी)

ऊपर की गाथा की आचार्य अमृतचन्द्र सूरि कृत व्याख्या और पचाध्यायी दोनो का भाव एव शब्द एक रूप है। और भी-

व्यवहारनय स्याद्यद्यपिप्राक्पदव्यामिह निहित पदाना हन्त हस्तावलम्व तदपि परममर्थ चिच्चमत्कार मात्र परविरहितमन्त पश्यता नैव किञ्चित्

(समय प्राभृत टीका)

तस्मादाश्रयणीय केषाश्चित स नय प्रसगत्वात्
अपि सविकल्पानामिव न श्रेयो निर्विकल्प वोधवताम्

(पचाध्यायी)

आचार्य वर अमृतचन्द्र सूरि और पचाध्यायी दोनो का एक ही भाव ऊपर के श्लोक मे है। और भी-

मे जो मगलाचरण है वह इस प्रकार है—

पचाध्यायावय ममकर्तु ग्रन्थराज मात्म वशात्
अर्थालोक निदान यस्य वचस्त स्तुवे महावोरम्
शेषानपि तीर्थंकराननत सिद्धानह नमामि समम्
धर्माचार्याध्यापक साधु विशिष्टान् मुनीश्वरान् वदे

(पचाध्यायी)

इन दो श्लोको मे भी भगवान महावीर स्वामी शेप तीर्थकर अनन्त सिद्ध और साधुओ को नमस्कार किया गया है। दोनो की क्रम से नमस्कार पद्धति एक है।

और भी तुलना पढिये—

ज्ञानिनो ज्ञान निर्वृत्ता सर्वे भावा भवन्तिहि
सर्वेप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिन स्तुने

(नाटक समयसार कलशा)

यस्माद् ज्ञानमया भावा ज्ञानिना ज्ञान निर्वृता
अज्ञानमयभावाना नावकाश सुदृष्टिषु (पचाध्यायी)

समयसार कलश के रचयिता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि हैं उनका रचा हुआ श्लोक और पचाध्यायी का श्लोक दोनो का भाव भी एक समान है और शब्द भी दोनो के समान हैं। और भी समानता—

चिल्लोक स्वयमेव केवलमय यल्लोकयत्येकक
लोकोयन्न तवापर स्तदपर तस्यापि तन्दी कुत

(नाटक समयसार कलश)

लोकोय मेहि चिल्लौको नून नित्योस्ति सोर्थत
नापरो लौकिको लोक स्ततो भीति कुतोस्ति मे

(पचाध्यायी)

ऊपर आचार्य अमृतचन्द्र सूरि का श्लोक और पचाध्यायी का श्लोक दोनो का भाव एक है और शब्दो की समानता भी है। और भी—

निश्चय व्यवहाराभ्या मोक्ष मार्गो द्विधा स्थित
तत्राद्य साध्यरूप स्यात् द्वितीय स्तस्य साधनम्
(तत्वार्थसार)

निश्चयव्यवहाराभ्या मोक्ष मार्गो द्विधा स्थित
अपि निश्चयस्य नियत हेतु सामान्य मात्रमिह् वस्तु
(पचाध्यायी)

इन दोनो श्लोको मे भी भाव और शब्द दोनो की समानता है तत्वार्थ सार आ० अमृतचन्द्र सूरि कृत है। और भी-

जो पस्सदि अप्पाण अवद्धपुट्ठ अणण्णय णियद
अविसेस समसजुत्त त सुद्धणय वियाणीहि
(समयप्राभृत)

ज्ञानी ज्ञानैक पात्रत्वात् पश्यत्यात्मान मात्मवित्
वद्ध स्पृष्टाद भावानामस्वरूपादनास्पदम्
अथावद्ध मथाऽपृ'ट शुद्ध सिद्ध पदोपमम्
शुद्ध स्फटिक सकाश नि सग व्योमवत्सदा
(पचाध्यायी)

ऊपर की गाथा की आचार्य अमृतचन्द्र सूरि कृत व्याख्या और पचाध्यायी दोनो का भाव एव शब्द एक रूप है। और भी-

व्यवहारनय स्याद्यद्यपिप्राकपदव्यामिह् निहित पदाना हन्त हस्तावलम्व तदपि परममर्थ चिच्चमत्कार मात्र परविरहितमन्त पश्यता नैव किञ्चित्
(समय प्राभृत टीका)

तस्मादाश्रयणीय केपाश्रित स नय प्रसगत्वात्
अपि सविकल्पानामिव न श्रेयो निर्विकल्प वोधवताम्
(पचाध्यायी)

आचार्य वर अमृतचन्द्र सूरि और पचाध्यायी दोनो का एक ही भाव ऊपर के श्लोक मे है। और भी-

सब्भावोहि सहावो गुणेहि सगपज्जयेहिं चित्तेहि
दव्वस्स सव्वकाल उप्पादवय धुवत्तेहि
(प्रवचनसार)

गुणपर्ययवद्द्रव्य लक्षणमेतत्सुसिद्धमविरुद्धम्
गुणपर्यय समुदायो द्रव्य पुनरस्य भवति वाक्यार्थं
(पचाध्यायी)

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की सस्कृत टीका और पचाध्यायी दोनो का भाव एव शब्द साहचर्य समान है।

आचार्य अमृतचन्द्र जी सूरि ने भगवत्कु दकु द स्वामी द्वारा रचे गये समय प्राभृत, प्रवचनसार, पचास्तिकाय ग्रन्थो की सस्कृत टीकाएं वहुत विशद भाष्य रूप मे की है, उन्ही की पूरी झलक (झाकी) पचाध्यायी मे मिलती है। द्रव्य निरूपण एव सम्यग्दर्शन की महत्ता पर जो भाव और शब्द शैली आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने अपनी भाष्यात्मक सस्कृत टीकाओ मे प्रकट की है वह भाव और वही शब्द शैली इस पचाध्यायी मे पाई जाती है। इससे यह वहुत खुलासा हो जाता है कि पचाध्यायी के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध होते हैं और भी अनेक उद्धरण दिये जाने योग्य हैं किन्तु अधिक तुलनात्मक उद्धरण देने से ग्रन्थ विस्तार होगा।

श्री प० फूलचन्द्र जी शास्त्री भी समर्थन करते हैं

श्री प० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने जो पचाध्यायी की हिंदी टीका लिखी है उसकी प्रस्तावना मे उन्होने भी यही सिद्ध किया है कि आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की तत्व निरूपण की भाव शैली और शब्द शैली इस पचाध्यायी ग्रन्थ मे पाई जाती है उनकी पक्तिया इस प्रकार है–

'यदि हम आचार्य कु दकु द के ग्रन्थ रत्नो का इस पचाध्यायी को भाष्य कहे तो कोई अत्युक्ति नही होगी। इस ग्रन्थ मे अथ से लेकर इति तक जितने भी विषय निवद्ध किये गये है उन सव पर न

केवल समय प्राभृत, प्रवचनसार और पचारित काय की छाप है अपितु वे सब या तो उन ग्रन्थो का शब्दश अनुसरण करते हैं या उक्त ग्रन्थो का साराश लेकर प्रस्तुत ग्रन्थ का कलेवर पुष्ट किया गया है। यहा कुछ ऐसे उल्लेख उपस्थित किये जाते हैं जिनसे उक्त अभिप्राय की पुष्टि होती है।"

(प्रस्तावना पचाध्यायी प० फूलचन्द जी कृत)

ऊपर की पक्तियो मे मनन पूर्वक लिखे गये शब्दो से बहुत ही खुलासा हो जाता है कि पचाध्यायी की रचना आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की कृति है। इसके आगे उक्त शास्त्री जी ने आचार्य अमृतचन्द्र सूरि और पचाध्यायी के अनेक प्रमाण ऐसे दिये हैं जिनसे पचाध्यायी की रचना और आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की रचना समान हैं। इन सब उल्लेखो से यह भी अनुमान होता है कि अनेक शास्त्रो की सस्कृत टीका लिखने के बाद उन्होने अन्त मे सारभूत इस पचाध्यायी की रचना स्वतन्त्र की है और बहुत विस्तृत गभीर एव सूक्ष्म तत्वो का तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र आदि का निरूपण वे पाच अध्यायो मे करने का सकल्प अवश्य पूरा करते तब स्वाध्यायशील जिज्ञासुओ को महान् अपूर्व लाभ मिलता परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि पूज्य त्यागियो विद्वानो आदि को वह लाभ नही मिल सका, ग्रन्थकार इस मर्त्यलोक को छोडकर स्वर्गलोक को प्रस्थान कर गये।

सत्कवि प० राजमल जी की जितनी भी रचनायें है वे सरल शब्दो मे हैं सरल भाव मे हैं। उनकी रचना से पचाध्यायी की रचना की तुलना या समानता किसी प्रकार नही हो सकती है।

और भी समानता के उदाहरण

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने लिखा है—

"जीयाज्जैनी सिद्धान्त पद्धति" (पचास्तिकाय टीका)

"जीयाजैन शासन मनादि निधनम्" (पचाध्यायी)

"अनन्तधर्मण स्तत्व पश्यन्ती प्रत्यगात्मन अनेकान्तमयी मूर्ति"
(नाटक समयसार कलश)

इति विन्दन्निह तत्व जैन स्यात्कोपि तत्ववेदीति
अर्थात्स्यात्स्याद्वादी तदपरथा नाम सिहमाणवक (पचाध्यायी)

जयत्यशेप तत्वार्थ प्रकाशि (तत्वार्थसार)
अर्थालोक निदान यस्य वच (पचाध्यायी)
तज्जयति पर ज्योति (पुरुषार्थसिद्धुपाय)
ज्ञानानन्दात्मने नम (पचाध्यायी)

उपर्युक्त वाक्यो मे आचार्य अमृतचद्र सूरि का तत्व विवेचन और पचाध्यायी का तत्व विवेचन समान मिलता है। और भी स्पष्ट समानता नीचे लिखे श्लोको से सिद्ध होती है–

रत्नत्रय मिद हेतु र्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य
आस्रवति यत्तु पुण्य शुभोपयोगोयमपराध
येनाशेन सुदृष्टि तेनाशेनास्य बधन नास्ति
येनाशेन तु राग तेनाशेनास्य बधन भवति
येनाशेन ज्ञान तेनाशेनास्य बधन नास्ति
येनाशेन तु राग तेनाशेनास्य बधन भवति
(पुरुषार्थ सिद्धुपाय)

यत्पुन श्रेयसो बधो वन्धश्चाऽश्रेयसोपि वा
रागा द्वा द्वेपतो मोहात् स स्यान्नोपयोगसात्
पाकाच्चारित्रमोहस्य रागोस्त्यौदयिक स्फुटम्
सम्यक्त्वे स कुतो न्यायात् ज्ञानेवानुदयात्मके
व्याप्तिर्वन्धस्य रागाद्यैर्नाऽव्याप्ति विकल्पैरिव
विकल्पै रस्य चाव्याप्तिन व्याप्ति किल तैरिव
(पचाध्यायी)

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि के पुरुपार्थ सिद्धुपाय के श्लोको का

तथा नीचे के पचाध्यायी के श्लोको सर्वथा (बिलकुल) एक ही भाव है दोनो मे यह बताया गया है कि जितना भी पुण्य बध है वह राग के कारण से होता है रत्नत्रय से तो बध कभी नही हो सकता है। अर्थात् पुण्य बध मोक्ष प्राप्ति मे परपरा सहायक है किन्तु मोक्ष प्राप्ति तो रत्नत्रय से होगी। रत्नत्रय से बध नही होता है। उसके साथ मे होने वाले राग से ही पुण्य बध होता है। यह भाव आ० अमृतचन्द्र सूरि के श्लोको का और पचाध्यायी के श्लोको का बिलकुल एक ही है। इस कथन से सर्वथा सिद्ध होता है कि पचाध्यायी के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि है।

सभी विद्वान सहमत हैं

एक बात बडे महत्व की यह है कि पुरुषार्थ सिद्धुपाय तथा तत्वार्थसार इन ग्रन्थो मे उनके कर्ता का नामोल्लेख नही है तो भी जैन विद्वान इन ग्रन्थो को स्वामी अमृतचन्द्र सूरि कृत ही मानते है यह निर्विवाद बात है। विना नामोल्लेख के उक्त ग्रन्थो के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि हैं ऐसा सभी विद्वान् किस आधार से मानते हैं इसका सरल समाधान यही है कि समय प्राभृत, प्रवचनसार, पचास्तिकाय ग्रन्थो की सस्कृत टीकाओ द्वारा जो तत्वो का निरूपण जिस रचना मे किया गया है वही रचना शैली और तत्व विवेचन उक्त ग्रन्थो मे पाया जाता है इसलिये उक्त ग्रन्थो को आचार्य अमृतचद सूरि की कृति मानली गई हैं। ठीक यही बात यही आधार यही रचना शैली एव तत्व निरूपण पद्धति पचाध्यायी मे है अत यह पचाध्यायी ग्रन्थ आचार्य अमृतचन्द्र सूरि का बनाया हुआ है। ऐसा निर्णय सहेतुक एव यथार्थ प्रतीत होता है।

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने प्रत्येक ग्रन्थ मे उत्पाद व्यय ध्रौव्य गुण पर्याय, प्रमाण निश्चय नय व्यवहार नय और अनेकान्त कथन की ही सर्वत्र प्रधानता रक्खी है वह बात उनके ग्रन्थो और सस्कृत टीकाओ स भली भाँति जानी जाती है। ठीक इसी प्रकार पचाध्यायी

मे उत्पादादि त्रय, गुण पर्याय प्रमाण नय एव अनेकान्त की प्रधानता है अत यह पचाध्यायी ग्रन्थ आ० अमृतचन्द्र सूरि ने रचा है। वे ही इसके कर्ता है यह सिद्ध होता है।

सूरि शब्द का उल्लेख

इस पचाध्यायी मे कई श्लोको मे सूरि शब्द का प्रयोग भी पाया जाता है जैसे "इति प्रोचे सूरि" ऐसे वाक्य कई स्थलो मे मिलते है। किंतु लाटी सहिता अध्यात्म कमल मार्तंड आदि प० राजमल जी कृत ग्रन्थो मे किसी भी श्लोक मे सूरि पद का उल्लेख नही मिलता है। इसलिये भी पचाध्यायी के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध होते है।

सबसे पहले पचाध्यायी ग्रन्थराज का पठन पाठन शास्त्रो के मर्मज्ञ श्रीमत्पडित बल्देवदास जी ने किया था, उन्होने इस ग्रन्थराज को हमारे गुरुवर प० गोपालदास जी बरैया को पढावा था उक्त दोनो प्रख्यात एव उद्भट विद्वानो का भी यही मत था कि यह पचाध्यायी आचार्य अमृतचन्द्र सूरिकी रचना है। सरस्वती दिवाकर धर्मरत्न प० लालाराम जी शास्त्री का भी वही मत था। अहर्निश स्वाध्यायशील अनुभवी विद्वान् श्री ब्र० सुरेन्द्रनाथ जी अधिष्ठाता उदासीनाश्रम ईसरी आदि विद्वानो का भी यही मत है।

श्री प० जुगलकिशोर जी के अभिमत पर बिचार

श्री पचाध्यायी ग्रन्थराज की सुबोधिनी टीका बनाते समय हमने उसकी भूमिका मे ग्रन्थकर्ता के सम्बन्ध मे कुछ प्रमाण ऐसे दिये है जिनसे पचाध्यायी के कर्ता आ० अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध होते है अब उसकी द्वितीया वृत्ति प्रकाशित हो चुकी है। इसलिये उसके कर्ता के सम्बन्ध मे कई विद्वानो से हमने पूछताछ की, धर्म दिवाकर श्री प० सुमेरचन्द्र जी दिवाकर न्यायतीर्थ शास्त्री ने लिखा है कि व्यावर के सरस्वती भण्डार की प्रति मे कर्ता का सकेत हो सकता है,

हमने व्यावर पत्र देकर श्री प० हीरालाल जी सिद्धात शास्त्री से वहा की प्रति मगाकर देखी उसमे कोई सकेत नही मिला, वीर सेवा मडल देहली को पत्र देकर वहा जो भी सामग्री पचाध्यायी के कर्ता के विपय मे हो कृपया भेज दीजिये ऐसा लिखा, उत्तर मे श्री पडित परमानन्द जी शास्त्री ने लिखा कि श्री प० जुगलकिशोर जी मुखतार ने पचाध्यायी के कर्ता के विपय मे जो अपना सविस्तार अभिमत प्रगट किया है वह श्री प० राजमल जी कृत अध्यात्मक मल मार्तड की प्रस्तावना मे छपा है उसे देखिये। वह ग्रन्थ मुरेना महाविद्यालय के सरस्वती भवन मे है। उसे हमने आद्योपान्त ध्यान से पढा। श्री प० जुगलकिशोर मुखतार की प्रस्तावना मे पचाध्यायी के कर्ता श्री प० राजमल जी को वताया गया है। उन्होने अपने अन्वेपण (खोज) मे रचना शैली आदि युक्तियो से वैसा ही अभिमत प्रगट किया है। अन्य किसी विद्वान् ने इस विपय पर अपना विचार प्रगट नही किया है किन्तु जिनके जो भी लेख हमारे देखने मे आये उन सवो मे २।३ विद्वानो ने मुखतार साहव के अभिमत का ही उल्लेख किया है कि श्री प० जुगलकिशोर जी ऐसा मानते है। प० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने पचाध्यायी की स्वरचित टीका की प्रस्तावना मे वहुत विस्तार से सिद्ध तो यह किया है कि पचाध्यायी की भावभगी और शब्द शैली आचार्य अमृतचन्द्र जी सूरि की रचना से मिलती है उसकी सिद्धि मे अनेक श्लोक एव गाथाओ के उद्धरण भी दिये है किन्तु केवल एक पक्ति मे यह लिख दिया है कि– पचाध्यायी के कर्ता पहले आचार्य अमृतचन्द्र माने जाते थे किन्तु श्री प० जुगलकिशोर जी मुखतार के लेख से प० राजमल जी उसके कर्ता माने गये हैं। अपनी मान्यता के विरुद्ध प० फूलचदजी शास्त्री ने मुखतार सा० का आदर रखने के लिये ऐसा लिख दिया है।

मुखतार सा० की खोज से उनके मत की सिद्धि नही होती है

यदि प० जुगलकिशोर जी मुखतार सा० के लेख मे ऐसी कोई

निश्चयात्मक वात होती कि पचाध्यायी के कर्ता प० राजमल जी कवि हैं तो वैसा मानने मे हमे कोई मतभेद नही होता, परन्तु उनके लेख मे जो युक्तिया उन्होने दी है उनसे प० राजमल जी पचाध्यायी के कर्ता सिद्ध नही होते है मुखतार सा० की खोज की दो चार वाते इस प्रकार है–

अध्यात्म कमल मार्तण्ड की प्रस्तावना के पृष्ठ २३ मे मुखतार सा० की पक्तिया ये है–

पचाध्यायी का प्रारम्भ या तो लाटी सहिता से कुछ पहले हो गया था और उसे वीच मे रोक कर लाटी सहिता लिखी गई है।'

इन पक्तियो से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुखतार साहब पचाध्यायी की रचना लाटी सहिता से पहले की मानते हैं। किन्तु वे इसका निर्णय नही कर सके है। पहले की रचना मानने से यह तो सिद्ध होता है कि पचाध्यायी ग्रन्थ से लेकर लाटी सहिता मे प० राजमल जी ने उद्धरण दिये है। दूसरी बात यह उनकी नही जचती है कि पचाध्यायी पहले रची गई है और बीच मे ही उसे रोक कर लाटी सहिता लिखी गई है। एक ग्रन्थ की रचना करते हुए ग्रन्थकार उसे वीच मे ही रोक देवे और दूसरा ग्रन्थ लिखने लग जाय।

आगे मुखतार सा० ने एक श्लोक पचाध्यायी का ४७७वा ननु सद्दर्शनस्यैतल्लक्षण– देकर यह लिखा है कि– "ऐसी हालत मे नही कहा जासकता कि उक्त पद्य न० ४७७ पचाध्यायी से उठाकर लाटी सहिता मे रखा गया है वल्कि सहिता से उठाकर वह पचाध्यायी मे रक्खा हुआ जान पडता है।"

(अध्यात्म कमल मार्तण्ड पृष्ठ २४)

इन पक्तियो से भी वे स्वय सन्देह मे पड गये है तभी तो "जान पडता है" ऐसा वाक्य उन्होने लिख दिया है।

आगे मार्तण्ड के पृष्ठ ३५ मे मुखतार सा० ने लिखा है–

"लाटी सहिता मे कठिन पदो तथा लम्बे२ दुरूह समासो का

प्रयोग न करके सरल पदो व मृदु समासो तथा उक्तियो द्वारा श्रावक धर्म का सग्रह किया गया है।

यही बात हमने पहले लिखदी है कि लाटी सहिता मे सरल शब्द और सरल भाव है और पचाध्यायी मे गम्भीर एव सूक्ष्म कथन है। इसलिये लाटी सहिता के कर्त्ता पचाध्यायी के कर्त्ता नही हो सकते है।

दूसरी बात यह है कि लाटी सहिता श्रावकाचार ग्रन्थ है मुखतार सा० भी ऐसा ही लिखते हैं किंतु पचाध्यायी द्रव्य गुण पर्याय प्रमाण नय और सम्यग्दशन का प्रतिपादक महान् ग्रन्थ है इसलिये दोनो की तुलना एव एक कर्त्ता की रचना दोनो को कहना किसी प्रकार नही सिद्ध होता है।

आ० अमृतचद्र सूरि कर्ता है ऐसी विद्वानो की धारणा है

श्री प० जुगलकिशोरजी मुखतार ने मार्तण्ड के पृष्ठ १०/११ मे लिखा है कि—

"आज से अनेक वर्प पूर्व जब स्व० प० गोपालदासजी बरैया की कृपा से जैन विद्वानो मे पचाध्यायी नामक ग्रन्थ के पठन पाठन का प्रचार हुआ उस समय लोगो की यह मान्यता (धारणा) होगई थी कि यह ग्रन्थ आ० अमृतचन्द्र सूरि की रचना है,

इन पक्तियो से यह खुलासा होजाता है कि प्राय सभी प्रसिद्ध विद्वान् पचाध्यायी ग्रन्थ को आ० अमृतचद्र सूरि की रचना मानते है इसे मुखतार सा० स्वय लिख रहे हैं।

इसके आगे मुखतार सा० ने अपनी बात की पुष्टि नही होने पर लिखा है कि—

"परतु यह देखकर बडा खेद होता है कि मेरे उक्त लेख के कोई आठ वप बाद सन् १९३२ मे जब प० देवकीनदनजी ने पचाध्यायी की अपनी टीका को कारजा आश्रम से प्रकाशित कराया तब यह

जानते मानते और पत्रो द्वारा मेरी उस कर्तृत्व विपयक खोज को स्वीकार करते हुए तथा वह आश्वासन देते हुए भी कि उसके अनुरूप ही ग्रन्थ कर्ता का नाम टीका के साथ प्रकाशित किया जायगा अपनी उस टीका को बिना ग्रन्थ कर्ता के नाम के ही प्रकाशित कर दिया,,

मुखतार सा० की ऊपर की पक्तियो को ध्यान पूर्वक पढने से यह खुलासा होजाता है कि स्व० प० देवकीनदनजी को बहुत जोर देकर मुखतार सा० ने उनकी टीका की भूमिका मे पचाध्यायी के कर्ता प० राजमलजी है ऐसा उनसे लिखवाने की प्रेरणा की थी जैसा कि उनके आगे दिये हुए पत्र व्यवहार से सिद्ध होता है उन्होने प० देवकी नदनजी से आश्वासन भी ले लिया था। फिर भी प० जी ने पचाध्यायी के कर्ता प०राजमलजी है ऐसा उल्लेख अपनी टीका मे नही किया इससे यह बात हर कोई समझ सकता है कि प० जुगलकिशोरजी के बार बार लिखने पर भी प० देवकीनदनजी ने अपनी मान्यता के विरुद्ध लिखना उचित नही समझा। शिष्टता के नाते उन्होने आश्वासन देदिया। इसका मूल कारण यह है कि जिन गुरु गोपालदास जी बरैया तथा उनके गुरु प० बल्देवदासजी और शिष्य न्यायाचार्य प० माणिकचदजी प्रभृति सभी प्रख्यात विद्वानो ने कथन शैली एव भाव सामजस्य आदि से पचाध्यायी का कर्त्ता आ० अमृतचद्र सूरि को ही माना है।यही प० देवकीनदनजी का मत था।

समय भेद से कर्त्ता का अनुमान

श्री प० जुगलकिशोरजी महोदय ने अध्यात्म कमल मार्तण्ड की प्रस्तावना मे वसुनदि श्रावकाचार की "सवेओणिव्वेओणिदणगरुहा,, यह गाथा लिखकर यह बताया है कि यही गाथा पचाध्यायी मे सम्यग्दर्शन के प्रशम सवेगादि अष्ट गुणो के प्रकरण मे उद्धृत की गई है। इससे मुखतार सा० ने यह सिद्ध करना चाहा है कि आचार्य वसुनदि १२ वी शताब्दि के बाद मे हुए हैं अत पचाध्यायी की

रचना १२ वी शताब्दि के बाद मे हुई है इसलिये यह पचाध्यायी आचार्य अमृतचद्र सूरि की कृति नही हो सकती है।

परतु उनकी यह खोज निर्णीत रूप मे नही है आनुमानिक है क्योकि वसुनदि श्रावकाचार जो भारतीय ज्ञान पीठ काशी से प्रकाशित हुआ है उसका सपादन श्री प० हीरालालजी न्यायतीर्थ सिद्धान्त शास्त्री ने किया है। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना मे सम्पादक महोदय ने आचार्य वसुनदि के समय के विषय मे इस प्रकार लिखा है—

"अत प्रश्न यह उठता है कि आचार्य वसुनदि को नयनदि द्वारा दीगई परपरा मे से कौन से नदि अभीष्ट है ? मेरे विचार से रामनदि के लिये ही आ० वसुनदि ने श्रीनदि लिखा है। क्योकि जिन विशेपणो से नयनदि ने रामनदि का स्मरण किया है ये प्राय वसुनदि द्वारा श्रीनदि के लिये दिये गये विशेपणो से मिलते जुलते हैं।,,

इन पक्तियो से आचार्य वसुनदि के समय का निर्णयात्मक समय निश्चित नही होता है। क्योकि- 'मेरे विचार से प्राय वसुनदि द्वारा श्रीनदि के लिये दिये गये विशेपणो से मिलते जुलते हैं। ये सभी वाक्य अन्वेपणात्मक (खोज) है निश्चयात्मक समय सूचक नही है।

आगे इसी वसुनदि श्रावकाचार की प्रस्तावना मे लिखी हुई ये पक्तिया भी सदेहात्मक है—

"वसुनदि ने जिन शब्दो मे अपने दादा गुरु का प्रशसा पूर्वक उल्लेख किया है उससे ऐसा अवश्य ध्वनित होता है कि वे उनके सामने विद्यमान रहे है यदि यह अनुमान ठीक हो तो बारहवी शताब्दि का प्रथम चरण वसुनदि का समय माना जा सकता है। यदि वे उनके सामने विद्यमान नही भी रहे हो तो भी प्रशिष्य के नाते वसुनदि का काल बारहवी शताब्दी का पूर्वार्ध ठहरता है।,,

इन पक्तियो से भी सदेह की निवृत्ति नही होती है ध्वनित होना, सामने विद्यमान होना या नही होना, आदि वाक्य आचार्य

वसुनदि के समय के निर्णयात्मक एव निश्चयात्मक सूचक नही कहे जा सकते है ।

इस अवस्था मे श्री प० जुगलकिशोरजी मुखतार का यह मानना और लिखना कि आचार्य वसुनदि १२वी शताब्दि मे हुए हैं अत पचाध्यायी उनके बाद की रचना है । अत आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की रचना नही है यह सिद्ध नही होता है । किन्तु हमने जो हेतु इस प्रकरण मे दिये है और रचना शैली एव तत्व विवेचनात्मक भाव सामजस्य का निर्देश किया है उससे आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ही पचाध्यायी के कर्ता सिद्ध होते है ।

श्री प० जुगलकिशोर जी ने और भी अनेक ग्रन्थो की समालोचना या समीक्षा की है । कई आचार्यो का समय भेद बताकर उनके विषय मे भी अपना अभिमत प्रगट किया है । हमारा बहुत बडा मतभेद होने पर भी हमने न तो उस समय उस सम्बन्ध मे कुछ लिखा और न अब कुछ लिखना चाहते है । जिन विद्वानो की जैसी समझ या धारणा हो वैसा वे समझे या माने । पचाध्यायी ग्रन्थराज की अभी दूसरी बार आवृत्ति प्रकाशित हो रही है इसलिये पचाध्यायी के कर्ता के सम्बन्ध मे हमने उसकी प्रथम आवृत्ति के प्रकाशन मे भी सहेतुक लिखा था, उसके बाद मुखतार सा० ने अपने लेख मे लाटी सहिता के कर्ता श्री प० राजमल जी को ही पचाध्यायी का कर्ता बताया है । परन्तु उनका लेख पढकर उनका अभिमत हमे जचा नही, इसलिये पचाध्यायी के इस द्वितीय प्रकाशन मे पचाध्यायी के कर्ता के विषय मे अपना सहेतुक अभिमत प्रगट करना हमने आवश्यक समझा है ।

लाटी सहिता और पचाध्यायी का मनन पूर्वक अध्ययन करने वाले विद्वान् स्वय अनुभव करेगे कि पचाध्यायी ग्रन्थराज के कर्ता कौन हो सकते है ? सहेतुक एव सयुक्तिक, हमारे अनुभव मे जो जचा

हे वह हमने लिखा है। इस विपय मे सिद्धान्त विरोध की तो कोई वात नहीं है। आचार्य मुकुट अमृतचन्द्र सूरि जैसे प्रामाणिक महान् आचार्यरत्न हैं वैसे उनके आगम पथ का अनुसरण करने वाले कवि-रत्न प० राजमल जी भी प्रामाणिक हैं।

जैन दर्शनाचार्य-श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का पंचाध्यायी ग्रन्थराज के
कर्ता कौन हो सकते है ? इस तुलनात्मक
विवेचन का निरूपण करने वाला

अथ ग्यारहवां अध्याय

श्री पचाध्यायी ग्रन्थराज की अन्य विद्वान की बनाई गई हिन्दी टीका मे मूल ग्रन्थ का परिवर्तन तथा वर्ण जाति व्यवस्था द्रव्य पूजा और शासन देवो का निषेध आदि आगम विरुद्ध स्वतत्र विचारो के कथन का सहेतुक एव सप्रमाण प्रतिवाद

पंचाध्यायी की प० फूलचन्द जी की हिन्दी टीका मे शास्त्र विरोध

पचाध्यायी की एक हिन्दी टीका श्री प० फूलचन्द जी सिद्धात शास्त्री ने लिखी है। उस टीका मे उन्होने अनेक बाते अपने निजी मन्तव्यो की लिख दी है। जो शास्त्रो से विरुद्ध हैं। किसी भी शास्त्र की टीका उस शास्त्र के आशय के अनुसार ही लिखना चाहिये। अपने स्वतन्त्र विचारो को उसमे लिख देना नितान्त अनुचित एव अनाधिकार है। इतना ही नही किन्तु स्वाध्याय करने वालो के लिए वह प्रतारण है। श्रीमत्सरस्वती दिवाकर धर्मरत्न पूज्य प० लालाराम जी शास्त्री (हमारे सहोदर वडे भ्राता) ने लगभग सो सवासो शास्त्रो की हिन्दी टीकायें लिखी हैं वे सभी छप चुकी हैं। उन्होने अपनी सभी टीकाओ मे मूल ग्रन्थ के विरुद्ध एक वाक्य भी नही लिखा है वे कहते

अथ ग्यारहवां अध्याय

श्री पचाध्यायी ग्रन्थराज की अन्य विद्वान की बनाई गई हिन्दी टीका मे मूल ग्रन्थ का परिवर्तन तथा वर्ण जाति व्यवस्था द्रव्य पूजा और शासन देवो का निषेध आदि आगम विरुद्ध स्वतत्र विचारो के कथन का सहेतुक एव सप्रमाण प्रतिवाद

पंचाध्यायी की पं० फूलचन्द जी की हिन्दी टीका मे शास्त्र विरोध

पचाध्यायी की एक हिन्दी टीका श्री प० फूलचन्द जी सिद्धात शास्त्री ने लिखी है। उस टीका मे उन्होने अनेक बातें अपने निजी मन्तव्यो की लिख दी है। जो शास्त्रो से विरुद्ध हैं। किसी भी शास्त्र की टीका उस शास्त्र के आशय के अनुसार ही लिखना चाहिये। अपने स्वतन्त्र विचारो को उसमे लिख देना नितान्त अनुचित एव अनाधिकार है। इतना ही नही किन्तु स्वाध्याय करने वालो के लिए वह प्रतारण है। श्रीमत्सरस्वती दिवाकर धमरत्न पूज्य प० लालाराम जी शास्त्री (हमारे सहोदर वडे भ्राता) ने लगभग सौ सवासौ शास्त्रो की हिन्दी टीकायें लिखी है वे सभी छप चुकी है। उन्होने अपनी सभी टीकाओ मे मूल ग्रन्थ के विरुद्ध एक वाक्य भी नही लिखा है वे कहते

ये कि शास्त्र के मूल अर्थ के विरुद्ध लिखना अपराध है। हमने भी पचाध्यायी, तत्वार्थ राजवार्तिक, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय शास्त्रो की हिन्दी टीकाये लिखी है उनमे मूल ग्रन्थ के विरुद्ध एक वाक्य भी नही लिखा है। आजकल ग्रन्थ के प्रारम्भ मे जो आद्य वक्तव्य लिखा जाता है उसमे भी ग्रन्थ के विरुद्ध आलोचनात्मक, समन्वयात्मक एव अपने अन्वेषणात्मक विचारो को भर देते है ऐसे अनेक शास्त्र छप चुके हैं जिनमे मूल ग्रन्थ से दूनी प्रस्तावना लिख दी गई है। उसमे मूल ग्रन्थ के सिद्धान्तो के विरुद्ध आलोचना की गई है। यह पद्धति हानिकारक है तथा स्वाध्याय करने वालो को भ्रमशील बना देती है या विपरीत दशा मे ले जाती है। भूमिका भले ही दुगुनी चौगुनी हो वह ग्रन्थाशय के अनुकूल होनी चाहिये, किन्तु उस ग्रन्थ को ही अप्रामाणिक ठहराने वाली तो नही होनी चाहिये।

श्री प० फूलचन्द जी शास्त्री ने जो पचाध्यायी की हिन्दी टीका लिखी है उसमे उन्होने स्वतन्त्र विचारो का समावेश ऐसा किया है जो शास्त्रो एव आचार्य वचनो को ही अन्यथा एव अप्रमाणिक ठहराता है। उदाहरण के लिए हम उक्त शास्त्री जी के स्वतन्त्र बिचारो की कुछ बाते दिग्दर्शन रूप बता देते है-

पचाध्यायी की अपनी टीका के उत्तरार्ध मे ग्रन्थ के सर्वथा विपरीत ही विशेषार्थ मे वेद प्रकरण मे उन्होने लिखा है। उनकी पक्तिया इस प्रकार है-

भाव वेद जीवन मे एक ही रहता है बदलता नही है ऐसे उदाहरण तो मिलते हैं जिनसे द्रव्य वेद का बदलना सिद्ध होता है।"

(उनकी टीका पेज ३२८)

आगे इसी पेज मे फिर कहा गया है कि- "अत भाव वेद जीवन मे नही बदलता"

इस सन्बन्ध मे उन्होने द्रव्य वेद बदलने के कई उदाहरण दिये है बहुत लम्बा लेख है उसे उनकी पचाध्यायी की टीका मे देख लेना

चाहिये। इस द्रव्य वेद के बदलने की सिद्धि के लिए गोम्मटसार के सस्कृत टीकाकार को ही ऊट-पटाग मनमानी लेखक उन्होने बता दिया है। उनकी पक्ति इस प्रकार हैं—

"गोम्मटसार की टीकामे तो पद पद पर इस विषय मे बहुत स्खलन दिखाई देता है। आगम परम्पराओ मे मनुष्यनी का अर्थ द्रव्य मनुष्यनी और तिरक्ख जोणिणी का अर्थ द्रव्य तिर्यचनी नही देखने को मिलता है। किन्तु गोम्मटसार के सस्कृत टीकाकार पूर्वा पर सम्बन्ध को भूलकर ऊट पटाग जो मन मे आया सो लिखते गये"

(उनकी हिन्दी टीका पेज ३२८)

श्री प० फूलचन्द जी शास्त्री का उपर्युक्त लिखना सभी शास्त्रो के विपरीत है। क्योकि दि० जैन धर्म के सर्वार्थ सिद्धि राजवार्तिक, श्लोक वार्तिक तथा धवलादि सिद्धान्त शास्त्र सबो मे भाव वेद बदल सकता है ऐसा ही लिखा है। द्रव्य वेद नही बदलता है। द्रव्य वेद तो जड शरीर की रचना है वह निर्माण कर्म एव अगोपाग नाम कर्म के कारण जैसी बन जाती है वह वैसी रहती है बदलने का कोई कारण ही नही है। हा भाव वेद नो कषाय वेदोदय से होता है वह मनुष्यो की इच्छा से एव रागजनित वासना से बदल भी जाता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

द्रव्यवेद नही बदलता है भाव वेद बदल सकता है

भाव वेद बदल सकता है इसके समर्थक सभी शास्त्र है। इसी पचाध्यायी ग्रन्थ मे लिखा है कि–

केषाञ्चित द्रव्यत साङ्ग पु वेदो भावत पुन
स्त्रीवेद क्लीववेदोवा पु वेदोवा त्रिधापिच
केषाचित् क्लीववेदोवा द्रव्यतो भावत पुन
पु वेदो क्लीववेदोवा स्त्रीवेदोवा त्रिधोचित

थे कि शास्त्र के मूल अर्थ के विरुद्ध लिखना अपराध है। हमने भी पचाध्यायी, तत्वार्थ राजवार्तिक, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय शास्त्रो की हिन्दी टीकाये लिखी है उनमे मूल ग्रन्थ के विरुद्ध एक वाक्य भी नही लिखा है। आजकल ग्रन्थ के प्रारम्भ मे जो आद्य वक्तव्य लिखा जाता है उसमे भी ग्रन्थ के विरुद्ध आलोचनात्मक, समन्वयात्मक एव अपने अन्वेषणात्मक विचारो को भर देते है ऐसे अनेक शास्त्र छप चुके है जिनमे मूल ग्रन्थ से दूनी प्रस्तावना लिख दी गई है। उसमे मूल ग्रन्थ के सिद्धान्तो के विरुद्ध आलोचना की गई है। यह पद्धति हानिकारक है तथा स्वाध्याय करने वालो को भ्रमशील वना देती है या विपरीत दशा मे ले जाती है। भूमिका भले ही दुगुनी चौगुनी हो वह ग्रन्थाशय के अनुकूल होनी चाहिये, किन्तु उस ग्रन्थ को ही अप्रामाणिक ठहराने वाली तो नही होनी चाहिये।

श्री प० फूलचन्द जी शास्त्री ने जो पचाध्यायी की हिन्दी टीका लिखी है उसमे उन्होने स्वतन्त्र विचारो का समावेश ऐसा किया है जो शास्त्रो एव आचार्य वचनो को ही अन्यथा एव अप्रमाणिक ठहराता है। उदाहरण के लिए हम उक्त शास्त्री जी के स्वतन्त्र विचारो की कुछ बाते दिग्दर्शन रूप वता देते है–

पचाध्यायी की अपनी टीका के उत्तरार्ध मे ग्रन्थ के सर्वथा विपरीत ही विशेषार्थ मे वेद प्रकरण मे उन्होने लिखा है। उनकी पक्तिया इस प्रकार हैं–

भाव वेद जीवन मे एक ही रहता है वदलता नही है ऐसे उदाहरण तो मिलते है जिनसे द्रव्य वेद का वदलना सिद्ध होता है।"

(उनकी टीका पेज ३२८)

आगे इसी पेज मे फिर कहा गया है कि– "अत भाव वेद जीवन मे नही वदलता"

इस सन्वन्ध मे उन्होने द्रव्य वेद वदलने के कई उदाहरण दिये है वहुत लम्वा लेख है उसे उनकी पचाध्यायी की टीका मे देख लेना

चाहिये। इस द्रव्य वेद के बदलने की सिद्धि के लिए गोम्मटसार के सस्कृत टीकाकार को ही ऊट-पटाग मनमानी लेखक उन्होने बता दिया है। उनकी पक्ति इस प्रकार है—

"गोम्मटसार की टीकामे तो पद पद पर इस विषय मे बहुत स्खलन दिखाई देता है। आगम परम्पराओ मे मनुष्यनी का अर्थ द्रव्य मनुष्यनी और तिरक्ख जोणिणी का अर्थ द्रव्य तिर्यचनी नही देखने को मिलता है। किन्तु गोम्मटसार के सस्कृत टीकाकार पूर्वा पर सम्बन्ध को भूलकर ऊट पटाग जो मन मे आया सो लिखते गये"
(उनकी हिन्दी टीका पेज ३२८)

श्री प० फूलचन्द जी शास्त्री का उपर्युक्त लिखना सभी शास्त्रो के विपरीत है। क्योकि दि० जैन धर्म के सर्वार्थ सिद्धि राजवार्तिक, श्लोक वार्तिक तथा धवलादि सिद्धान्त शास्त्र सबो मे भाव वेद बदल सकता है ऐसा ही लिखा है। द्रव्य वेद नही बदलता है। द्रव्य वेद तो जड शरीर की रचना है वह निर्माण कर्म एव अगोपाग नाम कर्म के कारण जैसी बन जाती है वह वैसी रहती है बदलने का कोई कारण ही नही है। हा भाव वेद नो कषाय वेदोदय से होता है वह मनुष्यो की इच्छा से एव रागजनित वासना से बदल भी जाता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-

द्रव्यवेद नही बदलता है भाव वेद बदल सकता है

भाव वेद बदल सकता है इसके समर्थक सभी शास्त्र है। इसी पचाध्यायी ग्रन्थ मे लिखा है कि-

केषाञ्चित द्रव्यत साङ्ग पु वेदो भावत पुन
स्त्रीवेद क्लीववेदोवा पु वेदोवा त्रिधापिच
केषाचित् क्लीववेदोवा द्रव्यतो भावत पुन
पु वेदो क्लीववेदोवा स्त्रीवेदोवा त्रिधोचित

कश्चिदापर्ययन्यायात् क्रमादस्ति त्रिवेदवान्
कदाचित् क्लीववेदोवा स्त्रीवा भावात् क्वचित् पुमान्
(पचाध्यायी श्लोक १०९० से १०९७)

इन उपर्युक्त श्लोको का यही अर्थ है कि जो मनुष्य द्रव्यवेद से पुरुप हे तो भी उसका भाववेद पु वेद या स्त्रीवेद या नपु सक वेद हो जाता है। हो ही जाय ऐसा नियम नही है।

इन तीनो श्लोको का अर्थ श्री प० फूलचन्दजी शास्त्री ने अपनी हिदी टीका मे ग्रन्थ के अनुसार ही किया है परन्तु उन श्लोको की टीका मे नीचे विशेपार्थ मे अपने स्वतन्त्र विचार लिख डाले है। जिस ग्रन्थ की वे टीका लिख रहे है उसी ग्रन्थ के सर्वथा विपरीत वाते लिखना अनधिकार एव प्रतारणा है। वे अपने विचार स्वतन्त्र ट्रैकटो मे लिख सकते है परन्तु किसी शास्त्र की टीका मे मनमानी वाते लिखना तो सर्वथा अनुचित है। फिर उन्होने गोम्मटसार के सस्कृत टीकाकार को ऊट पटाग मनमानी लिखने वाला वताया है। सस्कृत टीकाकार ने गोमटसार की मूल गाथाओ के अनुसार ही सस्कृत टीका लिखी है। श्री पडित प्रवर टोडरमल जी ने उसी के अनुसार गोम्मटसार की हिन्दी टीका लिखी है इसलिये प० फूलचन्दजी शास्त्री का ऊट पटाग मनमानी वताने का आक्षेप मूलग्रन्थ कर्ता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती पर भी हो जाता है।

द्रव्य वेद तो शरीर नाम अगोपांग नाम कर्म निर्माण नाम कर्म आदि के उदय से बनता है वह वेद शरीर का ही अग है। उससे आत्मा के भावो मे कोई परिवर्तन नही होता है आजकल द्रव्यवेद वदल जाने की भी चर्चा चल रही है और डाक्टरो के प्रयोग से (आपरेशन) पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुप वना दिया गया है ऐसे भी उदाहरण समाचार पत्रो मे आते हैं परन्तु यह भी भ्रम पूर्ण वात है। द्रव्यवेद नही वदलता है किन्तु शरीर की रचना मे कारणो

की विपमता से विचित्रता होजाती है। जिसका द्रव्य लिंग चिन्ह ऊपर चर्म से ढक जाता है तब म्त्री समझ लिया जाता है किन्तु आपरेशन से उस चर्म को अलग कर देने से द्रव्य लिंग रचना प्रगट होजाती है तो वह पुरुष रूप मे स्पष्ट दीखता है यही दशा स्त्री के चिन्ह की वात है। सिद्धान्त यह है कि एक पर्याय मे शरीर और उसका अगोपाग बदलता नही है अत द्रव्यवेद वदलता नही है। यह सिद्धान्त है।

किन्तु भाववेद मे अनेक प्रकार की विषमता पाई जाती है। देवगति मे जो देवागना है उसके द्रव्यवेद के समान भाववेद भी स्त्रीवेद ही उस पर्याय मे रहता है जो द्रव्यवेद से देव हैं उसका भाववेद भी पुरुषवेद ही रहेगा। देवो मे भाववेद मे विषमता नही है। नारकी सभी द्रव्यवेद और भाववेद से नपु सक ही होते हैं। तिर्यंचो मे एकेन्द्रिय से लेकर चौइ द्रिय तक सभी द्रव्यवेद और भाववेद से नपु सक ही होते है तथा समूर्छन जीव असज्ञीपचेंद्रिय तिर्यंच भी नपु सक वेद वाले ही होते है। सज्ञीपचेंद्रिय समूर्छन मनुष्य भी नपु सक लिंग वाले ही होते हैं किंतु गर्भज तिर्यच और गर्भज मनुष्यो मे द्रव्यवेद और भाववेद मे विषमता भी है।

जो कोई द्रव्य वेद (शरीर रचना) से पुरुष है वह भाववेद से भी पुरुप होता है किन्तु कोई पुरुप द्रव्यवेद से पुरुष है तो भी वह भाववेद से स्त्री वेदी या नपु सक वेद वाला बन जाता है। इसी प्रकार कोई स्त्री द्रव्य वेदी स्त्री होने पर भी भाववेद से भी स्त्री रहती है और कोई द्रव्य स्त्री भाववेद से पुरुष और नपु सक भी हो जाती है। इसी प्रकार नपु सक भी भाववेद से स्त्री या पुरुष वेदी बन जाता है।

इसका कारण यह है कि भाववेद कपायो के उदय की मुख्यता से होता है। कोई पुरुप तो स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा

रखता है कोई पुरुप पुरुष या नपु सक के साथ रमण करना चाहता है। कोई स्त्री पुरुष के साथ रमण करना चाहती है। नपु सक भी पुरुप स्त्री दोनो के साथ रमण करना चाहता है। यह कपायो की तीव्रता और विचित्रता से होता है। राग परिणति की वलवत्ता से ऐसी विपमता होती है। इसलिये मनुष्य पर्याय मे कर्म भूमि मे कही समता और कही विपमता पाई जाती है। इसी वात को पचाध्यायी कार ने कहा है—

रिरसा द्रव्यनारीणा पु वेदस्योदयात्किल
नारीवेदोदयाद्वे द पुसा भोगाभिलाषिता

अर्थ—पुरुष वेद के उदय से स्त्रियो के साथ रमण करने की इच्छा होती है। स्त्रीवेद के उदय से पुरुषो के साथ भोग भोगने की इच्छा होती है।

नाल भोगाय नारीणा नापि पु सा मशक्तित
अन्तर्दग्धोस्तियो भाव क्लीव वेदोदयादिव (पचाध्यायी)

अर्थ—शक्ति रहित होने से जो न तो स्त्रियो के साथ भोग भोग सकता है और न पुरुषो के साथ भोग सकता है किन्तु नपु सक वेद के उदय से भीतर ही भीतर जलता रहता है यह नपु सक भाववेद वाले का भाव रहता है।

आचार्य नेमिचद सिद्धात चक्रवर्ती ने भी यही वात लिखी है-

पुरुसिच्छिसढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसढओ भावे
नामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा
(गोम्मटसार)

अर्थ—पुरुष स्त्री और नपु सकवेद कर्म के उदय से भाव पुरुष भाव स्त्री भाव नपु सक होता है। और नाम कर्म के उदय से द्रव्य पुरुप द्रव्य स्त्री द्रव्य नपु सक होता है। सो यह भाववेद और द्रव्य वेद प्राय. करके समान होता है परन्तु कही २ विषम भी होता है।

अर्थात् वेद कषाय के उदय से जीवो मे भाववेद होता है और निर्माण कर्म, शरीर नाम कर्म तथा अगोपाग कर्म के उदय से द्रव्य वेद होता है। जैसा द्रव्य वेद है वैसा ही भाववेद होता है परन्तु कही कही विषमता भी होजाती है। द्रव्य वेद तो पुरुष वेद रहता है किंतु भाव वेद स्त्रीवेद या नपु सक भी हो जाता है। इसी प्रकार द्रव्य वेद तो स्त्री वेद है किंतु भाव वेद पुरुष वेद अथवा नपु सक वेद भी होजाता है। इसलिये "पाएेण समा कहिं विसमा इस गाथा के अनुसार प्राय तो द्रव्य वेद भाव वेद समान हाता है कही विषम भी होता है।

और भी प्रमाण—

> लिंगेन केन सिद्धि अवेदत्वेन त्रिभ्योवावेदेभ्य सिद्धि
> भावतो न द्रव्यत द्रव्यत पु ल्लिगेनैव,, (सर्वार्थ सिद्धि)
> ये पक्तिया—दशमे अध्याय के क्षेत्र कालगति लिंग तीर्थं—

इस सूत्र की व्याख्या मे आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है। इनका अर्थ यह है कि मोक्ष प्राप्ति अथवा सिद्ध पद किस वेद से होता है तो समाधान मे कहा गया है कि सिद्ध पद विना किसी वेद के होता है। क्योकि भाव वेद का उदय नौवे गुण स्थान तक होता है। आगे नही होता है। अथवा पूर्व नय की अपेक्षा से तीनो वेदो से सिद्ध पद होता है। अर्थात् कोई साधु क्षपक श्रेणी माढता हुआ नौवे गुण स्थान मे पुरुष भाव वेद से सिद्ध होता है कोई साधु स्त्री भाववेद को नौवें मे प्राप्त कर आगे उसे नष्ट कर सिद्ध होता है कोई नौवें मे नपु सक वेद को नष्ट कर सिद्ध पद प्राप्त करता है। इससे यह स्पष्ट है कि भाव वेद वदलता भी है। किंतु आचार्य पूज्य पाद स्वामी यह स्पष्ट करते हैं कि सिद्ध पद पाने वालो का द्रव्य वेद तो पुरुष वेद ही रहता है। द्रव्य स्त्री वेद द्रव्य नपु सक वेद से किसी को कभी मोक्ष की प्राप्ति नही हो सकती है। किंतु भाव वेद तो नौवे तक तीनो ही हो सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि भाव वेद वदल भी जाता है।

और भी प्रमाण–

होति खवा इक समये वोहिय बुद्धा य पुरिस वेदाय
उक्कस्सेणठुत्तरसयपमा सग्गदोय चुदा
पत्तेय बुद्ध तित्थयरत्थिणउसयमणोहिणाम जुदा
दसछक्क वीस दस वीसट्ठावीस जहा कमसो
(गोम्मटसार)

अर्थ–एक समय मे क्षपक श्रेणी वाले जीव अधिक से अधिक कितने होते है इसका उत्तर यह है कि-

वोधित वुद्ध एक सौ आठ। पुरुप वेदी एक सौ आठ। स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्य होकर क्षपक श्रेणी माढने वाले एक सौ आठ। प्रत्येक वुद्धि ऋद्धि के धारक दश। तीर्थंकर छह। स्त्री वेदी बीस। नपु सक वेदी दश। मन पर्यंयज्ञानी बीस। अवधि ज्ञानी अट्ठाईस। आदि।

इन गाथाओ से यह खुलासा हो जाता है कि क्षपक श्रेणी माढने वालो मे पुरुषवेदी स्त्रीवेदी और नपु सक वेदी भी बताये गये है। जब द्रव्य वेद-केवल पुरुष वेद ही सभी मोक्ष प्राप्त करने वालो के होता है तब स्त्री वेदी और नपु सक वेदी भी क्षपक श्रेणी मे क्यो गिनाये गये है इससे वहुत खुलासा हो जाता है कि भाव वेद बदल भी जाता है।

और भी शास्त्र विरुद्ध कथन

पचाध्यायी के श्लोक १०८१ की हिन्दी टीका मे प० फूलचन्द जी ने विशेषार्थ मे लिखा है–

'यहा तीनो वेदो का कार्य बतलाया गया है वह उपचरित कथन है इसे तात्विक मानने मे अनेक दोष आते हैं" "रमण करने की इच्छा रति कर्म का कार्य है वेद का नही।" उनका यह पचाध्यायी के विरुद्ध है देखिये–

पचाध्यायी का श्लोक है–

रिरसा द्रव्य नारीणा पु वेदस्योदयात् किल
नारी वेदोदयाद्वे द पु सा भोगाभिलाषिता
(श्लोक १०८१ पचाध्यायी)

इस श्लोक का स्पष्ट अर्थ यही है कि जो पुरुष है वह स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा करता है जो स्त्री है वह पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा करती है। परन्तु शास्त्री जी अपने विशेषार्थ मे इस कथन को उपचरित कहते हैं और उसे रति कर्म का कार्य वताते हैं। परन्तु उन्हे यह समझ लेना चाहिये कि रमण करने की इच्छा तो भाव वेद का ही कार्य है। रमण करने की इच्छा होने पर भोग भोगते समय राग होना या उस भोग मे आनन्द मानना यह रति कर्म का कार्य है। मुख्य कथन को जो सभी शास्त्रो मे है उप चरित (वास्तव मे नही) कहना शास्त्र विरुद्ध है।

कर्म सिद्धान्त का खन्डन

श्री प० फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री ने कर्म सिद्धान्त का भी खण्डन कर दिया है उन्होने पचाध्यायी ग्रन्थ की ५२ पृष्ठो की अपनी लम्वी प्रस्तावना मे अनेक बाते ऐसी लिख दी है जो उनके स्वतन्त्र विचार है और शास्त्रो से विपरीत हैं। पृष्ठ ४० मे वे लिखते है–

"देखना यह है कि कर्म मे ऐसी योग्यता कहा से आई जिससे वह राग द्वेप रूप परिणति के उत्पन्न करने मे सहायता प्रदान करता है क्या उसमे यह योग्यता पहले से ही मौजूद है या उसे वह शक्ति स्वय जीव के निमित्त से मिली है ? जहा तक उक्त ससार परम्परा के अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कर्म मे ऐसी योग्यता स्वय जीव के निमित्त से आती है यदि जीव मे राग द्वेप परिणति नही हो तव न तो कर्म का ही बध हो सकता है और न ही वह आगामी राग द्वेष रूप परिणति के सर्जन करने मे निमित्त हो सकता है अतएव जीव की

राग द्वेप रूप परिणति और कर्म इन दोनो का परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होने पर भी यही निष्कर्प निकलता है कि यह जीव स्वय अपने अपराध के कारण वधता है और उसका ठीक तरह से ज्ञान होने पर उससे मुक्त हो जाता है।"

(उनकी पचाध्यायी की टीका की प्रस्तावना पृष्ठ ४०)

ऊपर की पक्तियो से यह बात भले प्रकार प्रकट हो जाती है कि कर्म मे आत्मा का विभाव भाव राग द्वेष करने की शक्ति या योग्यता नही है किन्तु जीव मे स्वय वैसी योग्यता है "जीव मे राग द्वेप परिणति न हो तव कर्म वध नही हो सकता है" इस वाक्य से स्पष्ट है कि राग द्वेप परिणति जीव की है। इसी प्रकार अन्तिम पक्ति है– "यह जीव स्वय अपने अपराध के कारण वधता है" इस से भी स्पष्ट है कि जीव का स्वय अपराध ही कर्म बधक है।

जिस प्रकार सोनगढ वाले स्पष्ट रूप से कहते हैं कि कर्म आत्मा का वनाव या विगाड कुछ नही करता है आत्मा की स्वय की योग्यता से ही नरकादि चारो गतियो मे भ्रमण आदि सब कुछ होता हैं वही मन्तव्य प० फूलचन्द जी शास्त्री का है। परन्तु उनका यह मन्तव्य दि० जैन आगम से सर्वथा विपरीत है। तत्वार्थ सूत्र सर्वाथ सिद्धि राजवार्तिक गोम्मटसार, धवल सिद्धान्त, क्षपणासार आदि सभी शास्त्रो मे कर्मवध, उदय, सत्व, उदीरणादि का वर्णन वहुत विस्तार से कहा गया है। कर्मबध होने मे जीव के विभाव भाव और तीनो योग निमित्त हैं। तथा राग द्वेषादि रूप विभाव भाव कर्मोदय से होते है जीव की स्वय शक्ति या जीव की स्वय की योग्यता से नही होते हैं यदि जीव की स्वय की शक्ति या योग्यता से ही कर्मवध एव राग द्वेप होता हो तो वह जीव की शक्ति कौनसी है एव जीव के किस गुण की पर्याय है वह शक्ति नित्य है या अनित्य है। यदि जीव की निजी शक्ति या योग्यता से ही कर्मवध होता है तो सिद्धो मे भी विभाव भाव क्यो नही होता है ? इसका कोई सदुत्तर नही हो सकता

है। स्वर्ण पाषाण मे जो मलिनता है वह खानि मे पाषाण मे मिले रहने से है। मलिनता सोने की योग्यता से नही है। अग्नि मे तपाने पर पापाण के सयोग से उत्पन्न मलिनता दूर हो जाती है तब सोना सौ टच का शुद्ध बन जाता है। यदि सोने की योग्यता से ही मलिनता आती है तो शुद्ध सोना फिर मलिन क्यो नही होता है ? अधिक लिखने से कोई लाभ नही है कर्म का अनुभाग बध एव आवाधा काल को छोडकर उसका विपाक तथा उससे उत्पन्न मिथ्यात्व का उदय अनन्तानु बधी आदि कषायो का उदय सब व्यर्थ ठहरता है और गोमटसार मे जो गुण स्थानो का लक्षण लिखा है कि–

जे हिं दु लक्खिजते उदयादिसु सभवेहि भावेहि
जींवा ते गुणसण्णा णिद्दिठ्ठा सव्व दरसिंहि

अर्थ — कर्मों के उदय उपशम क्षय क्षयोपशम आदि के द्वारा जो जीवो मे विभाव भाव और स्वभाव भाव होते हैं उन भावो का नाम ही गुण स्थान है। यह सब सिद्धान्त कथन जो सर्वज्ञ भगवान की दिव्य ध्वनि से प्रगट हुआ है वह सब कथन प० फूलचन्द जी के मन्तव्यानुसार मिथ्या ठहरता है सभी शास्त्र मिथ्या ठहरते हैं कर्म कुछ नही करते हैं वे अकिञ्चित्कर हैं सब कुछ नरक स्वर्ग मनुष्य तिर्यंच गतियाँ जीव की योग्यता से ही होती हो तो फिर गति कर्म आयुकर्म आदि कर्मो का उदय क्या करता है। ज्ञानावरणादि चार कर्मो को घातिया क्यो कहा गया है ? राग द्वेष जीव की योग्यता का कार्य है या कषायो के उदय का विपाक है। "जीव गुण घातणत्तादो" इस गोम्मटसार की गाथा के अनुसार जीव के ज्ञानादि गुणो को घातने की शक्ति ज्ञानावरणादि घातिया कर्मों मे है। इस कर्म सिद्धान्त का निपेध कर सभी शास्त्रो को अमान्य ठहराना नितान्त निंद्यवात है।

शास्त्री जी लिखते हैं कि "जहा तक इस ससार परपरा के अध्ययन करने से ज्ञान होता है कि कर्म मे ऐसी योग्यता स्वय जीव

के निमित्त से आती है"

(उनकी पचाध्यायी टीका पेज ४०)

शास्त्री का अध्ययन प्रमाण माना जाय या सर्वज्ञ देव की वाणी प्रमाण मानी जाय ? इसे स्वाध्यायशील तत्वज्ञ अच्छी तरह समझते है।

कर्मो के फलस्वरूप कार्यो मे भी अपनी समझ से शास्त्री जी ने विरुद्धता वताई है जैसे–

'कोई धनादि की प्राप्ति को लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम का फल मानते है तो कोई इसे सातावेदनीय का फल मानते हैं। आचार्यो मे इस विपय को लेकर मतभेद क्यो हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर इस वात पर निर्भर करता है कि विश्व की समस्त समस्याओ के कारणो को ठीक तरह से समझले। न तो कर्म का विश्व के निर्माण मे ही हाथ है और न विश्व की समस्त व्यवस्थाओ के वनाने और विगाडने मे ही हाथ है।"

(उनकी पचाध्यायी की हिन्दी टीका ३ पेज)

इन पक्तियो से सभी समझलेगे कि प० फूलचन्द जी शास्त्री कर्म का कोई कार्य या फल नही मानते है। उन्होने पेज ३।४ मे धन सम्पति आदि को पुण्य का फल नही वताया है परन्तु अनेक शास्त्रो के प्रमाण देकर पुण्य एव पाप के फल वताने मे समय एव शक्ति लगाना हम व्यर्थ समझते हैं। पुण्य पाप का फल वताने वाले सभी शास्त्र है। उन्होने लाभान्तराय और सातावेदनीय कर्म के कार्यो मे आचार्यो का मतभेद भी वताया है यह भी उनकी निजी समझ की वात है। लाभान्तराय कम के क्ष्योपशम का कार्य तो धनादि की प्राप्ति होना है और सुख होना सातावेदनीय का कार्य है। लाभान्त-राय के क्षयोपशम से धनादि तो मिलेगे परन्तु उनके मिलने पर भी चोरी हो जाय, व्यापार मे हानि हो जाय तो दु ख होता है अत धन प्राप्ति होने पर सुख मिलता रहे यह सातावेदनीय का फल हैं। इसमे

आचार्यो का मतभेद बताना भी निजी कल्पना है। जो शास्त्रो से सवथा विपरीत है।

जाति वर्ण स्पृश्या स्पृश्य व्यवस्था का भी खण्डन

प० फूलचन्द जी शास्त्री ने पचाध्यायी की अपनी हिन्दी टीका मे जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था और स्पृश्या स्पृश्य भेद व्यवस्था का का भी खडन किया है उनकी पक्तिया इस प्रकार है–

इस समय आत्म धर्म की अपेक्षा रूढि धर्म को विशेप प्रमुखता मिल गई है। आम जनता आत्म धर्म का विचार न कर मात्र रूढि धर्म का विचार करने लगी है। तत्वोपदेश, पूजा, खानपान और मामाजिक व्यवहार मे ऐसे तत्व प्रविष्ट हो गये हैं जो स्पष्टत धर्म विरोधी है पर उनका समर्थन करने का प्रयत्न किया जाता है और जो इस प्रवृत्ति का विरोध करते हैं उन्हे धर्म द्रोही कहा जाता है। जैन धर्म सामाजिक व्यवहार मे ऊ च नीच के कल्पित भेद को वास्तविक नही मानता, कल्पित जाति, और कुल के अहकार को छोडने की बात कहता है। भोजन किस के हाथ से मिला है इसका विचार न कर मात्र भोजन शुद्ध का विचार करना है आदि।

(उनकी पचाध्यायी टीका पेज ४२)

इन बातो के समाधान मे हम इतना ही कह देना पर्याप्त समझते है कि जिन बातो को रुढिवाद एव धर्म विरुद्ध कहा जाता है वे न तो धर्म के विरुद्ध हैं और न रुढिवाद हैं किन्तु आत्म शुद्धि की साधक और मोक्ष साधक है। उनका विरोध करना ही धर्म विरुद्ध एव शास्त्र विरुद्ध है।

ऊ च नीच भेद कल्पित नही है। तत्वार्थ सूत्र महाशास्त्र मे "उच्चैर्नीचैश्च" यह सूत्र ऊ च नीच का भेद सिद्ध करता है हरिवश पुराण आदि पुराण आदि शास्त्रो के अनुसार समवसरण मे द्रव्य मिथ्या दृष्टि, अभव्य और शूद्र नही जाता है यह भी ऊ च नीच का भेद साधक है।

दीक्षा योग्यास्त्रयो वर्णा यह आगम वाक्य भी दीक्षा के योग्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को पात्र बताता है। शूद्र वर्ण को मुनि दीक्षा का पात्र नही बताता है। प० फूलचन्द जी शास्त्री के मन्तव्य हास्योत्पादक भी है "भोजन किसके हाथ से मिला है इस बात का विचार तो नही करना चाहिये किन्तु मात्र भोजन शुद्धि का विचार करना चाहिये।" जो कोई व्यक्ति शौचालय से आकर बिना स्नान किये, उन्ही अशुद्ध वस्त्रो से आहार देता है तो उसका विचार नही करके शुद्ध भोजन मात्र का क्या स्वरूप है ? कार्य कारण शून्य बातो का विद्वत्समाज मे कोई मूल्य नही होता हैं। क्या एक रजस्वला स्त्री के हाथ का तथा घृणित पेशा करने वाले के हाथ का भोजन भी शुद्ध माना जायगा ? ऐसे विचार वालो की समझ से बाह्य ससर्ग की कोई अशुद्धता नही है। और शुद्धि अशुद्धि का कोई भेद भी नही है।

जाति को भी कल्पित लिखा गया है यह भी आगम विरुद्ध लिखना है शास्त्रो मे 'जातयोऽनादय सिद्धा " ऐसा स्पष्ट कथन है। आदि पुराण मे सज्जाति के स्वरूप वर्णन मे लिखा है–

पितु रन्वय शुद्धि स्तु तत्कुल परिभाष्यने
मातुरन्वय शुद्धिर्या सा जातिरुप वर्ण्यंते

अर्थात् पिता के बश परम्परा की शुद्धि को कुल कहते है और माता के बश परम्परा की शुद्धि को जाति कहते हैं तथा दोनो को सज्जाति कहते है।

वर्ण और जाति दोनो ही अनादि से है। इस सम्बन्ध मे पूर्वाचार्यों के अनेक प्रमाण हैं। कुछ प्रमाण इस प्रकार है—

सज्जाति सत्गृहित्व च पारिव्राज्य सुरेंद्रता
साम्राज्य परमार्हन्त्य पर निर्वाण मित्यपि

(आदि पुराण पर्व ३८ श्लोक ८४)

१–सज्जाति, २–सद्ग्रहस्थ, ३–दीक्षा, ४–सुरेंद्र, ५–साम्राज्य, ६–अर्हंत पद, ७–निर्वाण।

इन सात परम स्थानो मे पहला स्थान श्रेष्ठ जाति है उसके विना आगे के कोई स्थान नही हो सकते है । अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का साधक दीक्षा है और सज्जाति के विना दीक्षा लेने का पात्र नही होता है । प्रमाण देखिये--

विशुद्ध कुलगोत्रस्य सद्वृत्तस्य वपुष्मत
दीक्षायोगत्व मात्म्नात सुमुखस्य सुमेधस
(आदि पुराण पर्व ३८ श्लोक १५८)

आचार्य शिरोमणि जिनसेनाचार्य कहते है—

जिसका कुल (वर्ण और जाति) विशुद्ध हो, ऊचा गोत्र हो, आचरण जिसका श्रेष्ठ हो, बुद्धिमान् और शरीर जिसका उत्तम हो-हीनाग विकलाग नही हो ऐसा पुरुष दीक्षा लेने का पात्र होता है ।

आचार्य मुकुट उमा स्वामि तत्वार्थ सूत्र महा शास्त्र मे कहते हैं—

"उच्चै नीचैश्च" इस सूत्र की सर्वार्थसिद्धिराजवार्तिक मे व्याख्या लिखी है कि जो उच्च कुल मे–लोक पूजित कुल मे उत्पन्न हो वह उच्च गोत्र वाला होता है और जो नीच कुल लोक निंदित कुल मे पैदा हो वह नीच गोत्र वाला होता है ।

"आर्याम्लेक्षाश्च" इस तत्वार्थ सूत्र के सूत्र मे मनुष्यो के दो भेद वताये गये हैं एक आर्य एक म्लेक्ष । आर्यो के अनेक भेद हैं एक क्षेत्रार्य है एक जात्यार्य है । जो उत्तम कुल मे उत्पन्न हो उन्हे जात्यार्य कहते हैं यह व्यवस्था अनादि से है । यदि जाति अनादि से नही होती तो इक्षाकुवश, सोसवश,, हरिवश काश्यप आदि भेद कर्म भूमि के पहले से ही क्यो प्रसिद्ध हैं ?

और भी जाति की अनादिता मे प्रमाण

जातयोऽनादय सर्वा तत् क्रियापि तथा विधा
(आचार्य सोमदेव कृतयश म्तिलक चपू आठवा उल्लास)

अर्थात् जातिया अनादि सिद्ध है। और उनके अनुसार ही उनकी क्रिया होती है।

वर्ण व्यवस्था भी अनादि से हैं

इसी प्रकार वर्ण भेद भी अनादि सिद्ध है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। तीर्थकर सभी क्षत्रिय वर्ण मे उत्पन्न होते है यह कथन शास्त्रो का झूठा है क्या ? भगवान भरत महाराज ने क्षत्रियो मे से ही तो विवेक एव व्रतधारियो की विशेपता से ब्राह्मण वर्ण की रचना की थी आदिनाथ भगवान ने तीन वर्णो का विधान भी नवीन नही किया था किंतु उन्होने यह कहा कि जैसी तीन वर्णो की रचना विदेह क्षेत्र मे चालू है उसी प्रकार हम भी करते है। अर्थात् यह तीन वर्णो की रचना नवीन नही है अनादि सिद्ध है। यह शका हो सकती है कि–

वर्ण और जाति यदि अनादि सिद्ध है तो भोग भूमियो मे और पहले आदि कालो मे क्यो नही थी भगवान आदिनाथ ने उनका प्रारभ किया है अत अनादि नही है। इस शका का समाधान यह है कि वर्ण और जाति भोग भूमिया और प्रथमादि कालो मे भी रहती है परन्तु वहा पर उनका क्रियात्मक कोई उपयोग नही होता है इसीलिय वहा पर अव्यक्त एव अनुपयोगी वनी रहती हैं। यही कारण हे वहा पर पूरा मोक्ष मार्ग भी चालू नही होता है मोक्ष मार्ग का मुनिपद श्रावक पद एव व्रताचरण-सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का यथा विधि परिपालन वहा नही होता है। जब कर्म भूमि का प्रारम्भ होता हैं तभी मोक्ष मार्ग चालू होता है और तभी वर्ण एव जाति व्यवस्था का प्रचलन चालू होता है। विना जाति वर्ण की मर्यादा के मोक्ष मार्ग का चलना अशक्य एव असभव है। आदिनाथ भगवान जन्म से ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि, और अवधि ज्ञानी थे वे तीर्थंकर प्रकृति के वध के कारण परमपुण्यातिशायी थे। "पुण्ण फला अरहता,, इस कु दकु द स्वामी के वचनानुसार महान् पुण्य का फल अर्हत पद है। भगवान

आदिनाथ ने अपने निर्मल मति श्रुत अवधि ज्ञान के द्वारा मोक्ष मार्ग और विदेह क्षेत्र की मर्यादा का अनुभव साक्षात् करके वर्ण और जाति का प्रचलन चालू करादिया जो भोग भूमि मे वद था। इसलिये जाति और वर्ण दोनो ही अनादि सिद्ध है। कर्म भूमि मे उनका उपयोग धर्म साधन मे एव मोक्ष मार्ग मे अनिवार्य सहायक है। विना वर्ण जाति के वाह्य एव अतरग शुद्धता नही आसक्ती हे। शुद्धता के विना श्रावक और मुनिपद तथा मोक्ष मार्ग की प्राप्ति सवथा असभव है।

वर्ण और जाति मे भेद एव उनका फल

वर्ण से तो वहिरग शुद्धि अथवा अशुद्धि आती है और जाति से अन्तरग शुद्धि अथवा अशुद्धि आती है उसका खुलासा इस प्रकार है—

वर्ण चार हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य, शूद्र अध्ययन अध्यापन यजन याजन एव सन्तोपवृत्ति से रहना ब्राह्मणो का कतव्य है। शूरता वीरता एव शस्त्रादि के द्वारा शासन करना क्षत्रियो का कतव्य हे। व्यापार, वही खाता, खेती आदि वैश्यो का कर्तव्य है। और सेवा करना अथवा अनेक प्रकार की शिल्प कला द्वारा आजीविका करना यह शूद्रो का कर्तव्य है इन चारो मे अपने अपने कर्तव्यो के अनुसार उच्चता और नीचता आती हे। हिंसात्मक कार्य और अपने पेशे के अनुसार शरीर एव आत्मा मे मलिनता आती है।

आजकल देश काल एव शासन तथा परिस्थिति के अनुसार वर्ण व्यवस्था अमर्यादित एव अव्यवस्थित होगई है। उच्च वर्ण वाले भी नीच पेशा करने लगे है और नीच वर्ण वाले ऊचा पेशा करने लगे हैं। कोई ब्राह्मण जूते का व्यापार करता है तो कोई जाटव (चमार) कपडे की दुकान करता हे इस अस्त व्यस्त अव्यवस्था मे खान पान मे भी अशुद्धता वढती जाती है। चौके की मर्यादा एव शुद्ध भोजन के स्थान मे चाहे जिसके हाथ का चाहे जैसा भक्ष्य अभक्ष्य भोजन होटलो मे प्रमादी एव शिथिलाचारी लोग खाने लगे है। ऐसे

लोगो को उन नवीन विचारधारा वाले स्वतन्त्र मन्तव्यो के प्रचारको का प्रोत्साहन भी मिलता है जो इस हीन खान पान और हीनाचरण को जड शरीर की परिणति बताते हैं और इन शारीरिक क्रियाओ का आत्मा से कोई सबध नही मानते हैं। परन्तु ऐसी मान्यता आगम, अनुभव एव प्रत्यक्ष से बाधित है।'

प्रसगवश एक दृष्टान्त देना उपयोगी है। एक क्षत्रिय जूतो की दुकान करता था और एक चमार कपडे की दुकान करता था। दोनो पहलवानी भी करते थे। एक दिन दोनो की कुस्ती होगई। चमार ने क्षत्रिय को दबोचदिया और उसके ऊपर बैठ गया। तब नीचे पडा हुआ क्षत्रिय जोश मे आकर बोला क्योरे! चमार मेरे ऊपर बैठ गया है ऐसा समझते ही उस क्षत्रिय मे स्फूर्ति एव पराक्रम आगया, उसने तुरन्त उस चमार को पटक दिया और स्वय उसके ऊपर बैठ गया। इसका तात्पर्य यही है कि परम्परा के सस्कार निमित्त पाकर प्रगट हो जाते हैं। भले ही क्षत्रिय जूतो का जघन्य व्यापार करता है परन्तु उस हीन व्यापार को छोड देवें तो शुद्ध सस्कारी बनकर मुक्ति भी पा सकता है। बाह्य शारीरिक अशुद्धि दूर करने पर शरीर-पिंड शुद्ध माना जाता है। गोम्मटसार मे कहा गया है—

सताण कमेणागय जीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा
उच्च णचिं चरण उच्च णीच हवे गोद।

अर्थ—सतान परपरा से आये हुए जीव के आचरणो का नाम ही गोत्र है। जीव उच्च या नीच जैसा आचरण करता है उसी के अनुसार उच्च या नीच गोत्र कहा जाता है। अर्थात् वर्ण के अनुसार आचरण मे मलिनता तथा निर्मलता अवश्य आती है।

शूरोसि कृत विद्योसि दर्शनीयोसि पुत्रक यस्मिन कुले त्व मुत्पन्न गज स्तत्र न हन्यते। एक शेरनी ने शृगाल के बच्चे को पालकर शेर सरीखा बना दिया, किंतु उसके पराक्रमहीन सस्कारो को देखकर शेरनी को कहना पडा कि तुझे मैंने शेर सरीखा बना दिया

है किंतु जिस कुल मे तू पैदा हुआ है उस कुल मे हाथी नही पछाडे जासकते है। कुल के सस्कार असर लाते है।

जाति अंतरग शुद्धि अशुद्धि का मूल कारण है।

वर्ण से जाति भिन्न है। वह शरीर की रचना से सबध रखती है। कर्मवर्गणा का भेद जो आहारवर्गणा है उससे शरीर वनता है। अर्थात् माता पिता के रजोवीर्य ही गर्भ धारण करने वाले जीव का आहार है। उसी से शरीर वृद्धि पाता है। इसी आधार पर शरीरो मे पात्रता अपात्रता आती है। मुनिपद एव मोक्ष प्राप्ति का पात्र शरीर द्वारा ही हो सकती है। क्योकि भावो की विशुद्धि पात्रानुसार ही हो सकती है। परमाराध्य आचार्य पूज्यपाद सर्वार्थ सिद्धि आदि सिद्धान्त शास्त्रो के रचयिता जाति कुल के विपय मे लिखते हैं–

"श्रीमज्जातिकुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽजसा,,

(दशभक्त्नादिसग्रह चारित्रभक्ति)

अर्थ–तीर्थंकर भगवान ने ज्ञानाचारका निरूपण किया है भगवान तीर्थंकर के लिये कहा गया है कि वे जाति और कुल का प्रकाश करने के लिये चद्रमा के समान है। इसका तात्पर्य यह है कि दीक्षायोग्य सम्यक् चारित्र की प्राप्ति के लिये जाति और कुल की पात्रता परमावश्यक है।

सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य वीरनदि वर्ण और जाति के विपय मे कितनी महत्वपूर्ण बात लिखते हैं—

प्राज्ञेन ज्ञात लोक व्यवहृति मतिना तेन मोहोज्झितेन प्राग् विज्ञात सुदेशो द्विज नृपति वणिकवर्णं वर्ण्योङ्ग पूर्ण। भूमृल्लोको त्रिरुद्ध स्वजन परिजनोन्मोचितो वीत मोहश्चित्रास्मार रोगाद्यपगत् इति च जातिसकीर्तनाद्यं (११)

आचारसार अध्याय १) पृ० १८

इस श्लोक मे यह स्पष्ट किया गया है कि जो लोक व्यवहार मे दक्ष हैं वीतराग है ऐसे आचार्य यदि किसी शिष्य को मुनि दीक्षा

लोगो को उन नवीन विचारधारा वाले स्वतन्त्र मन्तव्यो के प्रचारको का प्रोत्साहन भी मिलता है जो इस हीन खान पान और हीनाचरण को जड शरीर की परिणति वताते है और इन शारीरिक क्रियाओ का आत्मा से कोई सबध नही मानते हैं। परन्तु ऐसी मान्यता आगम, अनुभव एव प्रत्यक्ष से वाधित है।'

प्रसगवश एक दृष्टान्त देना उपयोगी है। एक क्षत्रिय जूतो की दुकान करता था और एक चमार कपडे की दुकान करता था। दोनो पहलवानी भी करते थे। एक दिन दोनो की कुस्ती होगई। चमार ने क्षत्रिय को दवोचदिया और उसके ऊपर बैठ गया। तब नीचे पडा हुआ क्षत्रिय जोश मे आकर बोला क्योरे! चमार मेरे ऊपर बैठ गया है ऐसा समझते ही उस क्षत्रिय मे स्फूर्ति एव पराक्रम आगया, उसने तुरन्त उस चमार को पटक दिया और स्वय उसके ऊपर बैठ गया। इसका तात्पर्य यही है कि परम्परा के सस्कार निमित्त पाकर प्रगट हो जाते हैं। भले ही क्षत्रिय जूतो का जघन्य व्यापार करता है परन्तु उस हीन व्यापार को छोड देवे तो शुद्ध सस्कारी वनकर मुक्ति भी पा सकता है। वाह्य शारीरिक अशुद्धि दूर करने पर शरीर-पिंड शुद्ध माना जाता है। गोम्मटसार मे कहा गया है–

सताण कमेणागय जीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा
उच्च णचि चरण उच्च णीच हवे गोद।

अर्थ–सतान परपरा से आये हुए जीव के आचरणो का नाम ही गोत्र है। जीव उच्च या नीच जैसा आचरण करता है उसी के अनुसार उच्च या नीच गोत्र कहा जाता है। अर्थात् वर्ण के अनुसार आचरण मे मलिनता तथा निर्मलता अवश्य आती है।

शूरोसि कृत विद्योसि दर्शनीयोसि पुत्रक यस्मिन कुले त्व मुत्पन्न गज स्तत्र न हन्यते। एक शेरनी ने सृगाल के वच्चे को पालकर शेर सरीखा बना दिया, किंतु उसके पराक्रमहीन सस्कारो को देखकर शेरनी को कहना पडा कि तुझे मैंने शेर सरीखा वना दिया

है किंतु जिस कुल मे तू पैदा हुआ है उस कुल मे हाथी नही पछाडे जासकते हैं। कुल के सस्कार असर लाते हैं।

जाति अतरग शुद्धि अशुद्धि का मूल कारण है।

वर्ण से जाति भिन्न है। वह शरीर की रचना से सबध रखती है। कर्मवर्गणा का भेद जो आहारवर्गणा है उससे शरीर वनता है। अर्थात् माता पिता के रजोवीर्य ही गर्भ धारण करने वाले जीव का आहार है। उसी से शरीर वृद्धि पाता है। इसी आधार पर शरीरो मे पात्रता अपात्रता आती है। मुनिपद एव मोक्ष प्राप्ति का पात्र शरीर द्वारा ही हो सकती है। क्योकि भावो की विशुद्धि पात्रानुसार ही हो सकती है। परमाराध्य आचार्य पूज्यपाद सर्वार्थ सिद्धि आदि सिद्धान्त शास्त्रो के रचयिता जाति कुल के विपय मे लिखते हैं–

"श्रीमज्जातिकुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽजसा,,
(दशभक्त्नादिसग्रह चारित्रभक्ति)

अर्थ–तीर्थंकर भगवान ने ज्ञानाचारका निरूपण किया है भगवान तीर्थंकर के लिये कहा गया है कि वे जाति और कुल का प्रकाश करने के लिये चद्रमा के समान है। इसका तात्पर्य यह है कि दीक्षायोग्य सम्यक् चारित्र की प्राप्ति के लिये जाति और कुल की पात्रता परमावश्यक है।

सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य वीरनदि वर्ण और जाति के विपय मे कितनी महत्वपूर्ण वात लिखते हैं—

प्राज्ञे न ज्ञात लोक व्यवहृति मतिना तेन मोहोज्झितेन प्राग् विज्ञात सुदेशो द्विज नृपति वणिकवर्ण वर्योङ्ग पूर्ण। भूमृल्लोको विरुद्ध स्वजन परिजनोन्मोचितो वीत मोहश्चित्रास्मार रोगाद्यपगत् इति च जातिसकीर्तनाद्य (११)

आचारसार अध्याय १) पृ० १८

इस श्लोक मे यह स्पष्ट किया गया है कि जो लोक व्यवहार मे दक्ष हैं वीतराग है ऐसे आचार्य यदि किसी शिष्य को मुनि दीक्षा

देवे तो पहले दीक्षा लेने वाले से यह अच्छी तरह जान लेवें और पूछ लेवें कि दीक्षा लेने वाला पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य इन तीन वर्णों मे से कौन वर्ण वाला है और उसकी जाति कुल आदि शुद्ध है या नही ।

स्पष्टार्थ यह है कि उत्तम वर्ण और जाति कुल जिसका शुद्ध हो वही पुरुष दीक्षा ग्रहण करने का पात्र है ।

जो विद्वान् वर्ण और जाति को काल्पनिक बताते हैं उन्हे सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य वीरनन्द महाराज आदि के वचनो को पढकर अपनी विपरीत समझ को सुधार लेना चाहिये ।

विदेह क्षेत्र मे वर्ण जाति व्यवस्था सदैव रहती है

विदेह क्षेत्र मे सदैव कर्म भूमि रहती है । इसलिये वहा से सदैव मोक्ष गमन होता रहता है । भरत क्षेत्र और ऐरावत इन दो क्षेत्रो मे छह कालो का परिवर्तन होता रहता है । पहले दूसरे तीसरे कालो मे भोग भूमि रहती है । चौथे काल मे कर्म भूमि होती है चौथे काल मे मोक्ष गमन भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र मे चालू रहता है । पचनकाल मे भी कर्म भूमि है मोक्ष मार्ग भी चालू रहता है परन्तु हीन सहनन होने से मोक्ष गमन भरत क्षेत्र से ऐरावत से पचम काल मे नही होता है छठा काल तो धर्म विहीन है ।

आदिनाथ भगवान ने अपने गृहस्थ जीवन मे जहा असिमसि कृषि वाणिज्य सेवा शिल्प ये छह कर्म बताये थे उसी समय उन्होने अपने अवधि ज्ञान से प्रत्यक्ष जानकर विदेह क्षेत्र के समान भरत क्षेत्र मे भी वर्ण और जाति की मर्यादा बताकर, कुलाचार की विशुद्धता का भी विधान बताया था, प्रमाण–

पूर्वापर विदेहेषु या स्थिति समवर्णिता
साद्य प्रवर्तनीयात्र ततो जीवन्त्यमू प्रजा

(आदि पुराण पत्र ५१७ श्लोक १४३)

अर्थ - पूर्व विदेह अपर विदेह क्षेत्रो मे जो वर्ण जाति की व्यवस्था थी

उसी की प्रवृत्ति प्रजा के कल्याण के लिए भगवान आदि तीर्थंकर ने बताई और षट कर्मो की व्यवस्था भी प्रजा के जीवन के लिए बताई।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि वर्ण जाति की व्यवस्था अनादि सिद्ध है। और उच्च वर्ण तथा उच्च जाति (सज्जाति) वाले पुरुष ही मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी होते हैं।

और भी प्रमाण

पिंड शुद्धि समूलैका कुलजात्योर्वि शुद्धता
सन्तान क्रमेणायाता सा सज्जाति प्रगद्यते

(स्मृतिसार पृष्ठ २८)

अर्थ — मूल मे तो पिंड शुद्धि हो, और सन्तान परम्परा से कुल और जाति की विशुद्धता हो, उसी को सज्जाति कहते हैं।

वर्ण और जाति शुक्ल ध्यान के कारण हैं

जाति गोत्रादि कर्माणि शुक्ल ध्यानस्य हेतव
येषु ते स्युस्त्रयो वर्णा शेषा शूद्रा प्रकीर्तिता

अर्थ — उत्तम जाति उत्तम गोत्र और उत्तम कर्म ही शुल्क ध्यान के कारण हैं। ये तीनो बातें जिनमे पाई जाती हैं वे ही ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जिन लिंग धारण योग्य हैं। बाकी शूद्र है।

विशुद्ध कुल जात्यादि सवत् सज्ञाति रुच्चते
उदितोदितवशत्व यतोभ्येति पुमान कृती

(आदि पुराण)

अर्थ — जिनका कुल और जाति दोनो शुद्ध हैं वे ही सज्जाति वाले कहे जाते हैं। इन दोनो से ही वश का अभ्युदय एव मोक्ष की पात्रता आती है।

अशुद्ध शरीर पिंड मे महाव्रतादि धारण करने की निर्मलता नही आ सकती है। जब शुद्ध शरीरधारी पुरुष भी वस्त्र भूषण आदि बाह्य वस्तुओ से सहित रहता है तब तक वह सातवे या छठे गुणस्थान

के भावो को नही प्राप्त कर सकता है । उसी प्रकार जहा उस पर्याय से सलग्न शरीर ही अशुद्ध है वहा मुनि पद के योग्य भाव उत्पन्न ही नही हो सकते है । इसीलिये अवधि ज्ञानी मन पर्यय ज्ञानियो ने साक्षात् प्रत्यक्ष जानकर शास्त्रो मे सज्जातित्व आदि का विधान बताया है अत शरीर शुद्धि (पिंड शुद्धि) का होना मुनिपद के लिये अनिवार्य आवश्यक है। यही जाति शुद्धि है। बाह्य शुद्धि भी आवश्यक है । भावो की विशुद्धि, कहने मात्र से नही होती है किन्तु सभी वस्तुओ की शुद्धि होने पर ही आत्मा मे अशुद्धता आती है। जो व्यक्ति मद्यमासादि अभक्ष्यो का भक्षण करता रहे और कहे कि मेरे सम्यग्दर्शन होगया है तो उसका ऐसा कहना और समझना झूठा है । बिना अष्ट मूल गुण धारण किये एव कर्म स्थिति आदि लब्धियो के प्राप्त किये सम्यग्दर्शन कभी नही होगा । जो व्यक्ति हिसा चोरी आदि करता रहे वह कहे कि मेरे भाव शुद्ध है तो यह उसका कहना झूठा है । नग्न दिगम्बर मुनिपद धारण किये बिना कोई वस्त्र धारी व्यक्ति कहे कि मेरे भाव वीतराग है परम शुद्ध हैं तो ऐसा कहना और समझना मिथ्या है । शास्त्रो मे कहा गया है–

"द्रव्यस्य शुद्धि मधिगम्य यथानुरूपभावस्य शुद्धि मधिका मधिगतुकाम „

अर्थात् पहले द्रव्य शुद्धि प्राप्त करके ही भाव शुद्धि की चाहना की जाती है। जब बाहरी शुद्धि के बिना अतरग मे शुद्धि नही आसकती है तब जाति शुद्धि एव वर्ण शुद्धि आत्म शुद्धि एव भाव नैर्मल्य मे अनिवार्य आवश्यक है ।

भगवान की पूजा का भी निषेध

अपनी लिखी पचाध्यायी की हिन्दी टीका मे श्री प० फूलचन्दजी शास्त्री ने भगवान की पूजा को ईश्वर वाद की छाया बताकर उसे धर्म विरुद्ध लिखा है उनके वाक्य इस प्रकार हैं–

'जैन धर्म जी हजूरी उपदेशो मे ईश्वर वाद की छाया होने से उन्हे जीवन शुद्धि मे प्रयोजक नही मानता है और पूजन मे द्रव्य की उठाधरी की अपेक्षा परिणामो की शुद्धि पर अधिक जोर देता है फिर भी वर्तमान समय मे इससे सर्वथा विरुद्ध प्रवृत्ति होरही है और उसे धर्म समझकर उसका समर्थन किया जाता है,,

(पचाध्यायी शास्त्री जी की हिंदी टीका पेज ४२ प्रस्ता०)

भगवान की अष्ट द्रव्य से जो भक्ति एव श्रद्धा के साथ पूजा की जाती है उसको भी द्रव्यो की उठाधरी बताकर उस द्रव्य पूजा का वे निषेध करते है और धर्म विरुद्ध बताते हैं। इन शास्त्री जी से पूछा जाय कि भगवान के दर्शन, और अष्ट द्रव्य से पूजन किये विना परिणामो की शुद्धि क्या आकाश से टपक पडेगी ? फिर तो जिन मदिर वनवाना और देव दर्शन भी अनावश्यक हैं। विना जिन देवका और अष्ट द्रव्य का अवलवन लिये चचल मन की प्रवृत्ति आत्मविशुद्धि मे कैसे सहायक हो सकती है ? कभी नही हो सकती है। जिनेन्द्र देव की परमवीतरागशात मुद्रा और भक्ति पूर्ण अष्ट द्रव्य पूजन ही आत्मा के भावो मे सम्यग्दशन उत्पन्न कर सकती है। जो जिनेन्द्र देव के दर्शन और पूजा नही करता है उसे मिथ्यादृष्टि शास्त्रो मे वताया गया है। "दाण पूजा मुक्खो सावय धम्मोहि,, अर्थात् मुनियो को दान देना और जिनेन्द्र पूजा करना श्रावक धर्म है यह कु दकु द स्वामी का वचन है।

गृहस्थ श्रावक के लिये अष्ट द्रव्य मे पूजन करने का विधान कु दकु द स्वामी, समन्तभद्र, जिनसेन, सोमदेव, अकलक देव पूज्यपाद, पद्मनदि धरषेण भूत बलि पुष्पदत आदि सभी आचार्यो ने बताया है। यदि प्रमाण दिये जाय तो पचासो पृष्ठ लिखे जायगे। सस्कृत पूजन पाठ और हिंदी पूजनपाठ सबो के सामने हैं और सभी जिनेन्द्र भक्त श्रावक उन्हे करते हैं। प० प्रवर आशाधरजी ने नित्य पूजन, चतुर्मुख पूजन, मुकुट वद्ध राजाओ द्वारा पूजन चक्रवर्ती द्वारा की जाने वाली

पूजन, इद्रध्वज पूजन आदि पूजनो मे अष्ट द्रव्य का ही विभूति पूर्ण विधान बताया है। अत्यत खेद की वात है कि प० फूलचदजी शास्त्री द्रव्य पूजा को धर्म विरुद्ध बताकर उसका निषेध करते है ? मुनियो के पास द्रव्य नही है और वे किसी से द्रव्य की चाहना भी नही कर सकते है इसलिये वे भी भावो मे अष्ट द्रव्य की कल्पना करके भावात्मक अष्ट द्रव्य से जिन पूजन करते है जैसी कि सिद्ध पूजा है–

नवग्रह पूजा का भी विरोध

प० फूलचदजी शास्त्री ने नवग्रह पूजन को भी देव मूढता मिथ्यात्व बताया है। उनकी पक्तिया इस प्रकार है–

"जैन परपरा मे इस मूढता ने अनेक प्रकार से अपना अड्डा जमा लिया है नवग्रह की पूजा यहा होने लगी है। शासन देवता की स्थापना और मान्यता यहा की जाती है,,

(पचाध्यायी की उक्त शास्त्री कृत हिंदी टीका पेज २४८)

उक्त प० जी नवग्रह पूजा को देव मूढता और मिथ्यात्व बताते है जैसी कि उनकी आगे की पक्ति है—

"यदि सच कहा जाय तो वर्तमान मे सर्वत्र सकाम पूजा का ही बोलवाला है और जिनकी ऐसी पूजा मे श्रद्धा नही है या इसे मिथ्वात्व मानते है उसका परिहास किया जाने लगा है।"

(उनकी हिन्दी टीका पेज २४८)

पचाध्यायी ग्रन्थ मे सम्यग्दर्शन के प्रकरण मे देव मूढता गुरु मूढता का कथन है। पचाध्यायी के श्लोक ६०० और ६०१ है। उसमे नवग्रह पूजन का नाम और उल्लेख या उसका निषेध कुछ नही है। प० फूलचन्द जी ने अपने उत्सूत्र स्तवन्त्र मन्तव्य अपनी हिन्दी टीका मे भर दिये है। ऐसी दशा मे पचाध्यायी की उनकी लिखी टीका किस प्रकार ग्रन्थानुकूल मानी जाय ? या प्रमाण मानी जाय ?

नवग्रह पूजन मे नवग्रहो की शान्ति के लिए जिनेन्द्र भगवानो

की पूजा का विधान है। क्या प० फूलचन्द जी सूर्यचन्द्र मगल बुध वृहस्पति शुक्र शनि राहु केतु इन जन्म कुण्डली मे पडे हुए ग्रहो के फलो को भी मानते हैं या नही ? जो ज्योतिष शास्त्रानुसार फल देते हैं। उन नवग्रहो की शान्ति के लिए जनहित के लिए शास्त्रकारो ने जिनेन्द्र देवो की पूजा लिखी है। सूर्य ग्रह अरिष्ट निवारक पद्मप्रभ की पूजा की जाती है। चन्द्र ग्रह अरिष्ट निवारक चन्द्रप्रभ की पूजा की जाती है इसी प्रकार मगल ग्रह की शान्ति के लिए पद्मप्रभ बुधग्रह की शान्ति के लिए विमलनाथ अनन्तनाथ धर्मनाथ शान्तिनाथ कुथुनाथ अरहनाथ, नमिनाथ, वर्धमान इन आठ भगवानो की पूजा की जाती है। वृहस्पति गृह की शान्ति के लिए ऋषभ अजित सभव अभिनन्दन सुमति सुपार्श्व शीतल श्रेयान् इन आठ भगवानो की पूजा की जाती है। शुक की शान्ति के लिए पुष्प दन्त की, शनि की शान्ति के लिए मुनि सुव्रत भगवान की, राहु की शान्ति के लिए नेमिनाथ की, केतु की शान्ति के लिए मल्लिनाथ भगवान की पूजा की जाती है।

इन जिनेन्द्र पूजनो मे भी उक्त प० जी को मिथ्यात्व और मूढता दीख रही है। आश्चर्य की बात है। गृहस्थ अपने सकट और आपत्तियो को दूर करने के लिए कामना करता है और जिनेन्द्र भगवान की भक्ति श्रद्धा पूर्वक पूजन करता है इसे मिथ्यात्व बताना ही वास्तव मे मिथ्यात्व है। वादिराज, समन्तभद्र मानतुग आदि महर्षियो पर भी आपत्तिया आई थी उन्हे उन्होंने जिनेन्द्र भक्ति से रचे हुए स्तोत्रो से ही दूर किया था। गृहस्थ यदि मिथ्यादृष्टि देवता दुर्गा भवानी आदि की पूजा करके सकट दूर करना चाहता है तब तो कुदेवाराधना रूप मिथ्यात्व है परन्तु जिनेन्द्र देव की पूजा मे पूर्ण श्रद्धा और भक्ति करता है उसे भी मिथ्यात्व समझना अविचारित रम्य है।

इसी प्रकार ऋषि मण्डल पूजा ऋषि मण्डल यन्त्र पूजा ऋषि मण्डल स्तोत्र आदि भी सकट दूर करने के लिए किये जाते हैं जिनमे

महान् ऋषियो की भक्ति श्रद्धा की जाती है वह भी उक्त पडित जी की दृष्टि मे मिथ्यात्व है। प्रति दिन पूजन के प्रारम्भ मे 'स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो न" इस उच्चारण के साथ महान् ऋद्धिधारियो मुनीश्वरो से स्वस्ति (मगल) कामना की जाती है वह सब उनकी समझ से मिथ्यात्व ही होगा ऐसी वातो पर अधिक लिखना व्यर्थ है।

श्री प० फूलचन्द जी शास्त्री ने पचाध्यायी की हिन्दी टीका लिखकर जैनाचार्यो द्वारा प्रदर्शित विधान का ही विरोध किया है। और समस्त धार्मिक क्रिया काण्ड का भी विरोध कर अपने स्वतन्त्र मन्तव्यो को हिन्दी टीका मे रख दिया है।

सकाम पूजा का बोलबाला कहाँ है ?

प० फूलचन्द जी ने भगवान की पूजा को सकाम पूजा का वोलबाला और उसे मिथ्यात्व वताया है। सर्वत्र दि० जैन समाज मोक्ष की अभिलाषा से ही भक्ति मे तन्मय होकर भगवान की पूजा करता है। और अष्ट द्रव्यो मे भी जन्मजरा मृत्यु के विनाश के लिए जलधारा देता है काम वासना को दूर करने के लिए पुष्प चढाता है। क्षुधा दूर करने के लिए नैवेद्य, अज्ञान को दूर करने के लिए दीप अष्ट कर्म नष्ट करने के लिए धूप मोक्ष फल प्राप्ति के लिए फल चढाता है इन द्रव्यो के पाठ को वोलते हुए उन्ही सब वातो को चाहता है जो ऊपर वताई गई हैं। इनमे सकाम पूजा (सासारिक प्रयोजन की चाहना) न तो उन पद्यो मे है और न पुजारी की वैसी भावना है और न वैसे सस्कार है। यदि कोई श्रावक आपत्तियो को तथा विघ्न वाधाओ को दूर करना चाहता है और आकुलित एव अशात कारणो को दूर कर शात एव निराकुल वनकर धर्म साधन करना चाहता है। उस प्रयोजन की सिद्धि के लिए पूर्ण श्रद्धा भक्ति से भगवान की पूजा करता है तो भी उस पूजा मे मिथ्यात्व नही है। क्योकि मिथ्या देवो को पूजा को वह स्वय मिथ्यात्व समझता है। अपने प्रयोजन के लिए भी भगवान की पूजा मे ही दृढता एव विश्वास रखता है। घर से

वाहर जाते समय णमोकार मत्र का जपन गृहस्थ करता है। भगवान के दर्शन करके ही जाने मे निर्विघ्न कार्य सफलता की भावना करता है।

भगवान की पूजा परम्परा मोक्ष साधक है ऐसा सभी शास्त्र बताते हैं। ऐसी धार्मिक क्रियाओ का भी विरोध प० फूलचन्द जी शास्त्री करते है और ऐसी धर्म विपरीत वाते पचाध्यायी ग्रन्थ की टीका मे लिखते हैं।

प० फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री की इस प्रकार की निरर्गल विचारधारा को समय की वलिहारी के सिवा और क्या कहा जाय ? केवल लौकिक प्रयोजन के लिए धर्म तत्व और आत्म हित के विपरीत दिशा मे जाना स्व-पर वचना है।

शासन देवो की मान्यता का विरोध

शासन देवो की मान्यता मे भी प० जी को मिथ्यात्व दीख रहा है। जैसा कि उन्होने लिखा है—

"शासन देवता की स्थापना और मान्यता यहा की जाती है जो इसे मिथ्यात्व मानते हैं उनका परिहास किया जाता है।"

(उनकी पचाध्यायी हिन्दी टीका का पेज २४८)

शासन देवो के सम्बन्ध मे हम इतना स्पष्ट कर देना पर्याप्त समझते है कि वे सम्यग्दृष्टि है। चतुर्थ गुण स्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि है। उनकी अष्ट द्रव्य से जिनेन्द्र पूजन के समान पूजा नही की जाती है किन्तु वे जिनेन्द्र भगवान के श्रद्धालु सेवक है एव अहोरात्र भगवान की आराधना एव भक्ति करने वाले है इसीलिये उन्हे साधर्मी समझ कर उनका अर्घ्य देकर उनका सत्कार किया जाता है।

धर्म कार्यो मे प्रतिष्ठा आदि महोत्सवो मे दशदिकपाल देवो की स्थापना की जाती है अर्थात् उन्हे आदर पूर्वक बुलाया जाता है। यह विधान सभी प्रतिष्ठा पाठो मे है। उसका भी कारण यह है कि

वडे-वडे धार्मिक कार्यो मे मिथ्यादृष्टि देवी देवताओ द्वारा विघ्न आ सकते है उन्हे सम्यग्दृष्टि देव (शासन देव) ही दूर करने मे समर्थ हैं। उदाहरण यह है दक्षिण मे एक नगर मे पचकल्याणक प्रतिष्ठा हो रही थी उसके दीक्षा कल्याण के समय मेघ की भारी घटा उठी और वादल वडे जोर से गड-गडाने लगा। सवो को यह आभास हो गया कि जोर का पानी और ओले पडने वाले हैं। उसी समय विद्वान् एव सयमी प्रतिष्ठाचार्य ने कार्य को रुकवाकर एक घण्टा तक एकात मे जाप्य किया। शासन देवो का स्मरण किया, उसका फल यह हुआ कि प्रतिष्ठा के क्षेत्र मे पानी ओले नही पडे किन्तु आधा मील के वाहर पानी ओले वहुत ज्यादा पडे। अकलक देव ने वौद्ध गुरुओ के साथ ६ माह तक शास्त्रार्थ किया परन्तु विजय नही हो रही थी तव उन्हें चिता हुई। रात्रि मे उन्हे स्वप्न मे शासन देवता ने कहा कि शास्त्रार्थ वौद्ध गुरु नही कर रहा हैं किंतु पट के भीतर तारा देवी (मिथ्यादृष्टि देवता) की स्थापना की गई है वही देवता शास्त्रार्थ कर रही है। घट मे स्थापना है पट उठा कर घट को लात मार कर फोड दो वह भाग जायगी। प्रात श्री अकलक देव ने ऐसा ही किया फिर वौद्ध गुरु को शास्त्रार्थ मे परास्त होना पडा जैन धर्म की विजय हुई।

आचार्य समन्तभद्र को राजा शिव कोटि ने आज्ञा दी कि यातो हमारे देव को नमस्कार करो या तुम्हारा तलवार से शिर अलग कर दिया जायगा। उस समय समन्तभद्र स्वामी ने ज्वाला मालिनी देवी का स्मरण किया। वह आगई उस देवी ने अपने आराध्य देव भगवान चन्द्रप्रभ को रत्न जडित सिंहासन रचकर उस पर विराजमान कर दिया, स्वामी समतभद्र ने वृहत्स्वयम्स्तोत्र रच कर चौवीसो भगवानो की महान् स्तुति की। चन्द्रप्रभ की स्तुति मे उन्होंने अपनी सकट जन्य दशा का उल्लेख इस प्रकार किया है—

य॰ सर्व लोके पपमेष्ठिताया पद वभूवाम्दुत कर्म तेजा
अनन्त धामाक्षर विश्व चक्षु समन्त दु ख क्षय शासनश्च

अर्थात् हे भगवान् ! आप सर्व लोक मे परमेष्ठी पदधारी आप ही हो आपका अद्भुत तेज है अविनश्वर अनन्त धाम (मोक्ष) वाले हो, जगत् के नेत्र हो समतभद्र के दु ख का क्षय करने वाला आपका शासन है। उसी समय समतभद्र ने अपना मस्तक भगवान के चरणो मे रख कर उन्हे नमस्कार किया। चन्द्रप्रभ भगवान की प्रतिमा प्रगट होते ही समतभद्र स्वामी ने इस श्लोक को पढते हुए भगवान को मस्तक झुका कर नमस्कार किया–चन्द्र प्रभ चद्र मरीचि गोर चन्द्र द्वितीय जगतीव कात वन्दे भिवद्य महता मृपीन्द्र जिन जित स्वान्त कषायवन्धम्। यह सब भगवान की अटल श्रद्धा और भक्ति का ही फल है। भगवान तो वीतराग है वे तो कुछ करते नही है किन्तु उनकी दृड भक्ति देख कर शासन देव भक्त की भावना को सफल बना देते हैं।

आचार्य पात्र केसरी (विद्यानदि स्वामी) कट्टर वैष्णव जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे। परन्तु पद्मावती देवी ने स्वप्न मे उनसे कहा कि प्रात जिन मन्दिर मे जाकर भगवान पार्श्वनाथ की भक्ति करो उनके फण पर दो श्लोक लिखे मिलेगे उनसे आपकी हेतुवाद सम्बन्धी शका दूर हो जायगी। विद्यानदि महाराज ने पार्श्वनाथ के दर्शन कर के उनके फण पर लिखे दो श्लोको को पढा तभी उनकी शका दूर हो गई वे श्लोक ये हैं—

अन्यथानुपपन्नत्व यत्र कि तत्रयेण वा
नान्यथानुपपन्नवत्व यत्र किं तत्रयेणवा
अन्यथानुप पन्नत्व यत्र किं तत्र पञ्चभि
नान्यथानुप पन्नत्व यत्र कि तत्र पञ्चभि (आप्तमीमासा)

इन श्लोको का हेतु साध्य से सम्बन्ध है कठिन है और विस्तार से लिखा जायगा तभी समझ मे आ सकेगा इसलिये अर्थ नही किया गया है। फल यह हुआ कि विद्यानदि आचार्य बने उन्होने अष्ट सह

स्त्री श्लोक वार्तिक जैसे महान् गभीर एव कठिन ग्रन्थो की रचना की यह सब जिनेन्द्र स्तवन-(आप्त मीमासा) सुनने एव पद्मावती देवी के द्वारा सम्बोधित करने का ही परिणाम है।

कुन्दकुन्द स्वामी जब गिरनारि की यात्रा को गये थे वहा पर श्वेताम्बर साधुओ के साथ विवाद हो गया था। तब भगवत्कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा कि यह अबिका देवी (पाषाण मूर्ति) जो कहदे वही प्रमाण माना जाय। उसी समय अबिकादेवी ने कहा-आदि दिगम्बर आदि दिगम्बर, आदि दिगम्बर तीन वार कहने पर दिगम्बर धर्म की विजय विपक्ष को स्वीकार करनी पडी।

कविवर विन्द्रावनदास जी ने गुरु अष्ठक मे कहा है—

सघ सहित श्री कुन्दकुन्द गुरु बदन हेतु गये गिरनारि
बाद परो तह सशय मतिसो साक्षी वदी अविकाकार
सत्य पथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर कही सुरी तह प्रगट पुकारि
सो गुरु देव बसौ उर मेरे विघन हरण मगल करतार

धर्म द्रोह के कारण राजा ने आचार्य मानतु ग को जब ४८ कोठो के भीतर बन्द कर दिया था, ताले लगवा दिये थे। तब आचार्य महाराज ने भक्तामर स्त्रोत्र की रचना करके ४८ श्लोको मे भगवान आदि नाथ की स्तुति की। उसी दृढ भक्ति से प्रेरित हो कर भगवान आदि नाथ की आराधिका चक्रेश्वरीदेवी ने ४८ तालो को तोड कर आचार्य मानतु ग को बाहर लादिया उसके प्रभाव से जैन धर्म एव दिगम्बर गुरुओ का सर्वोपरि महत्व हुआ। यह सब धर्म प्रभावक अतिशय शासन देवो द्वारा हुआ है।

कविवर ने कहा है—

श्रीमत मानतु ग मुनिवर पर भूप कोप जब कियो गवार
बद कियो ताले मे तब ही भक्तामर गुरु रच्यो उदार
चक्रेश्वरी प्रगट तह होकर बधन काट दियो जयकार
सो गुरु देव बसौ उर मेरे विघन हरण मगल करतार

महासती सीता जव अग्नि कुण्ड मे भगवान का स्मरण कर कूदने को तैयार हुई उसी समय शासनदेव ने आकर अग्नि के स्थान मे सरोवर कमलो की सुगन्धि से विभूपित तुरन्त वनादिया और सती सीता के उज्वलशील धर्म का माहात्म्य इतिहास मे अकित कर दिया। इसी प्रकार रयण मजूपा के (श्रीपाल कोठीभट की महाराणी) शील की सुरक्षा शासनदेवी ने तुरन्त की। धवल सेठ को उस महा सती के चरणो मे ला दिया। प्रथमानुयोग शास्त्रो के पढने से हजारो कथाऐ ऐसी मिलेगी जिनमे देवो ने सहायता की है और और धर्म की प्रभावना बढाई है।

भगवान आदिनाथ जव दीक्षा धारण कर छह माह के लिये ध्यानस्थ होगये तब उनके भानजे नमि विनमि दौनो भगवान के दोनों ओर उनके चरणो को पकड कर वैठ गये और कहने लगे कि हम को आप कुछ नही देकर जगल मे आगये हो जव तक आप हमे कोई विभूति नही देगे तव तक आपके चरणो को नही छोडेगे वैठे ही रहेगे। उनकी अटूट अपार भक्ति को देख कर इन्द्र की आज्ञा से शासनदेव ने तुरन्त नमि और विनमि से कहा कि भगवान की आज्ञा से तुम दौनो को विजयार्थ की दक्षिण श्रेणी और उत्तर श्रेणी का राज्य दिया जाता है। विद्याधरो पर शासन करते रहो, दोनो ही प्रसन्न हो कर शवबान की भक्ति कर चले गये।

यद्यपि ये सव कार्य जिनेन्द्र भगवान की दृढ भक्ति के ही परिचायक हैं परन्तु शासनदेवो द्वारा ही धर्म की रक्षा और धर्म की प्रभावना के लिये किये जाते हैं।

चौबीस तीर्थकरो के सेवक चौवीस यक्ष चौवीस यक्षिणी होती है। वे सव सम्यग्दृष्टि हैं। पद्मावती देवी भगवान पार्श्वनाथ को अपने सिर पर विठाये हुए हैं। सदैव धर्म कार्यो में सहायक वनती है वह सम्यग्दृष्टि है। इसी प्रकार तीर्थकर की माता की सेवा करने वाली

देवियाँ भी सम्यग्दृष्टि होती है।

संस्कृत मगलाष्टक

मस्कृत मे मगलाष्टक जिनवाणी सग्रह मे छपा है उस मगलाष्टक मे पचपरमेष्टी, चौवीस तीर्थकर सिद्ध क्षेत्र त्रेसठ शलाका पुरुष आदि मगलमयो से मगलकामना की गई है उसी मगलाष्टक मे ऋद्धिधारी मुनीश्वरो से भी मगलकामना की गई है। उसी मे यह श्लोक भी है–

देव्याष्टौच जयादिका द्विगुणिता विद्यादिका देवता
श्री तीर्थंकर मातृकाश्च जनका यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा
द्वात्रिंशत्त्रिदशाधिपास्थिति सुरा दिक्कन्यकाश्चाष्टधा
दिक् पाला दश चैत्यमी सुरगणा कुर्वन्तु ते मङ्गलम्

यह प्राचीन सस्कृत मगलाष्टक है। इस ऊपर के श्लोक मे जयाविजया आदि आठ देवियाँ, विद्यादिक देवता, तीर्थकरो की माताएं और उनके पिता यक्ष यक्षिणी बत्तीस इद्र आठ दिक्कन्यकाएं और भी देवगण सबो से मगलकामना की गई है। ये सभी सम्यग्दृष्टि है।

हमारे शास्त्र भडार मे बहुत प्राचीन गुटका है उसमे विद्यानुशासन ग्रन्थ भी है उसमे पद्मावतीदेवी जयाविजया आदि देवियो तथा दशदिकपाल आदि देवो को सम्यग्दृष्टि बताया गया है। उनके मत्रजाप्य भी है। ऐसे मत्रो को कैसा पुरुष जपने का अधिकारी है उसका निर्देश इस प्रकार है–

भवतेऽस्माभिर्दत्तो मत्रोय गुरु परपरायात
साक्षीकृत्य हुताशनरविशशि तारावराद्रि गणान्
किन्तु भवतापि न दातव्य सम्यग्दृष्टि वर्जिताय पुरुपाय
किंतु गुरु देव समयेभक्तिमते गुण समेताय

अर्थात् पद्मावती आदि के मन्त्रो को जो गुरुओ की परपरा से चले आये है ऐसे पुरुप को देना चाहिये जो देव शास्त्र गुरु का भक्त हो

जो सम्यग्दृष्टि हो। जो सम्यग्दृष्टि नही है उस पुरुप को ये मत्र नहीं देना चाहिये। अग्नि सूय चन्द्रमा आदि की साक्षी से मिथ्या दृष्टि पुरुप को कदापि नही देना चाहिये। किंतु देव शास्त्र गुरु मे पूर्ण भक्ति रखने वाले सद्गुण सहित पुरुप को ही देना चाहिये। आगे और भी श्लोको द्वारा सम्यग्दृष्टि देव देवियो के विपय मे विस्तार मे वर्णन किया गया है।

जो ऐसी प्रतिज्ञा कराते है वे क्या मिथ्या दृष्टि देव देवियो को मान्यता कभी दे सकते है ? कभी नही।

पच कल्याणक प्रतिष्ठा पाठो के अनुसार प्रतिष्ठाचार्य महान् धर्म कार्यों मे सभावित विघ्नो की शान्ति के लिए मिथ्या देवो की स्थापना कभी करेगे क्या ? अत शास्त्रानुसार यह सिद्ध है कि पद्मावती ज्वालामालिनी चक्रेश्वरी आदि शासन देव देविया सम्यग्दृष्टि है और भगवान के शासन की रक्षा करते है प्रभावना करते है। धर्म की विजय कराते है। और धर्म पर आने वाले सकटो को तथा धर्मात्माओ पर आने वाली आपत्तियो को दूर करते है। पूज्य भट्टारको ने यवन वादशाहो से अपने मन्त्रो द्वारा धार्मिक विजय पाई थी, इतिहास इसका साक्षी है। दिल्ली के वादशाह ने जैनियो को वाध्य किया था कि या तो अपने धम का प्रभाव पूर्ण चमत्कार वताओ या यवन (मुसलमान) वनो। ऐसी भारी भयकर आपत्ति मे दिल्ली के जैनियो ने दक्षिण मे जाकर भट्टारक महाराज की शरण ली। समय एक दिन का ही वाकी रहा था भट्टारक जी ने मन्त्र विद्या के वल से दक्षिण से दिल्ली मे एक रात मे ही जैनियो को उपस्थित कर दिया। वादशाह के दरवार मे जव श्री भट्टारक जी पधारे तव उनके कमडल मे मन्त्रवादी मौलवी ने मछली पैदा करदी और वादशाह से कहा कि देखो जैन साधु कमण्डल मे मछली रखते है। उसी समय भट्टारक जी ने दिखा दिया कि कमण्डल मे मछली नही है किन्तु सुगन्धित पुष्प

है। दरबार मे यह पूछने पर कि आज कौन तिथि है। भट्टारक जी के शिष्य के मुह से निकल गया कि आज पूर्णिमा है किन्तु उस दिन अमावस्या थी। दरबार मे उपस्थित जन समूह हसने लगा तब भट्टारक जी ने एक चादी की थाली पर केसर से मत्र लिखकर आकाश मे उसे फेक दिया। रात भर वह थाली पूर्ण चन्द्रमा के रूप मे सबो को दीख रही थी उन्होने पूर्णिमा समझी।

जिस दिन बादशाह की सवारी बाजार से निकली उसी दिन उसी बाजार से दूसरी ओर से भट्टारक जी की पालकी निकली। बादशाह ने आज्ञा दी कि सामने की सवारी को लौट जाने को कहदो उसी समय भट्टारक जी ने कहारो से कहा कि तुम लोग पालकी छोड दो वे हट गये पालकी बिना आदमियो के कन्धा लगाये स्वय आकाश मे बादशाह के ऊपर से निकल गई। इन चमत्कारो को देखकर बादशाह ने जैनियो का बहुत सत्कार किया और पूज्य भट्टारक जी से क्षमा मागते हुए धार्मिक सरक्षण के लिए सनद (प्रतिज्ञा पत्र) दी। अजमेर की प्रसिद्ध दरगाह (मसजिद) के सामने से जैनियो के रथ (भगवान की यात्रा) को मौलवियो ने नही जाने दिया तब भट्टारक जी के चमत्कार से मौलवी नत मस्तक हो गये, रथ वही से निकलने लगा यह सब शासन देवो के द्वारा होने वाले कार्य है।

परम पूज्य श्री १०८ आचार्य महावीर कीर्ति महाराज पद्मावती का आदर करते थे। आचार्य महाराज महान् विद्वान् महान् तपस्वी महान् आगमनिष्ठ निरपेक्ष साधु थे। धर्म की रक्षा एव धर्म की प्रभावना शासन देवो द्वारा विशेष रूप से होती है। इसी धार्मिक वात्सल्य से पद्मावती क्षेत्रपाल आदि के शिर पर पीछी रखकर उन्हे आशीर्वाद देते थे।

शासन देवो की सर्वत्र मान्यता

दक्षिण मे सर्वत्र मन्दिरो मे पद्मावती क्षेत्रपाल की मूर्तिया है। हुमच (मैसूर) मे तो पद्मावती के चमत्कार मे प्रभावपूर्ण कार्य होते है।

देहली के लाल मन्दिर मे, जबलपुर, सिवनी, नागपुर के प्रसिद्ध मदिरो मे पद्मावती क्षेत्रपाल है। श्री महावीर जी पद्मपुरी आदि अतिशय क्षेत्रो मे भी है। जयपुर आदि नगरो मे भी हैं। परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी से लेकर सभी आचार्यो ने शासन देवो की मान्यता का विरोध नही किया है। पुरातन आचार्य परपरा मे पद्मावती क्षेत्रपाल आदि शासन देवो का कही किसी शास्त्र मे विरोध नही है।

मिथ्यात्व ग्रसित कौन है ?

पद्मावती क्षेत्रपाल आदि शासन देवो को जो कोई भगवान अर्हत के समान मानकर उनकी पूजा करता है वह मिथ्यात्व ग्रसित है। कहा वीतराग सर्वज्ञ अर्हत भगवान और कहा अविरत सम्यग्दृष्टि शासन देव। आकाश पाताल जैसा भेद है। इसी प्रकार जो उन धर्म रक्षक जिनेन्द्र भक्त सम्यग्दृष्टि शासन देवो को मिथ्यादृष्टि समझते है और उनका आदर सत्कार नही करके उनका तिरस्कार करते है वे भी मिथ्यात्व ग्रसित है।

राजा और भृत्य के समान अर्ध्यदान

जिस प्रकार हमारे घर पर एक राजा आता है तो उसके लिए अनेक सुन्दर सुरुचिकर व्यजन (भोजन) हम तैयार करते है और वडे आदर से उस राजा को परोसते हैं। उन्ही व्यजनो मे से राजा के साथ आये हुए उसके सेवक भृत्य को भी परोसते हैं। परन्तु दृष्टि भेद है राजा का आदर सत्कार राजा समझ कर किया जाता है। और उसके सेवक का आदर सेवक समझ कर किया जाता है। ठीक यही दृष्टान्त यहा लागू होता है जिनेन्द्र भगवान की पूजा वडी श्रद्धा भक्ति से अष्ट द्रव्य से की जाती है और पद्मावती क्षेत्रपाल आदि शासन देवो की पूजा नही की जाती है किन्तु जिनेन्द्र भक्त सम्यग्दृष्टि भगवान के चरण सरण मे रहने वाले उनके सेवक समझकर शासन

देवो को उसी अष्ट द्रव्य मे से अर्घ्य दिया जाता है। यही साधर्मी वात्सल्य एव धर्मोपकार का आदर है यही बात पूजन के अन्त मे विसर्जन मे कही गई है।

आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथा क्रमम्
ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथा स्थितिम्

इसी विसर्जन पाठ का हिन्दी मे अनुवाद यह है—

आये जो जो देव गण पूजे भक्ति प्रमाण
सो अव जावो कृपा कर अपने अपने थान

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान का पूजन करते समय जिन शासन देवो को हमने बुलाया है और जिनके सत्कार मे अष्ट द्रव्य मे से एक भाग दिया है वे शासन देव अब कृपा कर अपने अपने स्थान को चले जाइये।

इस श्लोक से ऊपर के श्लोक– ज्ञान तोऽज्ञान तो वापि आदि जिनेन्द्र देव की भक्ति मे कहे गये हैं। भगवान को तो हृदय मे हमने विराजमान किया है। किन्तु शासन देवो को अपने अपने स्थान पर जाने के लिए कहा है।

शासन देवो की मान्यता मे आचार्यो के प्रमाण

अभिषेक पाठ सग्रह ग्रन्थ वीर स० २४६२ मे सेठ वनजीलाल ठोलिया दि० जैन ग्रन्थ माला समिति की ओर से छपा है उसमे अनेक आचार्यों द्वारा रचित पचामृताभिषेक पाठो का सग्रह है। कुल १५ अभिषेक पाठो का सग्रह है। सस्कृत के कुछ पाठ पाचवी शताब्दि से लेकर सोलहवी शताब्दी तक के है। जिन आचार्यों ने इन महाभिषेक पाठो को रचा है उन आचार्यों मे कुछ नाम इस प्रकार है-

आचार्य पूज्य पाद स्वामी, भगवद्‌गुणभद्राचार्य, आचार्य सोम देव सूरि, भगवत् अभयनन्द सूरि, आचार्य इन्द्रनन्दि, आचार्य सकल कीर्ति, आचार्य देवसेन, आचार्य जिनसेन, आचार्य वसुनन्दि, आदि।

इन सभी प्रसिद्ध पूर्वाचार्यो ने अपने अपने पचामृताभिषेक पाठो मे शासन देवो का आव्हान एव अर्घ्यदान का विधानकिया है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है–

पूर्वाशा देशहव्यासन महिपगते नैऋते पाशपाणे वायो यक्षेन्द्र चन्द्राभरण फणिपते रोहिणी जीवितेश सर्वे प्यायात यानायुध युवति जनै साधमो भूभुर्व स्व स्वाहा गृहणीत चार्घ्यं चरुममृतमिद स्वस्तिक यज्ञभागे।

(महाभिषेक पाठ पृ० ५ श्लोक ११)

इस श्लोक के नीचे लिखा है--

ॐ ह्री क्रो प्रशस्त वर्णसर्व लक्षण सम्पूर्ण स्वायुधवाहन वधू चिन्ह सपरिवारा इन्द्राग्नियमन्नैकत वरुण वाहन कुवेरैशानधरणेद्र सोम नाम दशलोकपाला आगच्छत आगच्छत सवौपट्, स्वस्थाने तिष्ठत तिष्ठत ठ ठ, ममात्र सन्निहिता भवत भवत वषट् इदमर्घ्य पाद्य गृहीध्व गृहीध्व ॐ भूर्भुव स्व स्वाहा स्वधा

इन मत्रो से यह भी परिचय हो जाता है इन शासन देवो को यथा स्थान मे बिठाया गया है और मेरे निकट बैठो ऐसा भी कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि उन्हे अविरत सम्यग्दृष्टि देव माना गया है। भगवान के परम सेवक माना गया है। तभी तो अपने पास बैठने को कहा गया है। इसी प्रकार सभी आचार्यों ने शासन देवो को महाभिषेक विधि मे बुलाकर उनका सत्कार किया है। किसी भी आचार्य प्रणीत शास्त्र मे शासन देवो का निषेध या उन्हें मिथ्यादृष्टि नही लिखा है।

आचार्य गुणभद्र भदन्त प्रणीत वृहत्स्नपन मे लिखा है–

स्फूर्जत्पवित्र प्रहरण रमणी समेत इद्र जिनेंद्र सवने हमिहाह्वयामि

ॐ इ द्र आगच्छ आगच्छ इ द्राय स्वाहा, इ द्रपरिजनाय स्वाहा इ द्रानुचराय स्वाहा, इद्रमहत्तराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, सोमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, ओ स्वाहा,

भू-स्वाहा, भुव स्वाहा स्व स्वाहा ओभूर्भुव स्व स्वधा स्वाहा ॐ इद्र देवाय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्य गध पुष्प दीप धूप चरु बलि फल स्वस्तिक मक्षत यज्ञभाग च यजामहे प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यता प्रति गृह्यतामिति स्वाहा ।

इसी प्रकार भिन्न भिन्न आचार्यो द्वारा प्रणीत महाभिषेक विधान मे शासन देवो का आह्वान किया गया है और उन्हे यज्ञ भाग दिया गया है ।

अत पूर्वाचार्यो के पाठो से स्पष्ट सिद्ध है कि ये शासन देव सम्यग्दृष्टि हैं और जिनेंद्र देव के परमाराधक है धर्म रक्षण मे धर्म कार्यो मे आने वाली विघ्नवाधाओ को दूर करने मे सदैव तत्पर रहते हैं ।

प्राचीन प्रतिमाओ के चरणो मे यक्ष यक्षी

प्राचीन प्रतिमाओ के साथयक्ष यक्षी आदि देवगण पाये जाते है, सिद्ध क्षेत्रो और अतिशय क्षेत्रो मे सर्वत्र प्राचीन प्रतिमाओ के साथ उनके चरण सान्निध्य मे यक्ष यक्षिणी आदि देवताओ की मूर्तिया भी उकेरी हुई मिलती है । ये देव देविया आभूषण पहने हुए है । पद्मावती देवी के सिर पर भगवान पार्श्वनाथ सदैव विराजमान रहते हैं । जो देव देविया भगवान के चरण सानिध्य मे भगवान की भक्ति मे तत्पर रहते है उन्हे मिथ्यादृष्टि समझना ही मिथ्यात्व है । मिथ्यादृष्टि देव भगवान के चरणो मे नही रह सकते है । अत ये सब देव देविया सम्यग्दृष्टि है ।

व्यतर देव भवन वासी देव और ज्योतिषी देव और देविया उत्पत्ति के समय मिथ्यादृष्टि ही रहते है । सम्यग्दर्शन को साथ लेकर उक्त तीन प्रकार के देव देविया उत्पन्न नही होते हैं परतु उस पर्याय मे उत्पन्न होने के बाद पर्याप्त होनेपर उनमे सम्यग्दर्शन भी प्रगट होजाता है किन्ही मे होता है किन्ही मेन ही होता है, जिनमे सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता

है वे ही जिनेन्द्र भगवान के सेवक होते है। जो भगवान के सेवक है जो धर्म सकट को दूर करते है उन्ही देव देवियो को शास्त्रकार पूर्वाचार्यो ने सम्यग्दृष्टि बताया है और उन्ही का आदर सत्कार साधर्मी के नाते किया जाता है।

आचार्य समतभद्र स्वामी ने देव मूढता का निषेध करते हुए कहा है—

वपोपदिप्सयाशावान् राग द्वेप मलीमसा
देवता यदु पासीत देवतामूढमुच्यते
(रत्नकरड श्रावकाचार)

मिथ्यात्वमोह-राग द्वेप से मलिन मिथ्यादृष्टि देवो की किसी वर (मनोरथ) की चाहना से

जो सेवा पूजा करता है वह देव मूढता वाला मिथ्यादृष्टि है। इस श्लोक मे राग द्वेष चारित्र मोहनीय सबधी नही लिया गया है। इसी के समर्थन मे उन्होने यह भी कहा है—

भयाशास्नेह लोभाच्च कुदेवागमलिगिनाम्
प्रणाम विनय चैव न कुर्यु शुद्धदृष्टय (रत्नकरड श्रा०)

अर्थ-भय से आशा से, स्नेह से लोभ से किसी भी स्वार्थ से सम्यग्दृष्टि, कुदेव कुशास्त्र और कुगुरु को प्रणाम विनय आदर नही करेगा। उन्ही आचार्य समतभद्र स्वामी ने चद्रप्रभ भगवान की परमभक्त ज्वाला मालिनी देवी के द्वारा चद्रप्रभ भगवान की प्रतिमा प्रगट कराकर महान् भयकर धर्म सकट को दूर कराकर धर्म की भारी प्रभावना ही केवलनही कराई किंतु शिव कोटिराजा को जैन बनाने के साथ आचार्य पद तक प्राप्त करा दिया। पक्ष व्यामोह से शासन देवो का विरोध करना शास्त्र सम्मत नही है।

दिक्पाल देवो का आह्वानन

इन्द्राग्नि दड धर नैऋत पाशपाणि

वायूत्तरेश शशिमौलि कर्णाद्र चन्द्रा
आगत्य यूय मिह सानुचरा सचिन्हा
स्व-स्व प्रतीच्छत वलि जिनपाभिषेके

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के प्रारम्भ मे इन्द्र अग्नि दडधर नैऋत आदि दश दिक्पाल देवो को बुलाया जाता है और कहा जाता है कि दश दिशाओ के देवगण आप अपने-अपने चिन्हो से सहित और और अपने-अपने अनुचरो को साथ लेकर आओ और जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के महान् महोत्सव मे सामिल हो जाओ तथा भेट ग्रहण करो। ये दश दिक्पाल सम्यग्दृष्टि होते हैं। भगवान के परमभक्त होते हैं। इनका आह्वान निर्विघ्न धम महोत्सव के साधन के लिये किया जाता है।

यक्षादि देवो की मान्यता का और भी उल्लेख

आचार्य पद्मनदि जिन्होने सिद्ध पूजा रची है फल पूजा के समर्पण मे लिखते है—

सिद्धासुराधि पति यक्ष नरेन्द्र चक्रै ध्येय सकलभव्यजनै सुवद्य नारिंग पूग कदली फल नारि केलै सोह यजे वर फलै वर सिद्ध चक्रम।

अर्थ—प्रसिद्ध असुरकुमार भवन वासी देवो के इन्द्र, यक्ष—व्यतर देवो के इन्द्र और मनुष्यो के इन्द्र चक्रवर्ती आदि जिनका ध्यान करते है पूजते हैं। समस्त भव्य जन जिन्हे वडी भक्ति से वन्दना करते हैं उन सिद्ध परमेष्ठी भगवान की मैं नारगी, सुपारी, केला और नारियल आदि फलो से पूजा करता हू।

इस श्लोक से यह वात स्पष्ट होजाती है कि धरणेन्द्र और यक्ष आदि शासनदेव सम्यग्दृष्टि है वे ही भगवान की पूजा करते हैं मिथ्यादृष्टि देव तो भगवान दी पूजा करना तो दूर रहा उनकी पूजा मे विघ्न डालते है। आचार्य पद्मनदि ने उन यक्ष और धरणेन्द्र

आदि देवो का पूजा विधान मे उल्लेख किया है यदि यक्षादि देव मिथ्यादृष्टि होते है तो ऐसे मिथ्यादृष्टि देवो का वे उल्लेख नही करते और न उनके द्वारा पूजा का उल्लेख करते ।

यह भी समझ लेना चाहिये कि यक्षादि देवो मे मिथ्यादृष्टि भी होते है और सम्यग्दृष्टि भी होते हैं ।

और भी प्रमाण

नित्य पूजन मे प्रति दिन यह पाठ बोला जाता है–

"इच्छामिभते चेयभत्ते काओसग्गो कओ तस्सालोच्चे ओ अह लोय तिरियलोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमा किट्टिमाणि जाणि जिणचेयाणि ताणि सव्वाणि तीसवि लोयेपु भवण वासिय वाणवितर जोयसिय कप्पवासित्तिय चहुव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकाल अज्जति पुज्जति वदति णमसति"

अर्थात् तीनो लोको मे जितने भी कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय हैं और चैत्य है उन सबो को तीनो लोको मे भवनवासी, व्यतर देव ज्योतिषी देव कल्प वासी देव चारो प्रकार के देव अपने परिवार सहित दिव्य गध, दिव्य पुष्प, दिव्य धूप, दिव्य चूर्ण आदि पदार्थो से नित्य पूजा करते हैं वन्दना करते और नमस्कार करते है ।

इस कथन से यह बात भली भाति सिद्ध है कि भवन वासी व्यतर ज्योतिषी और कल्पवासी देव कृत्रिम अकृत्रिम चैत्य चैत्यालयो की वदना पूजा करते हैं इसलिये वे सम्यग्दृष्टि हैं । यदि सभी देव मिथ्या दृष्टि होते तो न तो वे भगवान की पूजा करते और न उन्हे नमस्कार करते । और न आचार्य उनका उल्लेख करते । अत धरणेन्द्र यक्ष आदि जो सम्यग्दृष्टि होते है उन्ही का आदर सत्कार और अर्घ्य दान किया जाता है । और धर्म कार्यो मे कोई विघ्न बाधा नही आने पावे ऐसी सहायता की उनसे चाहना की जाती है ।

जैन दर्शनाचार्य-श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ की पं० फूलचदजी सिद्धांत शास्त्री
द्वारा बनाई गई पंचाध्यायी की हिंदी टीका मे
मूलग्रन्थ का परिवर्तन तथा आगम विरुद्ध
उनके स्वतंत्र विचारो के कथन
का प्रतिवाद निरूपक

ग्यारहवां अध्याय समाप्त

अथ बारहवां अध्याय

स्याद्वाद अथवा कथंचित् वाद के विषय
मे जो भ्रम एवं विपरीत पद्धति का
प्रयोग किया जाता है तथा
व्यावहारिक कार्यों मे स्याद्वाद
के नाम का सहारा लेकर उसका
दुरुपयोग किया जाता है
उन सब बातो का
समाधान
तथा
मिथ्या दर्शनो का समूह स्याद्वाद है ऐसी
समझ भी भूल भरी और मिथ्या है
स्याद्वाद केवल वस्तु स्वरूप है
इसी का निरूपण इस
अध्याय मे है।

स्याद्वाद केवल द्रव्यस्वरूप का विधायक है

कथंचित् का प्रयोग व्यवहारी बातो मे नहीं हो सकता है

(ध्यान पूर्वक पढ़िये)

जैन सिद्धात मे द्रव्य स्वरूप का निरूपण करने वाला स्याद्वाद ही एक अमोघ, अकाट्य एव यथार्थता का द्योतक है। इसी एक

स्याद्वाद से सभी अन्य दर्शनो का द्रव्य स्वरूप मिथ्या कल्पित सिद्ध हो जाता है। अनेक जैन बन्धु भी एव विद्वान् भी स्याद्वाद के स्वरूप के विषय मे भ्रमशील है। वे स्याद्वाद अथवा कथचित् वाद का प्रयोग लौकिक व्यवहारी वातो मे भी करते हैं। सभाओ मे उपदेशो मे प्रवचनो तक मे यह कहा जाता है कि–जैन धर्म स्याद्वाद है इसलिये उसी के अनुसार सभी वाते वन जाती हैं।

जैसे–प्रात प्रति दिन जिनेन्द्र भगवान का दर्शन करना आवश्यक है परन्तु यदि समय नही मिले तो प्रात नही करके शाम को कर लेना चाहिये दिन मे भोजन करने का विधान है परन्तु समय नही मिलने पर कभी रात्रि मे भी भोजन करलेना चाहिये। क्योकि जैन धर्म स्याद्वाद है इसलिये रात्रि मे भोजन करने मे कोई दोप नही है। पानी छान कर पीना चाहिये कभी विना छाने पीने मे भी कोई दोप नही है। इसी प्रकार मर्यादा पूर्वक शुद्ध वस्त्रो से भोजन करना चाहिये कभी विना शुद्धता के भी करलेना चाहिये।

इसी स्याद्वाद के द्वारा समाज के विवाद एव घरेलू झगडे भी दूर करने का प्रयास किया जाता है। परन्तु यह सब पूरी अज्ञानता है और स्याद्वाद का पूरा दुरुपयोग है और वस्तु स्वरूप से सर्वथा विपरीत है।

कोई विद्वान् तो यहा तक कहते है कि जितने भी मिथ्या दर्शन (मिथ्या मत) हैं उन सवो का समूह ही अनेकान्त अथवा स्याद्वाद है। परन्तु ऐसा समझना नितान्त अज्ञानता है।

उपर्युक्त भ्रम का समाधान और स्याद्वाद का स्वरूप

स्याद्वाद कथचित् अनेकात, ये सभी एक अभिप्राय के सूचक है। स्याद्वाद केवल द्रव्य का स्वरूप द्योतक शब्द है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

द्रव्य का लक्षण सभी शास्त्रो मे एक ही है वह यह है—

"गुणपर्ययवद्द्रव्यम्" अर्थात् गुणो का और पर्यायो का समूह (पिंड) ही द्रव्य है। गुण पर्यायो से भिन्न कोई द्रव्य नही है। और द्रव्य से भिन्न कोई गुण पर्याय नहीं है। इस रूप मे द्रव्य के दो अभिन्न अ श हैं एक गुणो का अश दूसरा पर्यायो का अश। गुण नित्य है, पर्यायें अनित्य है अत दोनो का समूह द्रव्य कथचित् नित्य है और कथचित् अनित्य है। गुण सदैव रहते हैं अत द्रव्य नित्य हैं। पर्यायें नष्ट हो जाती हैं अत द्रव्य अनित्य है। गुणो का पिंड द्रव्य एक है और उत्पन्न तथा नष्ट होने वाली पर्यायें अनेक हैं अत द्रव्य कथचित एक है और कथचित् द्रव्य अनेक हैं। गुणो का समूह द्रव्य सत है– सदैव रहता है अत द्रव्य सत् है। और पर्याये नष्ट हो जाती है अत द्रव्य कथचित् असत् भी है। इसी प्रकार गुणो का पिंड रूप द्रव्य सदैव वही है अर्थात् जैसा का का तैसा है और पर्यायो की दृष्टि से वह द्रव्य बदल जाता है अर्थात् वह द्रव्य दूसरे रूप मे परिणत हो जाता है तव वह द्रव्य वही नहीं रहता है दूसरा कहलाता है।

इस गहन दृष्टि भेद अथवा द्रव्य स्वरूप को समझ लेने से द्रव्य की यथार्थता का पूरा परिज्ञान हो जाता है इसी दृष्टि भेद को ध्यान मे रखकर द्रव्य का दूसरा लक्षण–सद्द्रव्यलक्षणम् तथा उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत् यह कहा गया है। अर्थात् गुणो का पिंड द्रव्य सदैव सत्रूप रहता है किन्तु उसमे नवीन नवीन पर्यायें उत्पन्न होती है और नष्ट होती है। इसलिये द्रव्य असत् अथवा अनित्य है। इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि "गुण पर्ययवद्द्रव्यम्" यह सूत्र और सद्द्रव्य लक्षणम् उत्पाद व्यय धौव्य यृक्त सत् इन तीनो सूत्रो का एक ही आशय सिद्ध हो जाता है अर्थात् द्रव्य कथचित् नित्य कथञ्चित् अनित्य कथचित् एक कथंचित् अनेक सिद्ध हो जाना है।

दृष्टान्त से समझ लीजिये

ज्ञान दर्शन गुण लक्षण वाला जीव है। वह जीव किसी भी गति मे चला जाय परन्तु ज्ञान दर्शन वाला नित्य रहता है। जैसे एक

जीव मनुष्य है वह मरकर देव हो गया। वह देव वनकर तिर्यच वन गया। वह तिर्यच मरकर नारकी होगया। एक ही जीव चारो गतियो मे अनन्तवार भ्रमण करता रहा परन्तु जीव द्रव्य तो वही एक है। देय मनुष्य आदि पर्याये तो उसने वदली किंतु जीव द्रव्य तो सभी पर्यायो मे वही है इसलिए यह स्पष्ट सप्रमाण सिद्ध हो जाता है कि द्रव्य सदैव नित्य रहता है। वह द्रव्य अनादि काल से अनन्त काल तक किसी भी पर्याय मे रहे किन्तु वह सदैव रहता है अत द्रव्य नित्य है।

जव यह विचार किया जाता है कि जीव द्रव्य जो देव पर्याय मे है वह वैक्रियक शरीर वाला है उमका ज्ञान सुख सामर्थ्य विभूति ऐश्वर्य महान् है। वही जीव देव पर्याय से निकल कर जव मनुष्य हो जाता है तब उसका ज्ञान सुख सामर्थ्य विभूति वहुत ही परिमित रह जाती है। वही जीव तिर्यच हो जाता है तो वह सर्वथा पराधीन दु खी वन जाता है वही जीव नरक मे जाने पर घोर दु खो का पात्र वन जाता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि देव मनुष्य तिर्यच नारकी सभी भिन्न भिन्न हैं। इसलिए पर्याय दृष्टि से जीव द्रव्य अनित्य है।

इसी प्रकार पुद्गल द्रव्य भी कथचित् नित्य और कथचित् अनित्य है। एक ही परमाणू (पुद्गल) कभी पृथ्वी, कभी जल, कभी अग्नि कभी वायु कभी वनस्पति मे नाना प्रकार का रग रूप, स्पर्श रस गन्ध आदि वदलता रहता है इसलिए पुद्गल अनित्य है किन्तु किसी भी पर्याय मे वदलने पर भी परमाणु नष्ट कभी नही होता है। इसलिये वह परमाण् पुद्गल नित्य है। मिट्टी खाद के रूप मे बीज पानी के सयोग से वनस्पति वन जाती है। वही वनस्पति आग मे जलकर अग्नि वन जाती है अग्नि राख वनकर पृथ्वी वन जाती है। इसलिए पुद्गल द्रव्य नाना पर्याये वदलता है अत उसे पर्याय की दृष्टि से अनित्य ही कहा जाता है। परन्तु वार २ वदलने पर भी पुद्गल परमाणु नष्ट कभी नही होता है अत वह द्रव्य दृष्टि से नित्य ही है।

शकराचार्य समझ नही पाये

आज से सैकडो वर्ष पहिले अन्य दर्शनो मे शकराचार्य एक बहुत विद्वान् मठाधीश हो गए हैं। उन्होने जैन धर्म का खण्डन करते हुए यह लिखा है कि जैन दर्शन का माना हुआ स्याद्वाद सर्वथा बाधित और मिथ्या है। क्योकि एक ही वस्तु मे नित्य धर्म और अनित्य धर्म दो विरोधी धर्म नही रह सकते है। अत स्याद्वाद कपोल कल्पित मत है। उन्होने लिखा है 'नैकस्मिन्न सभवात्" अर्थात् एक वस्तु मे दो विरोधी धर्मो का रहना असभव है।

उनके कथन से विदित होता है कि वे जैन धर्म द्वारा प्रतिपादित द्रव्य के स्वरूप से सर्वथा अनभिज्ञ थे। शकराचार्य तो कितने विद्वान थे उनसे वढकर महा विद्वान इन्द्रभूति थे, वे भी निमित्त पाकर सम्यज्ञानी बनकर स्याद्वाद के रहस्य को समझ सके और चार ज्ञानधारी गणधर वन गये।

स्याद्वाद कभी उसी वस्तु को नित्य और अनित्य नही कहता है किंतु वह सुमेरु पर्वत के समान सर्वथा एक रूप मे ही वस्तु को कहता है। परन्तु द्रव्य के स्वरुप को समझने की आवश्यकता है। द्रव्य, गुण पर्याय रूप है। अत द्रव्य का लक्ष्य रखने पर तो यही कहा जाता है कि द्रव्य नित्य ही है और पर्यायकालक्ष्य रखने पर यही कहा जाता है कि द्रव्य अनित्य ही है। अपने अपने दृष्टिकोण से ही "शब्द का प्रयोग करना सर्वथा सत्य है: किन्तु द्रव्य या पर्याय दोनो का समन्वय रूप मामान्य द्रव्य स्वरूप का लक्ष्य रखकर यही कहा जाता है कि द्रव्य कथन्चित नित्य भी है कथचित अनित्य भी है। यहा पर "भी" शब्द का प्रयोग ठीक सत्य है।

स्याद्वाद का लक्षण इस प्रकार है-

अनेक धर्मात्मै कैकस्मिन् वस्तुनि अविरोधेन विधिप्रति पेध विवक्षा। स्याद्वाद लक्षणम्

अर्थात् प्रत्येक द्रव्य अनन्त धर्म स्वरूप है। उसमे अनेक धर्म भाव रूप है और अनेक धर्म अभाव रूप है। भाव धर्म अनुजीवी कहे जाते है अभाव धर्म प्रतिजीवी कहे जाते है। यहा पर यह शका हो सकती है कि अभाव रूप धर्म कैसे ? जिनकी सत्ता नही है वे धर्म क्यो कहे जाय ? इसका समाधान यह है कि यदि अभाव रूप धर्म नही माना जाय तो किसी भी वस्तु का निर्णय करना अशक्य हो जायगा। जैसे मनुष्य को कोई हाथी बतावे या घोडा बतावे या खम्भा बताये तो उत्तर मे कहा जायगा कि यह मनुष्य है यह हाथी या घोडा या खम्भा नही है। क्योकि इसमे मनुष्य के गुण धर्म है। हाथी या घोडा या खम्भा के गुण धर्म इसमे नही है इसलिए इस मनुष्य मे हाथी घोडा खम्भा आदि सभी का अभाव है। एक वस्तु मे दूसरी सभी वस्तुओ का अभाव मानना अनिवार्य है अन्यथा एक वस्तु को दूसरी वस्तु बताने से कैसे रोका जायगा। अत जैसे एक वस्तु मे अनन्त भावात्मक अनन्त गुणो की सत्ता (सद्भाव) है उसी प्रकार उसमे अनन्त वस्तुओ का अभाव धर्म भी है। इस कथन से स्याद्वाद का यह स्वरूप सिद्ध हो जाता है कि वस्तु अपने स्वरूप से है और पर स्वरूप से नही है। यदि पर स्वरूप से भी वस्तु मानी जाय तो एक वस्तु अनेक रूप बन जायगी। मनुष्य अपने मनुष्य स्वरूप से है किन्तु हाथी घोडा आदि स्वरूप से नही है तभी उसे मनुष्य ही कहा जाता है हाथी घोडा नही कहा जाता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि एक ही वस्तु मे अस्तित्व और नास्तित्व दोनो विरोधी धर्म एक ही समय मे रहते है। किन्तु भेद इतना समझ लेना चाहिये कि अस्तित्व धर्म अपने स्वरूप की अपेक्षा से रहता है। और नास्तित्व धर्म पर पदार्थ की अपेक्षा से रहता है इसलिये कोई विरोध नही आता है। यदि जिस अपेक्षा से अस्तित्व है उसी अपेक्षा से नास्तित्व भी माना जाय तो परस्पर विरोधी धर्म एक वस्तु मे सिद्ध नही हो सकते हैं इस नय विवक्षा को अथवा दृष्टि भेद को शकराचार्य जैसे विद्वान् समझने मे

असमर्थ रहे। जैन धर्म का स्याद्वाद अकाट्य हे उसका खण्डन प्रत्यक्ष अनुभव आगम हेतु युक्ति किसी से नही हो सकता है। वस्तु स्वरूप का वही एक मात्र स्याद्वाद ही साधक है। बिना स्याद्वाद के वस्तु स्वरूप सिद्ध नही हो सकता है। द्रव्य गुण पर्याय एव उत्पाद व्यय ध्रौव्य ही वस्तु स्वरूप है। वह द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयो से सिद्ध होता है उन्ही दोनो नयो का द्योतक स्याद्वाद है।

मिथ्यामतो के समूह को अनेकात कहना सर्वथा मिथ्या है

सभी मिथ्या मतो का समूह ही अनेकाँत या स्याद्वाद है ऐसा कोई विद्वान् कहते हैं, उनका ऐसा कहना या समझना सवथा मिथ्या एव सर्वथा वाधित है। यदि मिथ्या मतो का समूह ही अनेकांत-स्याद्वाद है तो जैन धर्म का वस्तु स्वरूप का प्रतिपादक स्याद्वाद भी मिथ्या ठहरता है। क्योकि चोरो के समूह को चोर ही कहा जायगा, चोरो के समूह को ईमानदार शाह कहना प्रत्यक्ष वाधित है। दोनो परस्पर विरोधी है जो चोर हैं वह शाह नही है। जो प्रामाणिक शाह है उसे चोर नही कहा जा सकता है।

सोचिये—कोई झूठा आदमी एक असत्य वात को सत्य वताता है तो उसका वैसा कहना झूठ ही माना जाता है यदि सौ झूठे आदमी मिलकर एक असत्य वात को सत्य वतावें तो वह उनका कहना झूठा नही मान कर सत्य मान लिया जायगा क्या? कभी नही। असत्य बात तो सदैव असत्य ही मानी जायगी। क्योकि वह वस्तु स्वरूप से विपरीत है। कोई विद्वान् मिथ्या मतो के समूह को अनेकात अथवा वस्तु स्वरूप कहे तो यहनितान्त अनभिज्ञता है।

मिथ्या मत अनेकाँत क्यो नहीं हो सक्ते ?

मिथ्या मतो का समूह भी मिथ्या ही कहा जायगा। मिथ्या मतो का समूह अनेकात क्यो नही हो सकता इसकी सिद्धि इस प्रकारहै—

साख्य मत एक प्राचीन मत है वह मूल मे दो पदार्थ मानता है एक जीव (पुरुष) और प्रकृति (कर्म) उसकी यह मान्यता है कि जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध अवश्य है परन्तु जीव पर कर्म का किसी प्रकार का कोई असर नही है वह सदैव शुद्ध रहता है। जैसे जल मे रहता हुआ भी कमल जल से भिन्न ही रहता है । जब प्रकृति का सम्बन्ध छूट जाता है तब जीव की मुक्ति (मोक्ष) हो जाती है।

क्या जैन धर्म कर्मों से सम्बन्धित ससारी जीव को सर्वथा शुद्ध मानता है ? कभी नही किन्तु राग द्वेषादि विकारी पर्याय वैभाविक भाव और नरक स्वर्ग मनुष्य देव ये गतिया सब कर्मोदय से होती है ऐसी दशा मे सांख्य मत का समावेश जैन धर्म मे किसी प्रकार नही हो सकता है दूसरी बात यह भी है कि साख्य मत पदार्थ को सर्वथा नित्य ही मानता है। जैन धम द्रव्य दृष्टि से ही नित्य मानता है पर्याय दृष्टि से पदार्थ को अनित्य ही मानता है ऐसी दशा मे साख्य मत का समावेश अनेकात मे कैसे हो सकता है ? कभी नही हो सकता है। क्योंकि साख्य मत मे नय का तो कोई भेद ही नही है वह तो पदार्थ को सर्वथा नित्य ही मानता है। फिर जैन धम मे साख्य मत का समन्वय कर के अनेकात बताना सर्वथा विपरीत है।

एक वात यह भी है कि साँख्य मत मे ससार और मोक्ष व्यवस्था भी नहीं वन सकती है क्योकि जीव शुद्ध एव नित्य ही है तव परिवर्तन हुऐ विना ससार का अभाव और मोक्ष कैसे सिद्ध होगी। यहा पर हम लवा विचार नही करते हैं केवल प्रकरण वस सक्षेप मे उस मत का मूल तत्व का दिग्दर्शन करा रहे हैं।

वौद्ध मत की मान्यता

वौद्धमत जीव और अन्य सभी पदार्थों को सर्वथा अनित्य ही मानता है। यह मान्यता भी जैन सिद्धान्त-अनेकात मे सर्वथा विपरीत है। जैन धर्म सभी द्रव्यो को नित्य मानता है। वौद्धमत मे द्रव्यदृष्टि

कोई नही है। समूचे पदार्थ को अनित्य मानने से उसके मत मे ससार मोक्ष पुण्य पाप आदि कुछ भी नही वन सकता है। जव जीव अनित्य ही है तव पुण्य या पाप करने पर उसका फल कौन भोगेगा जीव तो नष्ट हो जाता है। ससार भ्रमण या मोक्ष किसको होगी। ऐसी अवस्था मे जैन धर्म के अनेकात मे उसका ऐकी भाव कैसे हो सकता है। बौद्ध यदि नयरूप से अशरूप मे अनित्यन्ता मानता होता तव तो अनेकान्त मे समन्वय की बात किसी प्रकार घटित हो सकती है।

वेदान्तवाद

वेदान्तमत सिवा एक परब्रह्म के और कोई वस्तु नही मानता है। उसका सिद्धान्त है।

एक मेवा द्वितीय ब्रह्म नेहनानास्ति कञ्चन
आराम तस्य पश्यन्ति न तत्पश्यति कञ्चन

अर्थात् एक ब्रह्म ही जगत है और कोई वस्तु नही है। उसको कोई नही देख सकता है यह जगत् उसकी ही छाया मात्र है अथवा जगत् सब भूठ है। इस मत की सिद्धि ही असभव है। ब्रह्म स्वय उपस्थित होकर अपना रूप बता नही सकता दूसरे जो उस मत के मानने वाले वेदान्त वादी है वे स्वय कुछ नही है सव भूठे कल्पना रूप है तव उनके द्वारा ब्रह्म की सिद्धि किसी प्रकार नही हो सकती है।

फिर नाना प्रकार के जीव, और अन्य पदार्थ जो प्रत्यक्ष है उनका लोप करना और कहना कि ये सब कुछ नही है ब्रह्म की माया है ऐसी बात किस आधार पर कौन मान सकता है। इस वेदान्तवाद का मिथ्या समझते हुए भी उसको अनेकात मे सामिल कर सत्य वताना सवथा विरुद्ध है।

नैयायिक वैशेषिक मत की मान्यता

नैयायिक वैशेषिक मत वाले पदार्थ का स्वरूप जैसा वताते है। वैसा सिद्ध नही हो सकता है उनका आगम है–

द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेप समवायाभावासप्त पदार्था
(गौतम सूत्र)

अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेप समवाय, अभाव ये सात पदार्थ हैं ऐसी मान्यता अथवा सिद्धान्त नैयायिक वैशेपिक मत का है।

परतु ऐसी उनकी मान्यता प्रत्यक्ष अनुमान, अनुभव आदि से वाधित है।

उस मान्यता का खडन यदि सक्षेप मे भी किया जाय तो भी दश पत्र लिखने पडेंगे। उस जटिल विवाद को छोडकर हम यहा पर सकेत मात्र से उन सात पदार्थों की मान्यता को असिद्ध ठहरा देते है।

देखिये-जीव द्रव्य है उसका स्वरूप ज्ञान दर्शन गुण रूप है। जीव मे जो हलन चलन क्रिया होती है वह क्रिया (कर्म) जीव से भिन्न नही है। जीव को छोडकर उसका केवल हलन चलन स्वतन्त्र कहा कैसे सभव है ? नही है।

जीव का अस्तित्व (सामान्य) जीव से भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। यदि जीव का अस्तित्व जीव से जुदा हो तो जीव स्वय अभाव रूप ठहरेगा अभाव मे अस्तित्व का सवध हो नही सकता है यदि अभाव मे अस्तित्व (भाव) का सबध होता हो तो गधे के साथ सीगो का सवध जुड जाना चाहिये। असभव कभी सभव नही हो सकता है। इसी प्रकार जीव मे जो वालकपन, युवापन, वृद्धापन आदि पर्यायें क्रम से होती हैं वे उस जीव से जुदी हो और जीव उनसे (भिन्न) अलग हो ऐसा मानना तर्क सगत नही है। सर्वथा मिथ्या है।

जीव को जुदा(अलग)मानना और उसमे रहने वाले ज्ञान दर्शन आदि गुणो को जीव से अलग (भिन्न) मानना सर्वथा विपरीत है और जीव और उसके ज्ञान दर्शन आदि गुणो का जीव के साथ समवाय सवध जोडना वन नही सकता है। क्योकि समवाय सबध को नैयायिक नित्य मानते हैं जव वह नित्य है तो जीव के साथ गुणो का सवध

मदैव अनादि से अनतकाल तक नित्य ही रहेगा ऐसी अवस्था मे जोव भिन्न और उसके ज्ञान दर्शन भिन्न तथा उन दोनो का समवाय सबध कहना ही स्व वचन वाधित हे क्योकि दोनो का सबध नित्य ही रहेगा जैन धम उसे तादात्म्य सबध कहता है।

इसी प्रकार अभाव भी कोई पदार्थ सिद्ध नही होता है। अभाव मानना और उसे पदार्थ कहना दोनो ही विरोधी हैं। जो शून्य रूप अवस्तु है वह पदार्थ कैसा ?

जैन सिद्धान्त ने अभाव को पर्यायान्तर माना है अर्थात् एक पर्याय का नष्ट होना नई पर्याय है जैसे मिट्टी का घडा फूटने पर घडे का अभाव माना जाता है वह घडे का अभाव उसके दो टुकडे रूप ही है। अग्नि के बुझ जाने पर अग्नि का अभाव माना जाता है। वह अग्नि का अभाव राख (भस्म) के सिवा और क्या है ? कुछ नही है। इसलिये नैयायिक वैशोषिको का माना हुआ अभाव पदार्थ भी सिद्ध नही होता है।

इस प्रकार नैयायिको के माने हुए नव पदार्थ– द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय और अभाव ये सात पदार्थ वास्तव मे नव सिद्ध नही होते हैं किन्तु जैन सिद्धान्त के अनुसार ये नौ पदार्थ एक द्रव्य के ही स्वरूप हैं। अर्थात् जिन को नौ पदार्थ जुदे जुदे माना गया है वे एक द्रव्य रूप हैं। गुण कर्म (क्रिया) सद्भाव, पर्याय तादात्म्य सम्बन्ध और एक पर्याय से पर्यातातर ये सब मिलकर अभेद विवक्षा मे एक पदार्थ रूप हैं। भेद विवक्षा से नौ नाम भले ही कहे जाय किंतु एक अखण्ड पिड रूप एक द्रव्य ही है।

और भी अनेक प्राचीन दर्शन (मत) है जैसे जैमिनी, भट्ट, प्राभाकर आदि कोई शब्द मय जगत मानता है कोई कुछ मानता है।

क्या ईश्वर सृष्टिकर्ता है ?

वहुभाग दर्शन एक ही ईश्वर मानते है। और उसे सृष्टि का रचने वाला और नष्ट करने वाला मानते हैं। उसी ईश्वर पर अपने

भले बुरे कामो का भार डाल देते है। बुरे काम स्वय करते है परन्तु कहते है कि ईश्वर की ऐसी ही मर्जी (इच्छा) थी साथ ही यह भी मानते है कि ससार के सभी जीव जैसा भी जो करते हैं उनके कर्मो के (कर्तव्यो) अनुसार ईश्वर उन्हे फल देता है। उनका सिद्धात है–

अज्ञो जन्तु रनीशोय लात्मन सुखदु खयो
ईश्वर प्रेरितो गच्छेस्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा

अर्थात् यह जगत का प्राणी अज्ञानी है और असमर्थ है अपना सुख दुख स्वय नही भोग सकता है। अत ईश्वर उसे स्वर्ग या नरक भेज देता है। परन्तु भगवान राम के परम भक्त रामायण के रचयिता तुलसीदास जी ने लिखा है कि– कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जैसा करहि वैसा फल चाखा। अर्थात अपनी अपनी करनी के अनुसार जीव स्वय फल भोगता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर का कोई सम्बन्ध नही है।

प्राय सभी प्राचीन दर्शन इस प्रकार के ईश्वर वाद मे विवेक रहित अन्ध विश्वासी वने हुए हैं। परन्तु यह ईश्वर वाद कोरी कल्पना और तर्क हीन विचार शून्य एव वाधक है हेतुवाद पूर्वक विचार करने पर यह ईश्वर वाद वालू पर दीवार की तरह टिक नही सकता है। प्रत्युत ईश्वर ही समारी सिद्ध हो जाता है। इस विषय पर ही अधिक लिखना अनावश्यक है दो शव्दो मे हम इतना खुलासा कर देना पर्याप्त समझते है कि ईश्वर को जगत का कर्ता हर्ता मानने वाले, ईश्वर को सर्वज्ञ और राग द्वेप रहित (वीतराग) मानते हैं। जव ईश्वर सर्वज्ञ है और वीतराग है और सर्व शक्तिमान है वही जगत को वनाता है तव उसने चोर, डाकू, वैश्या, कसाई, शिकारी आदि क्यो वनाये ? वह सर्वज्ञ होने से सवो को जानता है। और शक्तिमान् होने से सवो को वुरे कामो से रोक भी सकता है। यह तो वुद्धिमत्ता या विवेक नही है कि वुरे एव हिंसा आदि पाप कार्य करने वालो को पूर्ण रूप से जानते हुए और पूर्ण सामर्थ्य होने से

पाप करने वालो को रोकना नही पीछे उन्हे नरक आदि दुर्गतियो मे भेजना यह तो विचारशीलो की दृष्टि मे सर्वथा अनुचित है। जब ईश्वर सर्वज्ञ और सर्व शक्ति वाला है तो दुर्भिक्ष (अकाल) को क्यों होने देना है। वह समय पर वर्षा करा सकता है। कही भी अग्नि से या बाढो से मनुष्य पशुओ का अकाल मरण नही होने देवे। जिस राजा के राज्य मे चोरी हिंसा मारकाट आदि अनर्थ होते रहे तो वह राजा और उसका राज्य अन्यायी एव कर्तव्य विमूढ माना जाता है फिर ईश्वर तो सब कुछ करने मे समर्थ है फिर जगत को बनाना पीछे नष्ट करना फिर नये रूप मे बनाना ऐसा वह क्यों करता है यह तो बालको जैसी बाते हैं।

ईश्वर ससारी ठहरता है

ईश्वर जगत् को बना भी कैसे सकता है क्योकि वह अशरीरी है अमूर्तिक है। उसके इच्छा भी नही है और जगत् को बनाने के साधन भी नही हैं। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि कुम्हार घडा तभी बनाता है जब कि उसके घडा बनाने की इच्छा होती है और उसके पास मिट्टी, जल, चाक, डण्डा आदि साधन होते हैं साथ ही हाथो को घुमाता है अत उसके शरीर भी है। इसी प्रकार जगत् के सभी कार्य इच्छा, साधन और शरीर इन तीनो कारणो से ही बनाये जा सकते है। कारणो के विना कोई कार्य नही हो सकता है यह नियम है। ईश्वर के पास शरीर, इच्छा, साधन आदि कुछ भी नही है फिर जगत् कैसे बना सकता है ?

अन्तिम बात यह है कि ईश्वर के इच्छा मानी जाय तो इच्छा लोभ की पर्याय है चाहना है ईश्वर तो वीतराग है। उसके इच्छा मानने से वीतरागता नही हो सकती है। अत ईश्वर का स्वरूप कर्म रहित शरीर, रहित इच्छादि विकारो से रहित परम वीतराग रूप हैं वह सर्वज्ञ है इसलिये अपनी पूर्ण शक्ति मे जगत् की सभी चराचर

वस्तुओ को देखना और जानता है। यदि ईश्वर को सृष्टिकर्ता हर्ता माना जायगा तो ईश्वर, ईश्वर नही रहेगा वह ससारी ठहरेगा। जैन धर्म ईश्वर को परम शुद्ध परमात्मा मानता है। सर्वज्ञ वीतराग एव आत्मीय स्वरूप मे स्थित मानता है। जगत् का दृष्टा ज्ञाता मानता है ऐसा ईश्वर एक मात्र नही है किन्तु जिन आत्माओ ने अपने तपश्चरण तथा वीतराग भावो से रागद्वेपादि विकारो को सर्वथा नष्ट कर दिया है। कर्मो को तथा शरीर को सर्वथा आत्मा से हटा दिया है वे सभी आत्माऐ परमात्मा ईश्वर वन गई है। जैन धम प्रत्येक आत्माओ मे ईश्वर पद पाने की योग्यता मानता है। इसलिये ईश्वर अनन्त हो चुके है और आगे भी होते रहेगे। यह जगत् स्वय अनादि है और अनत काल सदैव वना रहेगा। इसका वनाने वाला विगाडने वाला कोई नही है। ससारी आत्माऐ अपने भले बुरे कार्यो मे स्वय अपने-अपने कर्मों का अच्छा बुरा फल भोगते है। और जो ससार और भोगो से विरक्त हो जाते है वे कर्मो का नाश कर ईश्वर वन जाते है।

वस्तु स्वरूप बताना दोष नही है

जैन सिद्धान्त किसी अन्य दर्शन की निदा या तिरस्कार करना नही वताता है। हा वस्तु स्वरूप मे हेतु पूर्वक तर्क की कसौटी पर निष्कषाय एव निष्पक्ष भाव से विवेक पूण–यथार्थता का विचार करना प्रत्येक प्रज्ञाशील मानव का कर्तव्य है। पूर्वाचार्यो ने भी शुद्ध वीतराग मार्ग का उपदेश दिया है।

प्रकरण गत वात यह है कि जो कोई विद्वान् यह घोपणा करते है कि सभी मिथ्या मतो का समूह ही जैन सिद्धान्त अथवा अनेकात है वे किस आधार पर ऐसी सवथा विपरीत वात कहते है ?

किसी मत के किसी स्वरूप की तुलना अथवा समानता जैन धर्म से नही हो सकती है। नित्य अनित्य आदि धर्मो से भी नही हो

वस्तुओ को देखना और जानता है। यदि ईश्वर को सृष्टिकर्ता हर्ता माना जायगा तो ईश्वर, ईश्वर नही रहेगा वह ससारी ठहरेगा। जैन धर्म ईश्वर को परम शुद्ध परमात्मा मानता है। सर्वज्ञ वीतराग एव आत्मीय स्वरूप मे स्थित मानता है। जगत् का दृष्टा ज्ञाता मानता है ऐसा ईश्वर एक मात्र नही है किन्तु जिन आत्माओ ने अपने तपश्चरण तथा वीतराग भावो से रागद्वेषादि विकारो को सर्वथा नष्ट कर दिया है। कर्मो को तथा शरीर को सर्वथा आत्मा से हटा दिया है वे सभी आत्माएे परमात्मा ईश्वर बन गई है। जैन धम प्रत्येक आत्माओ मे ईश्वर पद पाने की योग्यता मानता है। इसलिये ईश्वर अनन्त हो चुके है और आगे भी होते रहेगे। यह जगत् स्वय अनादि है और अनत काल सदैव बना रहेगा। इसका बनाने वाला बिगाडने वाला कोई नही है। ससारी आत्माऐ अपने भले बुरे कार्यो से स्वय अपने-अपने कर्मो का अच्छा बुरा फल भोगते है। और जो ससार और भोगो से विरक्त हो जाते है वे कर्मो का नाश कर ईश्वर बन जाते है।

वस्तु स्वरूप बताना दोष नहीं है

जैन सिद्धान्त किसी अन्य दर्शन की निंदा या तिरस्कार करना नही बताता है। हा वस्तु स्वरूप मे हेतु पूर्वक तर्क की कसौटी पर निष्कपाय एव निष्पक्ष भाव से विवेक पूण-यथार्थता का विचार करना प्रत्येक प्रज्ञाशील मानव का कर्तव्य है। पूर्वाचार्यों ने भी शुद्ध वीतराग मार्ग का उपदेश दिया है।

प्रकरण गत बात यह है कि जो कोई विद्वान् यह घोषणा करते है कि सभी मिथ्या मतो का समूह ही जैन सिद्धान्त अथवा अनेकात है वे किस आधार पर ऐसी सवथा विपरीत बात कहते है ?

किसी मत के किसी स्वरूप की तुलना अथवा समानता जैन धर्म से नही हो सकती है। नित्य अनित्य आदि धर्मो से भी नही हो

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान का बताया हुआ नय चक्र तीक्ष्ण धार वाला अकाट्य एव अमोघ शस्त्र है सम्यग्ज्ञानी पुरुष ही उसे प्राप्त कर सकते हैं। वह नय चक्र रूपी सर्व विजयी असाधारण महान् शस्त्र समस्त मिथ्या मतो का तत्काल खडन कर देता है।

ऐसा तो आचार्य अमृतचद्र सूरि कहते है परतु कोई एक विद्वान् मिथ्यामतो के समूह को अनेकान्त कहते है। उनका ऐसा कहना जैन सिद्धान्त प्रणीत अनेकात से सवथा विपरीत है।

श्री सिद्धसेन दिवाकर के सन्मति तर्क की नीचे लिखी गाथा का अर्थ नही समझकर समस्त मिथ्यामतो के समूह को जैन धर्म का अनेकात कहा जाता है गाथा यह है—

भद्द मिच्छगदसण समूहमइयस्स अमयलारस्स
जिण वयणस्स भगवओसविग्ग सुहाइगम्मस्स
(आचार्य सिद्धसेन)

इस गाथा मे— "महियस्स" यह प्राकृत शब्द पडा हुआ है उसका सस्कृत शब्द 'मथितस्य' बनता है। यह जिन वचन का विशेषण है, इसका स्पष्ट एव निर्विवाद अर्थ यही होता है कि जिनेद्र भगवान के वचनो से सभी मिथ्यामतो का समूह मथित हो जाता है। अर्थात् सभी मिथ्यामतो का तीर्थकर भगवान के वचनो से मथन हो जाता है विश्व लोचन कोप मे मथन का अर्थ खड खड होजाना लिखा है। जैसे दही का मथन-दही के स्कन्ध का खड खड होजाना है। भगवान के वचन ही अमृतमय है। बस यही आशय मथित शब्द का कोप से सिद्ध होता है। मिथ्यामतो का समूह ही जैन अनेकान्त है ऐसा विपरीत अर्थ तो किसी प्रकार भी सिद्ध नही होता है।

आज तो अपनी अपनी मान्यतावश भिन्न भिन्न दर्शनो (मतो) की शाखा प्रशाखा अनेक होगई हैं। ऊपर तो हमने प्राचीन प्रसिद्ध दर्शनो का थोडासा दिग्दर्शन किया है उनका किसी प्रकार का कोई

एक अश भी जैन दशन मे नही मिलता है। आकाश पाताल जैसा अतर है। अत मिथ्या समूह स्तु मिथ्यैव। मिथ्या समूह समीचीन इति कदापि न भवितु महीत अर्थात् मिथ्या समूह तो मिथ्या हैं वह समीचीन (यथार्थ) कभी सिद्ध नही हो मकता है। यही तथ्य सत्य है। आचार्य वचन वीतराग है पढिये।

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेप कपलादिपु
युक्ति मद्वचन यस्य तस्य काय परिग्रह

अर्थात् आचार्य कहते हैं कि न तो भगवान महावीर स्वामी के वचनो मे हमारा कोई पक्षपात है और न साख्य बौद्ध नैयायिक मीमासक आदि के वचनो मे कोई द्वेप है किन्तु जिनके वचन युक्ति युक्त है, सद्धेतु, अनुभव प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो से अकाट्य एव अवाधित सिद्ध है उन्ही को ग्रहण करना चाहिये।

चारित्र और व्यवहारी कार्यो मे स्याद्वाद लगाना मिथ्या है

स्याद्वाद का उपयोग जैन समाज के अनेक लोग चारित्र मे भी करते है और व्यवहारी कार्यों मे भी उसका उपयोग करते है जैसे–दिन मे भोजन करना अच्छा है परन्तु कार्य वश कभी रात्रि मे भी भोजन करना ठीक है। प्रति दिन भगवान के दर्शन करना ठीक है कभी नही तो भी ठीक है क्योकि जैन धम स्याद्वाद रूप है। इस प्रकार चारित्र मे भी स्याद्वाद को लगाना न तो स्याद्वाद का स्वरूप है और न वह धर्म ही है। चारित्र धार्मिक क्रियाऐ शास्त्राधार से एक रूप मे ही नियत है प्रति दिन देव दर्शन, देव पूजन करने का श्रावक के लिये विधान है जो इन धार्मिक क्रियाओ का पालन नियमित रूप से नही करते है वे नाम मात्र के जैन है। वास्तव मे जैन नही है। स्याद्वाद चारित्र मे नही घटित होता है। क्योकि दो विरोधी धर्म (अस्ति नास्ति आदि) वस्तु के स्वरूप मे ही घट सकते है दौनो विरोधी धर्म एक समय मे साथ रहते है। चारित्र मे वे कैसे

घटेंगे दिन मे भोजन करना रात मे भोजन करना यह क्रिया है वस्तु धर्म नही है और दौनो का भिन्न-भिन्न समय है। स्याद्वाद के अनुसार दौनो का एक समय होना अनिवाय है। जो आदमी पूर्व को जारहा है वह पूर्व मे जाने वाला ही प्रत्यक्ष सिद्ध है वह उसी क्षण मे पश्चिम मे जाने वाला नही कहा जा सकता है। दौनो दिशाओ मे एक समय मे गमन क्रिया असम्भव है अत वह आदमी कथचित् पूर्व दिशा मे कथचित् पश्चिम दिशा मे जाने वाला कभी नही कहा जा सकता है। अत स्याद्वाद केवल वस्तु के एक समय मे विद्यमान परस्पर विरोधी धर्मो मे ही द्रव्य पर्याय की भेद विवक्षा से घटित होता है।

प्रध्वस्त घाति कर्माण केवल ज्ञान गोचरा
कुर्वन्तु जगत शान्ति वृप माद्या जिनेश्वरा

अनादि काल से अनन्त चौवीस तीर्थंकर और अनत मुनिगण मोक्ष प्राप्त कर चुके है वर्तमान युग के चौबीस तीर्थंकरो मे भगवान वृपभनाथ (आदिनाथ) पहले और भगवान महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर हैं। इन चौबीस तीर्थंकरो के बीच-बीच मे करोडो मुनिगण मोक्ष गये है। और आगे भविष्यत् काल मे भी चौवीस-चौबीस तीर्थंकर होते रहेगे। इसलिये जैन धर्म अनादि निधन है। सदैव से है सदैव रहेगा।

ये वर्तमान चौवीस तीर्थंकर और करोडो मुनिगण चारो घातिया कर्मो को नष्ट कर बीतरागता और केवल ज्ञान (सर्वज्ञता) को प्राप्त कर चुके हें वे जगत् के सभी प्राणियो को शाति प्रदान करें ? अर्थात् उन बीतराग सर्वज्ञ भगवानो के दशन स्मरण, जपन, स्तवन, स्वरूप, चितन आदि महान् पुण्य वर्धक शुभ भावों से सभी ससारी जीवो को शान्ति लाभ हो इसी सद्भावना के साथ हम इस आगम मार्ग प्रकाशक ग्रन्थ को समाप्त करते हैं।

हमारी एव प्रत्येक श्रावक की भावना

इस ग्रन्थ के अन्त मे हम अपनी भावना प्रगट करते हुए जिनेन्द्र भगवान के चरणो मे प्रति दिन जिन पूजन के अन्त मे यह प्रार्थना करते है और यही प्रार्थना मभी जिनेन्द्र भक्त श्रावको को करना आवश्यक है--

जिने भक्तिर्जिनेभक्तिर्जिनेभक्ति सदास्तु मे
सम्यक्त्व मेव ससार वारण मोक्ष कारणम्
श्रुते भक्ति श्रुते भक्ति श्रुते भक्ति सदास्तु मे
सज्ज्ञानमेव ससार वारण मोक्ष कारणम्
गुरौ भक्ति गुरौ भक्ति गुरौ भक्ति मदास्तु मे
चारित्रमेव ससार वारण मोक्ष कारणम्

अर्थ — जिनेन्द्र पूजन के अन्त मे, मै भगवान के चरणो मे यह प्रार्थना करता हू कि भगवन् ! जिनेन्द्र भगवान मे मेरी भक्ति सदा बनी रहे। आपकी भक्ति से सम्यग्दर्शन मेरी आत्मा मे प्रगट हो सकता है। और सम्यग्दर्शन ही ससार को नष्ट करने वाला मोक्ष दायक है।

इसी प्रकार हे भगवन ! मेरी जिनवाणी मे भक्ति सदा बनी रहे जिससे मुझे सम्यज्ञान की प्राप्ति हो जाय, सम्यज्ञान ही ससार को नष्ट कर मोक्ष देने वाला है।

इसी प्रकार हे भगवन ! मेरी दिगम्बर जैन मुनियो मे सदैव भक्ति बनी रहे। परमपूज्य मुनिराजो की भक्ति से सम्यक् चारित्र प्राप्त हो सकता है। सम्यक् चारित्र ही ससार को नष्ट कर मोक्ष देने वाला है।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्ग इति शुभम्

जैन दर्शनाचार्य-श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का स्याद्वाद वस्तु स्वरूप
का निरूपक करने वाला

बारहवां अध्याय समाप्त

वीर प्रार्थना

रचयिता–विद्वत्तिलक न्यायालकार श्री प० मक्खनलाल जी शास्त्री

हे सर्वज्ञ वीर जिन देवा चरण शरण हम आते हैं।
ज्ञान अनत गुणाकर तुमको चरणो शीश नवाते हैं॥१॥
कथन तुम्हारा सबको प्यारा, कही विरोध नही पाता।
अनुभव बोध अधिक जिनके है, उन पुरुषो के मन भाता॥२॥
दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूपी, मारग तुमने दिखलाया।
वही मार्ग हितकारी सबका, पूर्व ऋषीगण ने गाया॥३॥
रत्नत्रय को भूल न जावे, इसीलिये उपनयन करे।
ब्रह्मचर्य को दृढतम पाले, सप्तव्यसन का त्याग करे॥४॥
नीति मार्ग पर नित्य चलें हम, योग्याहार विहार करे।
पाले योग्याचार सदा हम, वर्णाचार विचार करें॥५॥
धर्म मार्ग अरु वैध मार्ग से देशोद्धार विचार करे।
आर्ष वचन हम दृढतम पाले सत्सिद्धात प्रचार करे॥६॥
श्री जिन धर्म बढे दिन दूनो पच आप्तनुति नित्य करें।
सत्सगति को पाकर स्वामिन्, कर्म कलक समूल हरे॥७॥
फले भाव ये सभी हमारे यही निवेदन करते है।
'लाल' बाल मिल भाल वीर के चरणो मे हम धरते हैं॥८॥

नोट–यह वीर प्रार्थना छात्रों के सस्कारो को उद्बोधन करने वाली है। देव, शास्त्र, गुरु मे अटल श्रद्धा पैदा करने वाली है, तथा नैतिक मार्ग का दिग्दर्शन कराने वाली है। इसलिये समस्त धार्मिक सस्थाओ मे इस प्रार्थना को छात्रों से बुलवाना चाहिये।